THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180484

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 Accession No. G.H. 3380

Author M21K. महान्ति, कान्हूचरण

Title चित्तरंजन दास

This book should be returned on or before the date last marked below.

का

(उपन्यास)

कवि राधामोहन गणनायक,

तुम ललित मधुर छन्द की सृष्टि करते हो। हे कवि! तुम्हारी कविता प्राणों में हिलोरें लाती है। उस शाम के समय तुम मेरे 'का–का' की आवाज सुनने के लिए आग्रह से कान लगाये थे, और सुनने के बाद तुमने दीर्घ श्वास भी छोड़ी थी। आज उसी 'का' को तुम्हारे हाथों में सौंप रहा हूँ।

३-११-५४ —*कान्हूचरण*

का

[साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत उड़िया के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर]

लेखक

कान्हूचरण महान्ति

रूपान्तरकार

चित्तरंजन दास

संशोधनकर्ता

क्षेमचन्द्र 'सुमन

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी (प्रा.) लि०

पुस्तक-प्रकाशक एवं विक्रेता : आगरा

प्रथमावृत्ति, नवम्बर १९६२

●

मूल्य : चार रुपये

दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा

प्रकाशक का वक्तव्य

श्री कान्हूचरण महान्ति के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यास 'का' का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष है। हमें आशा है कि यह उपन्यास उड़िया कथा-साहित्य की तरह समस्त भारतीय भाषाओं के कथा-साहित्य में भी उच्च स्थान प्राप्त करेगा। साहित्य अकादेमी ने इसे उड़िया-साहित्य की सर्वोत्तम कृति मानते हुए पुरस्कृत किया है।

'का' का कथानक नितान्त निराला है। सौतिया डाह जगप्रसिद्ध है; किन्तु दो सौतें भी शान्तिमय सह-अस्तित्व का अनुपम उदाहरण और भारतीय नारी का महान आदर्श प्रस्तुत करती हैं, यह इस उपन्यास में बड़ी सजीव, भावमयी एवं हृदयग्राही शैली में चित्रित किया गया है।

दिन ढलने वाला है। नन्दिका पलंग पर बैठी है। बिस्तरा बिछा हुआ है। सफेद चादर के ऊपर दो तकिए रखे हुए हैं। यह बिस्तरा दासी ने बिछाया है। उसकी उमर ढल चुकी है। फिर भी उसमें इतनी भी शर्म नहीं है। आधी खिली हुई चम्पा की कलियों की माला बहुत यत्न के साथ पिरोकर पलंग के ऊपर लटका रखी है। उसकी नजर में नन्दिका हमेशा ही एक छोटी-सी बच्ची है। जैसे कल ही वह बहू बनकर इस घर में आई है।

नन्दिका रूठ जाती है। खुश भी होती है।

चम्पा की कलियों की माला को हाथ में लेकर नन्दिका ने गौर से देखा। उसकी सुगन्धि न[illegible] तक पहुँचती है। सिर्फ चम्पा की एक माला, उसकी कीमत भी कितनी होगी? लेकिन उस माला के भीतर जो स्नेह, ममता और उद्विग्नता भरी हुई है, [illegible] अनमोल है।

दक्षिण वाली खिडकी के दूसरी ओर चम्पा के पेड़ में फूलों की कलियाँ भरपूर हैं। पेड़ के नीचे एक टोकरी फूल बिछे हुए हैं। सिर्फ चम्पा ही नहीं है। दूसरी खिड़की के पास भिन्न-भिन्न प्रकार के गुलाबों के पेड़ में लाल, पीले और सफेद फूलों क[illegible]ला-सा लगा हुआ है। उसकी भी कुछ कीमत नहीं है। लेकिन जिस मनुष्य ने उन फूलों का संचयन करके श्रद्धा के साथ एक माला बनाकर पलंग के ऊपर लटका रखी है, उसकी सेवा, उदारता, स्नेह और ममता [illegible] है।

वह है कनी, घर की दासी। सास का दाहिना हाथ। बहुत विश्वास-पात्री। वह जो कुछ कहती है सास कदाचित् उसके बाहर नहीं जाती।

फूल की माला को नन्दिका ने पलंग के ऊपर लटका दिया और

नरम-नरम बिस्तरे के ऊपर लेट गई। दोपहर को उसे एक-दो घंटे की फुरसत मिलती है। दिन ढल जाने के बाद फिर बाहर जाना पड़ेगा। तमाम घर के काम जो करने पड़ते हैं। फुरसत कहाँ है? सास ने हर चीज उसी के हाथ में सौंप रखी है। वह कुल की लक्ष्मी है। प्रत्येक काम को अपने हाथ से करना कुल-लक्ष्मियों का कर्तव्य है।

नन्दिका सास की बातों से बाहर नही जाती।

उसने आँखें मूँद लीं। बहुत थक गई है। थोड़ी देर सोने के लिए जी कर रहा है। यदि किसी घर की बहू और लड़कियाँ घूमने के लिए इधर आ जायँगी तो फुरसत पाना असम्भव हो जायगा। प्राय: सब ही अभिमान से कहते हैं,—"हमारा घर क्या तुम्हारा दुश्मन है, कि तुम्हारे पैर वहाँ एक बार भी नही पड़ेंगे?"

समय नही है।

क्या है बन्धन?

नन्दिका ने आँखें खोलीं। मन में शंका-सी हुई। क्या बन्धन है। नन्दिका उठ बैठी। नींद नहीं आयगी। दक्षिण वाली दोनों खिड़कियाँ खुली हैं। उनसे घर के भीतर रोशनी आ रही है। रोशनी—नींद की दुश्मन। पल भर के लिए भी सोना सम्भव नहीं है। उन्मुक्त होकर चिन्ता के राज्य में घूमना भी सम्भव नहीं है। तमाम दुनिया आँखों पर आ बैठती है। मन के पट पर सैकड़ों स्मृतियाँ जाग उठती हैं। अपने इतिहास को तिलांजलि देकर वे उन्हें आँखों के सामने खड़ा कर देती हैं।

दरवाजा बन्द है। अब दक्षिण वाली दोनों खिड़कियों को बन्द कर देने से अँधेरा हो जायगा। आँखों में नींद भी आ जायगी। नन्दिका उठकर खड़ी हो गई। श्रावण का महीना है, फिर भी इस साल इतनी

बारिश नहीं हो रही है। दशमी के दिन तक बारिश बहुत हुई। तब से बन्द हो गई। फिर वही गर्मी। बदन से पसीना बहता चला जा रहा है। ब्लाउज और साया के साथ छटपटाने की अब उसकी बिलकुल इच्छा नहीं होती।

आलमारी के ऊपर दीवार में टँगा हुआ स्वामी का बड़ा बस्ट फोटो मानो मुस्कुरा रहा है। उसी की ओर नन्दिका ने देखा। अरे, सचमुच मुस्कुरा रहे हैं। सिर के बालों में से एक दो सामने की तरफ पड़े हैं। भौह के नीचे सोने के फ्रेम वाला शक्तिहीन चश्मा। लम्बी नाक के नीचे आधी कटी हुई मूँछें। मुस्कुरा रहे हैं।

नन्दिका अपने आप लज्जित-सी हो गई। उसने फिर उनकी तरफ देखा। स्वामी मुस्कुरा रहे हैं। सात साल पहले ठीक ऐसे ही मुस्कुरा रहे थे। अब भी मुस्कुरा रहे हैं। लज्जित मन से कह उठी, 'समझ नहीं सकते हो इतनी गर्मी पड़ रही है, कितना पसीना निकल रहा है? तुम्हारी माँ के पैर दबा रही थी। उनको नींद आ गई। थकान मिटाने के लिए इस घर में आई हूँ। शान्ति से एक मुहूर्त के लिए अपना बनने के लिए। क्या मुझे इतनी भी आजादी नहीं है?'

देह में रोमांच हो आया। स्वामी मुस्कुरा रहे हैं। नन्दिका ने कहा, "मन में अभिमान भरा हुआ है, अच्छी तरह से मुस्कुराओ। तुम्हारे पास जिसका बड़ा फोटो लटका हुआ है, उसी की ओर देखते रहो। और जी भरकर मुस्कुराओ। सिर के ऊपर आधा घूँघट। माथे पर अलकें झूल रही है। कानों में अलंकार भरे हुए हैं। एक नाक में नथ, दूसरी में सोने का फूल। और नाक के नीचे बुलाक। कितना सुन्दर लग रहा है! सात वर्ष पहले की तुम्हारी वही नन्दिका। मैं नहीं हूँ वही निर्लज्ज नन्दिका।" नन्दिका आलमारी की ओर गई। दरवाजे के आइने में सूरत देखी। तृप्ति की हँसी से उज्ज्वल हो उठा उसका पान के पत्ते के समान मुँह। बेला के फूल के समान सफेद मुँह लाल हो गया। अपने को

देखकर एकांत में भी ग्राँखों में संकोच की लहर दौड़ गई। बहुत परिवर्तन हो गया है।

दोनों कानों में दो कर्णफूल, सफेद नग की चमक में सोने का रंग ढक गया है। मुँह पर दूसरा ग्रौर कोई भी गहना नहीं है। गले में पतला-सा हार। हाथ में दो-दो सोने के कंगन। पैरों में पायजेब। बस इतना ही गहना है। इस जमाने का सीधा सादा फैशन। वह स्वामी की रुचि ग्रौर इच्छा की ग्रनुचरी है।

नन्दिका बदल गई है। शादी के बाद मोटी हो गई है। धीरे-धीरे सात सालों के भीतर सचमुच वह कितनी बड़ी ग्रौरत बन गई है। जिस दिन वह इस घर में ग्राई थी, गाँव की ग्रौरतें उस दिन कह रही थी, "बहू सोने की बनी हुई है। सुनन्द की माँ को सोने की बहू मिली है।" सास बोली, "रूप से मेरा क्या होगा, माँ दुर्गा उन्हे सिर्फ ग्रायु दें, दोनों सुख ग्रौर ग्रानन्द के साथ घर बसावें। भगवान जाने उसकी माँ ने ग्रपने घर में कैसे उसका पालन किया है। उफ करने से मिट्टी पर गिर पड़ेगी।"

तीन साल के बाद वह पहली बार ग्रपने मायके को गई। माँ रो पड़ी। नन्दिका की ग्राँखों से ग्राँसू पोंछते-पोंछते उसने कहा, "बेटी कितनी कमजोर हो गई हो! काम करा-कराकर उस राक्षसी बूढ़ी सास ने बेटी की क्या हालत कर दी है!" दोनों भाभियाँ मुस्कुरा रही थीं। समवयस्का छोटी भाभी ने नन्दिका के मुँह को ऊपर उठाया ग्रौर खुद सिर हिलाकर धीरे से कहा, "ग्रहा, कितनी पतली हो गई है हमारी नन्दिका, बिलकुल काँटे के समान! सिर्फ दोनों गाल उभरे हुए हैं।"

सास के तकाजे की वजह से नन्दिका मायके में चार महीने से ग्रधिक नहीं ठहर सकी। कनी ने खबर भेजी, बहू को न देखकर सास ने खाना-पीना छोड़ दिया है। नन्दिका सास के घर लौट ग्राई। उसकी ग्रोर

देखकर आँसू भरी आँखों से सास ने कहा, "सौतेली माँ है क्या ? मेरी बहू को बिलकुल काली लकड़ी-सी बना दिया है।" एकान्त में कनी ने कहा, "बहूरानी, तुम्हारे यहाँ से जाने के बाद नन्द भाई हर शनिवार को घर नहीं आ जाया करते थे। एक ही छुट्टी में आये थे, लेकिन घर के बाहर-ही-बाहर रहते थे। इसी कारण मैंने ही पहले खबर भेजी। मेरे हाथों से पकाया हुआ खाना तो सास बिलकुल मुँह में नही लेती।"

सचमुच वह कितनी मोटी हो गई है। सवेरे से उठकर आधी रात तक काम करती है, फिर भी जैसी मोटी थी वैसी ही है। स्वामी से कहा, "अधिक मोटी हो जाऊँगी तो काम नहीं कर सकूँगी। मुझे दवा लाकर दो।"

सुनन्द ने मुस्कुरा कर कहा, "कुछ मोटी हो गई हो। रंग बदल गया है। लेकिन ढंग नही बदला है। जैसी फुर्ती थी वैसी ही है। अच्छा एक काम करो। खिड़की-दरवाजा बन्द करके कसरत किया करो। देह की चर्बी पिघल जायगी। आओ, मैं बताये देता हूँ। दड और बैठक, चर्बी घटाने की अचूक दवा।"

अरे—

आज शनिवार है। इसीलिए कोई शुभ सूचना देने कौवों के झुंड बार-बार आते हैं, चिल्लाते हैं और उड़ जाते हैं। उसी के लिए बाँई आँख सवेरे से फड़क रही है। तीन बार या पाँच बार हाथो से बरतन गिर पडे हैं। अनजाने ही मन अधीर हो रहा है। आज नन्दिका थोड़ी देर के लिए सोने के लिए जायगी। हर शनिवार को वह साइकिल से आते हैं। किसी रोज शाम से पहले, कभी-कभी आठ भी बज जाते हैं। आते ही गप्पें शुरू कर देते हैं। सब ही सुनना पड़ेगा। हर एक वाक्य

के बाद 'हूँ' भी करना पड़ेगा। नहीं तो शुरू होगा उनका अभिमान। झपकी आयेगी तो चोंट देंगे।

सिर के पास की खिड़की नन्दिका ने बन्द कर ली। दूसरी खिड़की बन्द करने के लिए जा ही रही थी, कि दो गौरैया घोंसले से फड़फड़ाहट के साथ बाहर की तरफ उड़ गई। तिनके से बनाये हुए घोंसले से अब एक भी आवाज नहीं आई। बाप-माँ के आने के लिए बच्चे इन्तजार कर रहे हैं। वे अपनी चोंच में दाना लेकर आयँगे।

नन्दिका रुक गई। सोने की कोई जरूरत नहीं, वह खिड़की बन्द नहीं करेगी। सामान्य पक्षियों ने भी इस घर में घोंसला बनाया है, उनके बच्चे हुए हैं। इस घर में उनका भी अधिकार है। उनके कर्तव्य और आनन्द में वह हरगिज बाधा नहीं बनेगी।

नन्दिका लौट आई। पलंग पर सीधी लेट गई। उसने आँखें मूँद लीं। बहुत गुस्सा आ रहा है। पलकों को भेदकर दिन की रोशनी मानों सिर के भीतर चली जाती है। फिर वही 'ची ची' की आवाज। आँखे खोलीं। माँ और बाप अपने दो बच्चों के मुँह में दाना डाल रहे हैं। दोनों बाहर उड़ गये। छोटी-छोटी मुलायम दो चोंच बाहर नजर आई, फिर घोंसले में छुप गई। फिर वह 'चीं चीं'—

नन्दिका गौर से देखने लगी। उसकी छाती धड़क रही थी, गहरी साँस निकलने लगी। मन के किसी कोने में कामना छटपटाने लगी। छटपटाने लगी। बहुत अस्थिर-सा लगा। कौन जाने भीतर से दुख क्यों उमड़ने लगा। रूआँसी हो आई और फिर छाती काँपने लगी। अनजाने ही आँखों के कोनों से आँसू झर पड़े। सामान्य गौरैया से भी वह हीन है।

सात साल बीत चुके हैं। जब वह इस घर में बहू होकर आई थी तब उसकी आयु १७ साल की थी। अब चौबीस के बाद पच्चीसवाँ चल रहा है। वह फली नहीं है। खिड़की के उस तरफ सीताफल के पेड़ में कद्दू की जो बेल दीख रही है, उसमें फूल और हरे फल लदे हुए

है। उसके पास अनार के पेड़ लाल रंग के फूल से लदे हुए हैं। समय आने पर सब जननी बनती है, भारी बनती हैं। सामने जो भिंडी का पेड़ इतना मोटा होकर खड़ा हुआ है, उसमें फल-फूल कुछ भी नहीं है। कितनी भद्दी शक्ल है। उसके ऊपर चढ़कर चीटियों ने उसका सिर खा लिया है।

उसकी अवस्था क्या उसी भिंडी के पेड़ के समान होगी ? केवल शरीर बढ़ाने में ही क्या समय बीत जायगा। सपने कहाँ गये ? चौबीस के बाद पच्चीसवाँ चल रहा है। कहाँ है जननी बनने की भावना ? घर की बिल्ली और रास्ते की कुतिया से भी वह हीन है। समय आने पर वे माँ बनती हैं। दीवार के ऊपर जो बूढ़ी छिपकली चींटी और कीड़े झपट लेती है, वह भी। सिर्फ मनुष्य ही नहीं, वृक्ष, लता, जीव सब जननी बनते हैं। मनुष्य का जन्म लेकर भी वह जननी नहीं है।

आँखों की पलकों में ही सात साल बीत चुके हैं। सास और स्वामी के स्नेह और आदर ने उसे बाँध लिया है। उसने सब कुछ ग्रहण कर लिया है। परिशोध कुछ भी नहीं कर सकी। वह केवल फूलरानी बनकर अच्छी साड़ी और कीमती जेवर पहनकर इस घर की शोभा बढ़ाने के लिए ही नही आई, वह इस कुटुम्ब के रक्त की धारा को अनन्त भविष्यत् की ओर बहा देने के लिए आई है। केवल यौवन का खेल खेलना नारी-जीवन का उद्देश्य नहीं है। उस खेल का एक दूसरा उद्देश्य भी है, और वह है जननी बनना।

वह गृहलक्ष्मी है। घर में या बाहर हर एक के मुँह में वही एक बात। गाँव की औरतें मुँह के सामने भी यही बात कहती है। सच या झूठ उसको पता नहीं है। मध्यवित्त परिवार में उसका जन्म। पिता-

माता, भाई-बहन, भाभी, दादी, सहेलियों के संग में दूर देहाती गाँव में उसका बचपन बीता है। गाँव की एक लड़की को जितनी बातें सीखनी और जाननी चाहिए, उतनी उसने सीखी है, जानी हैं।

गाँव के गलियारे में अड़ोस-पड़ोस के नन्हें-नन्हें बच्चों के साथ रेत का खेल, खुशी और आनन्द, राग-रोष, हँसना और रोना। गाँव के स्कूल में ही पढ़ना। शिक्षकों का स्नेह और शासन। सूत कातना। बगीचे में पेड़ों को पानी देना। जब दस साल खतम करके ग्यारहवाँ शुरू किया तब गाँव के स्कूल की शिक्षा खत्म हुई। फ्राक छोड़कर जब साड़ी पहनी तब साड़ी के साथ-साथ ही शर्म की बाढ़ आ गई। घर के भीतर घर के काम और कायदो की शिक्षा। हर वक्त सिर्फ वही लाडली पुकार—'छि: !'

"छि: ! तुम ऐसे क्यों दौड़ रही हो नन्दिका ? बड़ी उम्र की लड़कियों के लिए ऐसे आवाज के साथ दौड़ना शोभा नही देता। अपनी बड़ी भाभी को देखो तो कैसे हाथी-जैसी झूम-झूमकर आती-जाती है। वह आती है किसी को इसका पता नहीं लगता। पैरों के नीचे एक चीटी भी नहीं मरती।" माँ सिखा देती है। प्यार के साथ सिर सँवार देती है।

बड़ी भाभी धीरे से कहती है, "छि: नन्दी, यह क्या हँसी है तुम्हारी ? हँसने के लिए कोई मना नही करता। लेकिन उसके लिए एक घोड़ी की तरह ही-हीं करके हँसना और बुजुर्गो के कानों के पास ऐसे बात करना जैसे कि इस कान से उस कान तक नहीं जायगी। अरे, तुम रूठ गई, इतनी ही बातों में। तुमको मेरी कसम थोड़ा-सा मुस्कुराओ।" भाभी मुँह उठा देती है।

बदन या सिर से कपड़ा थोड़ा-सा नीचे आ जाता तो लोग साव-धान कर देते। सीधा-साधा किसी के मुँह की ओर पल भर के लिए भी देखने से दूसरे उसकी निन्दा करते। सुस्त होकर एक घड़ी एकान्त में बैठ जाने से दादी सतर्क बना देती। "काम छोड़कर बैठना लाड़लापन नहीं

है, भगवान् जाने किसके भाग्य में क्या लिखा है ? सब चाहते है राजरानी बनना। लेकिन कितनों का राजरानी बनने का सौभाग्य होता है। मेरा ही दृष्टान्त लो, सात भाइयों के बाद मैं थी एक लाड़ली लड़की। सात पीढ़ी से हमारा वंश बहुत ही धनवान था। चौधरी परिवार को उस इलाके मे सब जानते थे। सात लड़कों के बाद एक लड़की, सात भाइयों में मैं एक ही बहन थी।"

सिर्फ 'छि.' कह देने या होशियार करने मे भी समय नही बीतता। अपनी सहेलियों के साथ आजादी। चारों तरफ धन्य-धन्य और प्रशंसा। रजपर्व, कुमार-पूर्णिमा में गाँव की लड़कियो के साथ हँसी-खुशी, सरल निरीह हास-परिहास। आलपना, चन्दन घिसना, पान बनाना, किस्म-किस्म के पकवान, कपड़ों का कुचन, फूल पिरोना, रंगीन तीलियों से पखे और डलिया तैयार करना, ताड के पत्तो से झुनझुना, सूत और ऊन का काम, नन्दिका ने सब सीख रखे है। जो देखता है वही सराहता है।

काम और शिक्षा के आनन्द में बाल-जीवन के वे दिन सचमुच कितनी जल्दी बीत गये। एक दूसरे घर जाना पड़ेगा, इसके बारे में भी कभी-कभी चेतावनी मिल जाती थी। शादी के बाद पहली बार मायके को आई हुई लड़कियाँ एकान्त में बैठकर अपनी नई अभिज्ञता की बातें कितने ढंग से कहती है। एक प्रकार की शका के साथ लेकिन बहुत चाव से नन्दिका सुन लेती। क्या सुनती समझ नहीं पाती। समझने का आग्रह होता है, फिर भी हिम्मत नहीं होती। जो साथ छोड़कर शादी कर लेती है और ससुराल जाकर लौट आती है, जैसे वे कुछ अजीब किस्म की बन जाती है।

गलियारे मे कंजरों का नाच, साँप खिलाना, भालू नचाना, रात को स्वाँग—हारावती-हरण। खड़े होकर 'पाला' करना—गाँव की औरतो के साथ मिलकर देखने मे कुछ भी बाधा नहीं होती। अश्लील कविताओं का श्लील अर्थ, रूप-वर्णन, अन्तःपुर-वर्णन सब कानों पर

ग्राते है। पहेली-सी मालूम होती है। चार ग्राँखों का मिलना, हाव-भाव, इशारा—यह सब गाँव की एक लड़की के लिए एक कहानी या उपन्यास के समान लगते हैं। देखने, सुनने ग्रौर पढ़ने में बहुत ग्रच्छा लगता है, लेकिन सपने में भी नहीं देखा जा सकता। सपने में भी मां ग्रौर चाची सतर्क कर देती है। "ग्ररी उस तरफ क्यों देख रही हो? सिर पर कपड़ा क्यों नही है?"

स्वप्न टूट जाता है। खट से नींद टूट जाती है। बदन कँपकँपाता है। छाती धड़कने लगती है। संत्रस्त नन्दिका चारों ग्रोर देखती है। उसने क्या सचमुच कुछ ग्रन्याय किया है? कोई मुनि या वीर पुरुष किसी धींवर कन्या या राक्षस, नाग या देव कन्या के प्रेम में फँस गये थे, किसी के पाँच पति थे, किसी ने विवाह की वेदी से किसी की लड़की को उठा लिया था, ये सब पुराणों के किस्से हैं। पढ़ने मे ग्रानन्द ग्राता है, सुनने के लिए मन करता है। ग्रभिनय—एक देहाती लड़की के लिए सम्भव नही है।

पड़ौस की ग्रौरतों मे झगड़ा, ग्रौरतों के झगड़ों से कैसे एक घर टूट कर दो हो जाता है, जो भाई ग्रपने दूसरे भाई को ग्रपनी जान से भी ज्यादा प्यार करता है वह उसका मुँह भी देखना नहीं चाहता, ये सब किस्से सुनने के लिए मिलते है, ग्राँखों के सामने ग्राते हैं शायद ग्रनजाने में उसका ग्रावेश मन में रह जाता है। इसके ऊपर सोच बैठने से ग्रजीब-सा लगता है।

नन्दिका का मन विद्रोही हो उठता है। वह ग्रपने ग्राप से कहती है, "मेरे भाई कभी ऐसे नहीं होगे। दूसरे घर में जाने के बाद मैं सब ही सह लूंगी। जेठानी रहेगी तो उसके पैरों में शरण लूंगी। देवरानी होगी तो गोद मे बिठाऊँगी।"

पुरी शहर की एक धर्मशाला में—रथ-यात्रा के समय दोतल्ले के ऊपर बराबर-बराबर के दो कमरों में दो परिवार। वहीं पहले-पहल सुनन्द

की आँखों के साथ आँखों की भेंट हुई। चार आँखों का अकथनीय आग्रह एक तीसरे आदमी की दो आँखों को भी धोखा नहीं दे सका। वे आँखें कनी की थीं। कनी हँस पड़ी थी। वहीं सम्बन्ध तय हो गया। सर्व मंगल जगन्नाथ प्रस्ताव।

सात साल बीत गये हैं। इस दौरान में माँ-बाप चल बसे है। दोनों भाई अलग हो गये है। हर एक अपना-अपना परिवार लेकर परदेश में रहता है—जहाँ नौकरी है वहीं। एक है पुलिस सब-इंस्पैक्टर। दूसरा आबकारी सब-इंस्पैक्टर। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों किसी की परवाह नहीं करते। कौन कहाँ रहता है इतना भी नन्दिका को मालूम नहीं। वह सिर्फ इतना ही जानती है, अपने पिता के घर जैसी यहाँ उसकी उतनी ताकत नही है। ससुराल में वह एकाधिपति है। विवाद करने के लिए दूसरा कोई भी नहीं है।

इतने आनन्द और इतने सुख के बावजूद भी मन विचलित हो उठता है, सवाल उठता है, क्या वह बाँझ है ?

नन्दिका के नयनों से आँसू झर पड़े।

ज्योतिषियों ने बेटे की कुण्डली और हाथ देखकर गणना करके कहा था, "नन्दिया के तीन बेटे और तीन बेटियाँ होंगी।" बचपन से ही सब ही कहते आये है। क्या सब ही ठग थे ? देखते-देखते सात साल बीत गये। सोने की प्रतिमा के समान लक्ष्मी बहू को खुद चुनकर घर को लाये थे। अब तक फल नही फला।

अभया ने करवट बदली। दोपहर को आँखों में नीद नहीं आती। पेट भर खा लेने के बाद शरीर सुस्त-सा लगता है। बिस्तरे में लेट जाने की इच्छा होती है। नन्दिका के इस घर में आने के बाद अभया

की पुरानी आदतें बदल गई हैं। वह सुस्त बन गई है। दूसरे पर निर्भर रहने की आदत पड़ गई है।

कैसे नहीं होगा। अपने घूँघट को नाक के ऊपर से माथे तक चढ़ा कर जब से नन्दिका ने सीधा चलना शुरू कर दिया है तब से अभया को कोई भी काम करने की जरूरत नहीं रही। नन्दिका ने हर काम की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। सास की सेवा करना उसका धर्म बन गया है। क्या दिन, क्या रात, पैरों में हाथ न देकर वह कभी नही उठती।

धन्य है उसकी माँ। ऐसी शिक्षा उसको दी है। जैसी काम में, वैसी ही ढंग में। राग-रोष, मान-अभिमान तनिक भी नही है। धीरे-धीरे ऐसी बात कहती कि इस कान से उस कान तक नहीं पहुँचती। आँखें इतनी सुन्दर है कि कितना भी बडा दुश्मन होने से भी एक बार निगाह भरकर देख लेने से दुश्मनी कही चली जाती है। उसके मुस्कुराते हुए चेहरे में क्या जादू है कौन जाने, उसकी एक भी बात को कोई कभी टाल नही सकता।

सौभाग्य से ऐसी सुलक्षणा बहू घर आती है। उसकी दो लड़कियाँ थी। सुनन्द के बाद—शोभा और आभा।

वह स्वयं गरीब घर की लड़की थी। मायके का उसमें कुछ भी अभिमान नही था। इसीलिए बड़े चाचा ने इस वंश के मझले बेटे के साथ उसकी शादी कर दी। कितने दिन और घर में रखते। देखते-देखते ही उम्र इक्कीस पर आ पहुँची। जिनके साथ शादी हुई वह भी थे अधबूढ़े। पहली पत्नी पाँच साल के बाद हैजे से चल बसी। पेट में पाँच मास का बच्चा था। स्वामी उसके बाद पागल-से होकर तीन साल तक घूमते रहे। फिर दूसरी आई। पाँच साल का संसार बना। एक लड़का हुआ, जच्चाघर में उसने आँखें मूँदी। दो घण्टे के बाद माँ ने भी विदा ले ली।

दो महीने बीतने से पहले ही विवाह की तिथि आई। पहले

'साहाडा' पेड़ के साथ शादी होकर उसके बाद अभया से शादी हुई। 'दूल्हा बूढ़ा है', चारों ओर ऐसी अफवाह उड़ गई। लोगों के हास्य-उपहास, टीका भागवत किसी पक्ष ने नहीं सुना। अभया बहू बनकर इस घर में आई। तीसरा साल पूरा होने के समय सुनन्द गोद में आया। एक साल के बाद शोभा। फिर एक साल बीतते न बीतते ही आभा। वही गाँठ पड़ गई।

जेठ के तीन लड़के, पाँच लड़की: देवर के पाँच लड़कियों के बाद एक लडका। बहु-कुटुम्ब का घर। बाप-दादे की अर्जित सम्पत्ति के अतिरिक्त और कुछ नही था। इस पीढी में सम्पत्ति का ह्रास हुआ है लेकिन वृद्धि नहीं।

जेठ बहुत लाडले थे। इसलिए एक तिनके के दो टुकड़े करना भी उनसे नहीं आता। उनका समय पोथी-पुराण पढ़ना और पाँसा-तास खेलने में बीत जाता है। देवर हर बात में लापरवाह। बात-बात पर हाथ उठाने वाला है। मृदंग के ऊपर ताल बजाना उसका व्यवसाय है। आखिर उसे गाँजा और अफीम की भी आदत पड़ गई है।

अकेला यही सुनन्द का बाप। विद्या बहुत अल्प। फिर भी बुद्धि विलक्षण। हर काम वही करते है। जमीन की हाल-हकीकत देखने से शुरू करके घर का हानि-लाभ और गाँव के सब कार-बार तक। जैसे-तैसे चल जाता था, पेटों की संख्या बढ़ी। छोटे-छोटे पेट बड़े-बड़े हुए। लड़के अनपढ़ होकर भूत के समान यहाँ-वहाँ घूम सकते हैं, लेकिन लड़कियों को तो पराये घर जाना पड़ेगा। पैसा कहाँ है ? एक लड़की की शादी के समय तीन एकड़ जमीन बेचनी पड़ी। फिर एक और फिर एक। चार एकड़ पाँच एकड़ खत्म हो गई। सब खत्म हो जायगी। अभया आई है सबके आखिर में। देवर के एक लड़के को छोड़कर उनकी तीन सन्तान सबसे छोटी हैं। स्वामी की नजर से बेटा, भतीजा, बेटी, भतीजी, एकसे भले ही दीख पड़ें, लेकिन अभया की आँखों को हरगिज नहीं।

जब सुनन्द आठ साल का था, तब सब अलग-अलग हो गये। इसका आरोप अभया पर लगाया गया। कितनी निन्दा, अपमान और अभिशाप झेलना पड़ा उसे। रोज सवेरा होते ही झगड़ा और हल्ला। छोटी-छोटी बातों से कलह बढ़ जाती है। पुरानी नींव छोड़कर नई नींव पर घर बनने से जीवन में शान्ति नहीं मिलेगी। झगड़े में दिन बीत जाने से काम के लिए समय कहाँ मिलेगा ?

गाँव के बीच में नया घर। शान्ति मिली। पाँच-छः साल का संसार। मेहनती आदमी। खेती-बाड़ी की देख-भाल, शाम को छोटी-सी दुकान। दोनों की मेहनत देखकर लोगों को ईर्ष्या होती है। दुश्मन कहते हैं, अधर्म का वित्त बहुत बढ़ेगा, लेकिन जाते समय समूल नष्ट हो जायगा। गाँव के लोग जाते-जाते गाँव के बीच में बड़ा घर और बगीचा देखकर कुछ समय तक देखते रह जाते है।

नारियल के एक सौ पेड़ अब फलने वाले हैं, केले का बगीचा—फल मिट्टी तक पहुँच जाते है। अरे घर में क्या नहीं है ? आम, जामुन, कैथ, कमरख, अमरूद, सहजना और अनार। जो चाहो। पहले इस जगह केवल जंगल ही था। सुबह-शाम गाँव की औरतें नाक में कपड़े देकर धीरे-धीरे इस रास्ते से जाया करती थीं। उस जमाने की छोटी-सी पोखर आज कितनी बड़ी बन गई। काँच के समान स्वच्छ पानी। रोहू और भाखुर मछलियाँ आमोद से उसमें तैर रही हैं।

रोज मौसम अच्छा नहीं रहता। कभी धूप, तो कभी लगातार बारिश। अँधेरा हो आता है। हवा छूटती है। आसमान को छूता हुआ देवदार का पेड़ झोंके खाता है। धरती तक झुक आता है। 'वाह-वाह' का स्वर लगाकर काल की पुकार 'अहा-हा' करती है।

क्या हुआ ? सिर्फ दो दिन का बुखार !

नन्दिया के बाप संसार से बिदा हुए। चिता में जलकर धुआँ और राख बन गये। अन्य के दुख में जिनके मन में हमदर्दी होती है, वे आए और तसल्ली देने लगे। जीवन और मौत नई चीज नहीं है। कभी भी किसी के घर आ जाते हैं। रो-रोकर विवश हो जाने से छोटे नन्हें बच्चे हताश हो जायेंगे। दब जायेंगे। उठो। अब घर सँभालो। अब तक तुम सिर्फ माँ थी, और अब से बाप बनोगी। माँ बनोगी।

जिठानी, देवरानी, उनके बच्चे, जेठ और देवर घर आये। हर एक की आँखों में आँसू। देवरानी जिठानी मन-ही-मन हँस रही हैं। छाती के नीचे हिंसा छटपटा रही है। अभिमान और परश्री-कातरता सिर उठा रही है। सियार के मुँह की आग के समान मुँह से बातें निकल रही हैं। कुलक्षिणी। स्वार्थपर। अकेली सब कुछ भोग करने के लिए घर को अलग-अलग किया था। कुलक्षण जगह, अनावादी जमीन, जहाँ दोपहर दिन को ब्रह्म-राक्षस, भूत-प्रेत, शैतान और देव-देवी आते-जाते थे, वहीं घर बनाया। अब उसका परिणाम निकला। बाप से ज्यादा ताऊजी हैं, चाचा, भाई और बहनें भी है। ये तीन बच्चे क्या मनुष्य नहीं बन सकेंगे ?

एक महीने तक बिस्तरे पर छटपटाने के बाद अपने भाग्य की निन्दा करके, आँखों के आँसू निःशेष बहाने के बाद अभया बिस्तरे से उठी। तीनों सन्तानें अनाथ-सी खड़ी है। भूख के मारे सूख गई हैं। लेकिन उस तरफ जिठानी, देवरानी की सन्तानों की हँसी-खुशी से घर भर उठता है। गाय-बैलों की छाती पर हड्डियाँ नजर आती हैं। आँखों में पानी। घर का कुत्ता भी चूहा-सा बन गया। सिर पर घाव। मक्खी भिनभिना रही हैं। दोनों बिल्लियाँ 'म्याऊँ-म्याऊँ' करके पैरों से शरीर सहलाती हैं। क्या कहती हैं, क्या विनती करती हैं।

पीछे की तरफ के सहन में आई। चारों तरफ खुला पड़ा है। नारियल के पेड़ों में एक भी फल नहीं है। और पेड़ों की भी वही

अवस्था है। तालाब में जगह-जगह घोंघों का ढेर लगा हुआ है। पानी गँदला है। मछली की तो बात ही क्या घोंघे, केंकड़े भी वहाँ नहीं रहे हैं। धान का घर खुला पड़ा है। कोठियों में धान कहाँ है ? एक ने आँखें बन्द कीं। दूसरे ने उसी की याद में बिस्तरा पकड़ा। आँखें रहते हुए भी किसी पर नजर नही रहेगी तो ऐसा ही सत्यानाश हो जाता है। ये तीन बच्चे दुनिया में कैसे मनुष्य होंगे ? क्या जिठानी, देवरानी, जेठ और देवर उनको मनुष्य बनायेंगे ?

कोई नहीं करेगा। चिड़िया के दोनों बच्चों के मुँह में उनके माँ-बाप दाना दे रहे है। एक नही रहता तो दूसरा देता है। भौंरा 'भौं-भौं' करके चारों ओर मँडरा रहा है। कोमल रोशनी पानी के ऊपर झिलमिलाती मानो पुकार रही है—'यहाँ आओ।' छोटी बच्ची माँ-माँ करके पास आ गई है। मझली नीबू के पेड़ के नीचे खड़ी है। नन्दिया मुँह सुखाकर इसी ओर आ रही है।

बाप मर गया है, लेकिन माँ तो जिन्दा है। बच्चे क्या अनाथ बनेंगे ? ना-ना-ना।

अभया ने सिर हिलाया, सिर के लम्बे बाल खुल पडे और पीठ पर बिखर गये।

खुले हुए बाल बाँधे नहीं गये। मानो पांचाली ने प्रतिज्ञा की है। वह जिस घर को बना गये थे उस घर को फिर बसाना पडेगा। जिस अनाबादी जंगल को अपने हाथ से खोदकर सिर से पसीना बहाकर उन्होंने नंदन-कानन-सा बना दिया था, अब पय के अभाव से वह कभी फिर जंगल न बने। और ये तीन बच्चे, जिन्हें दुनिया में लाने के लिए लोकापवाद के बावजूद उन्होंने तीन बार संसार किया था, क्या वे

मनुष्य नहीं बनेंगे ? वह मर गये हैं, लेकिन उनका उद्देश्य तो जिन्दा है। वह खो गये है, उनकी संचित सम्पत्ति अब वैसी ही पड़ी है।

यह काम कौन करेगा ? इस संसार में कौन किसके लिए क्या करता है। घर बनाने में आधे अपने होते है तो आधे पराये बन जाते हैं। आँखों में आँसू भरकर दुनिया के ऊपर अभिमान करके कर्तव्य से हट जाने मे कोई संसार को जीत नहीं सकेगा। एक महीने की अभिज्ञता ने उसके मन पर दाग लगाकर उसको यह सिखा दिया है। लज्जा, भय, संकोच, आलस्य और छलना सब दूर हो जायँगे।

उसकी कितनों ने कितनी निन्दा की है। दिखा-दिखाकर कितनी बातें कही हैं—ओह नन्दिया की माँ ? उसकी सूरत तो एक पिशाचिनी की सी है। खुले हुए बाल, मैले गन्दे कपडे, बदन या सिर पर तेल की गुजाइश नही। कितनी विडम्बना है। औरत होकर भी बगीचे में काम करती है। बच्चों से कराती है। नौकर मजदूरों से भी कराती है। इस गाँव में ऐसी मर्दानी बेशर्म बहू और कभी नही आई थी।

क्या सुनोगे तुम। खेत के धान और मूंग से लेकर बगीचे के केले के पत्ते और नारियल की डालियाँ तक वह सब कुछ बेचती है। सिर्फ पैसा ही पैसा। छिः छिः। सामान्य नीबू का एक फल, तालाब के किनारे से नाली की लता, सब बिकते हैं। अच्छा देखा जायगा, क्या-क्या अपने साथ गठरी बाँधकर वह मसान को ले जायगी।

जिनको मदद मिलती है, वे कहते हैं, जो हो, नन्दिया की माँ के मन में जरूर ऊहा के पद भरे हुए है। जब भी किसी को किसी चीज की जरूरत हुई, मुँह खोलकर माँगने से कभी मना नहीं करती। शाकपत्ता तो छोटी-सी बात है, धान, चावल, पेड़ के फल, तालाब की मछली। पैसे देने से भी अच्छा, नहीं देने से भी कुछ एतराज नहीं। कभी नहीं माँगेगी। फिर भी अपनी उपजी हुई चीज वह अकारण किसी को नहीं देगी। नुकसान नहीं करेगी। जरूरत न रहने से वह ब्रह्मा विष्णु की बातों पर भी कान नहीं देगी।

फकीर और भिखमंगे उसके आँगन से कभी हताश नहीं लौटते। हर एक को मुट्ठी-भर अन्न मिल जाता है। सिर्फ मुट्ठी-भर। मिन्नत करो या रौब दिखाओ, वही मुट्ठी-भर। नौकरों से काम लेती है, उससे ज्यादा प्यार भी करती है। पहिले वे, उसके बाद अपने बच्चे। नौकरों को अपने सामने बिठाकर खिलाती-पिलाती है। उनके घर की भी खबर लेती है। कोई बीमार है तो खुद दौड़ जाती है। बहुत होशियार। वे भी वैसे ही मानते हैं। नन्दिया की माँ की एक पद निन्दा सुनने पर वे गला पकड़ लेते हैं।

बड़ा लड़का सुनन्द, दोनों लड़की शोभा और आभा, मानो पढ़ाई को पी रही हैं। गाँव के मिडिल स्कूल से पढाई खतम करने के बाद सुनन्द को वृत्ति मिली, वह पढ़ने के लिए कटक चला गया। दोनों लड़कियाँ गाँव के स्कूल में पढ़ने लगी। उम्र बड़ी हो जाने के बाद अभया स्कूल से उनका नाम कटवा कर घर ले आई। सख्त शासन। मन में प्यार भरा है। लेकिन बाहर दिखाने से बच्चे बिगड़ जायँगे।

लड़कियों से वह क्या काम नहीं लेती—बरतन माँजने से गौशाला साफ करना; खाना पकाने से पुराण पाठ, और हिसाब रखना। कितने उपदेश भी देती है। संसार की अच्छाई-बुराई, नफे-नुकसान के बारे में भी सिखाती है। पड़ोस की औरतें घर आती तो बाहर जाकर कहने लगतीं, "नन्दिया की माँ ने अपनी लड़कियों को दासी बना रखा है। अच्छी साड़ी एक भी नहीं, अच्छा गहना एक भी नहीं। बाप रहता तो क्या उनकी यही हालत होती ?"

दूर के सम्बन्ध से भतीजी, कनी, देखने में कितनी असुन्दर है। एक दूसरे को दिखाकर उसके मामा ने जिसके साथ कनी की शादी

करा दी थी, चतुर्थी की रात में कनी को देखने के बाद उत्साही दूल्हा मुँह खट्टा करके घर से निकल आया। सुबह खबर मिली बाउरी बंधु घर से भाग गया है। दो महीने के बाद कलकत्ता से पत्र आया—पिताजी, जिस जन्तु को आप बहू बना लाये हैं, उसके घर में रहने तक मेरे साथ भेंट नहीं होगी।

ससुर किस कारणवश कनी को मामा के घर छोड़ गये, चार महीने के बाद कनी पहले उसको समझ सकी। जब खबर मिली, उसके पति ने और एक दूसरी जगह में एक भुवन मोहिनी कन्या के साथ शादी की है, तब वह रो पड़ी। पहले मामा चल बसे, उसके बाद मामी। मामा के तीन लड़के झगड़ा करके अलग हो गये। कचहरी को दौड़ने लगे।

कनी को अब कौन आश्रय देगा। सारा जीवन दुख से ही बीता है। अनाथ होकर बचपन से वह मामा के घर रही है। लोग कहते हैं, पिता के घर में जन्म लेने से लड़की सुख में रहती है। यही तो था कनी का सुख। जो हो, क्वाँरी होने का कलंक तो दूर हो गया। यही क्या उसका कम सौभाग्य है।

शादी से सात साल बाद भगवान की इच्छा के अनुसार कनी का भाग्य अभया के मन के साथ बँध गया। अब चार साल बीत गये हैं। काम छोड़कर कनी कही बैठी हो तो वह कुछ नहीं कहती। लेकिन अपनी लड़कियाँ चुप होकर बैठ जायँ तो अभया गरज उठती है।

अरे, एक औरत मकान बना रहीं है। घर में मालिक गंधिआ। जात का सअर। नौकर। हाथ में लाठी लेकर कनी बैठी है। एक टुकड़ा ईट या पत्थर उठाने के लिए किसी की हिम्मत नहीं है। कटक से मिस्त्री आकर काम कर रहे है। अपनी पढ़ाई छोड़कर भी कभी-कभी सुनन्द आ जाता है। तीन कमरों का एक पक्का मकान! धन्य एक औरत की करामात!

बड़ी लड़की शोभा की शादी। मध्यस्थ लोग गाँव-गाँव घूमकर वर

खोजने लगे, लेकिन असफल होकर लौट आये। आखिर सुनन्द ने सम्बन्ध तय किया। घर दूर गाँव में। पढ़ाई-लिखाई का सामान्य ज्ञान है। लेकिन ज्यादा पढ़ाई से क्या फायदा होगा। धनी घर का लड़का। जमीन, जमीनदारी और महाजनी सब कुछ है। शरीर का रंग थोड़ा कम है। रूप और गुण में बिलकुल दोष नही। सोने के जेवर में सजाकर लड़की को ससुराल भेजा गया।

इस गाँव में जो प्रशसा होती है उसको कौन देखता है, लड़की की ससुराल की तरफ से जो प्रशंसा की खबरे आती है उन्हें सुनकर अभया का मन उल्लसित हो उठता है। आँखों मे आँसू भर आते है। हाय, अगर बाप रहते तो कितने खुश होते। बाप नही थे, जेठ-जिठानी भी उस धाम को चले गये थे, इसलिए चाचाजी ने लड़की की शादी कराई।

आभा की शादी के समय उतना भी नही हुआ। देवर भी चल बसे थे। बड़े भतीजे ने कर्ता का काम किया। गौर वर्ण दोलगोविन्द की सब तारीफ कर रहे थे। दूर के जिले बलांगिर में एक गॉव मे उसका घर था। वह बहुत बडा डाक्टर था। अब दूर क्यों कहा जायगा? रेल मोटर और हवाई जहाज के इस जमाने में अब कौनसी जगह दूर रही है। सब नजदीक आ गई है। केवल 'नगद नारायण' रहने से सब आसान हो जाता है।

आभा की शादी पर शोभा आ नही सकी। गोद में दस रोज का लड़का। रो-रोकर पत्र लिखा। दैव का दुर्भाग्य है, उस पर और किस का हाथ रह सकता है? लेकिन सुनन्द की शादी के समय सब इकट्ठे हुए। आभा की शादी के पाँच साल के बाद। अपने दो लड़के और छोटी-सी लड़की को साथ लेकर शोभा आई। सम्बन्ध मे ननद, एक गरीब घर की लड़की ललिता। बच्चों की देखभाल के लिए उसको भी साथ लाई थी। आभा आई थी दोनों बेटियो को साथ लेकर। सिर्फ वही बदल गई है। नाक पर चश्मा पहने है। हाथ में घड़ी। पैरों में चप्पल। कपड़े भी जैसे एक अलग ढंग से पहनती है।

शादी की हुई लड़की। डॉक्टर की गृहिणी। कोई नही कह सकता। सहना पड़ेगा। दो महीने के बाद सब अपने-अपने घर चले गये। अभया को सपना-सा मालूम होता है।

सात साल से बहू बनकर जो गोद में आई है, उसके मुँह को देखने से ही लड़कियों को दूसरों के घर भेजने का दुख वह भूल जाती है।

लगता है कल, लेकिन सात साल बीत गये है। बीते हुए सब कुछ कल के जैसे मालूम होते है। पल भर में मन कहाँ का कहाँ दौड़ जाता है। बचपन से अब तक जो सब घटनाएँ घट चुकी हैं और जीवन को झकझोर दिया है उन सबके ऊपर निगाह डालकर लौट आता है। मन के नेत्रों को सब साफ दीखते हैं। दूसरे क्षण में क्या होगा कौन कह सकता है। आँखे नही देख सकती, मन ढूँढ-ढूँढ़कर लौट आता है।

जो लोग हाथ और माथा देखकर, राशि-नक्षत्रों की गणना करके देव-देवियों के नाम लेकर आगत भविष्य की कथा कहते है, वे सिर्फ अँधेरे में टटोलते है। तालाब के गँदले पानी में कीचड़ के नीचे से तनिक-सी मछली पकड़ना ही सार होता है। दस बातों मे से दो बातें शायद ठीक निकल आती, नही तो नही। बिलकुल नही आती तो कहने वाले आदमी और कही हुई बात के लिए अश्रद्धा हो जाती है। कभी-कभी एक सच हो जाती है तो मन कहता है, फला तो सही।

अभया के मन में मन्थन शुरू हो जाता है। ज्योतिषी ने कहा था, नन्दिया के तीन बेटों के बाद एक गोरी बेटी होगी। लेकिन अब तक तो वह फला नहीं। देवी-देवताओं का आसरा लेकर, उपवास और व्रत का पालन कर सुवर्ण प्रतिमा बहू नन्दिका की गोद में एक नन्हा-सा बच्चा भी नहीं आया। तब क्या वह—

मन में उस अशुभ शब्द का उच्चारण नहीं हो पाता। छाती काँप उठती है। सिर्फ सात साल की बहू, फिर भी मन के भीतर क्यों ऐसी चिन्ता आ जाती है। पन्द्रह साल बाँझ रहने के बाद अतुआँ की बीवी चम्पा को भी एक अमूल्य सुन्दर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है। अभया की आँखों के सामने ऐसी बहुत-सी औरतें आकर खड़ी हो गई। सब माँ बनी है। अरे, फिर भी नहीं होगा तो—भुवनेश्वर, हाटकेश्वर, गुप्तेश्वर, चन्द्रभागा—

लेकिन कल क्या होगा, कौन कह सकता है। पीला पत्ता, समय भी समाप्त हो आया है। सिर के बाल सफेद हो गये है। उठने से शरीर काँपता है। छाती मे क्या-क्या हो जाता है। ऐसे ही बहुत लोगो की गाड़ी बन्द हो गई है। हिचकी लेते-लेते ही जवान लड़का बीसी बारीक खतम हो गया। पुराण पढ़ते-पढ़ते गोकुली तिहाड़ी खतम हो गये। उमर ज्यादा नही हुई थी। राधी माँ तेलन—बीमारी कुछ भी नही थी, एक काँसा 'पखाल' खाने के बाद सो गई, तो सो गई। पुकारने से भी बूढ़ी की आवाज सुनाई नही दी।

कल क्या होने वाला है कौन कह मकेगा।

अभया छटपटाने लगी। उसने मन-ही-मन कहा, जाने के लिए ही तो आये हैं, आज नही तो कल, फिर भी एक नाती का मुँह देखने से पहले—

बड़ी-बड़ी आँखों से अभया सोटों की ओर देखने लगी। मन की भावना मन में ही रह गई।

नुपूर छमछमाते हैं। चम्पा फूल से घिरी हुई कबरी की मधुर गन्ध के साथ धीरे-धीरे चलने का आभास। हाँ, नन्दिका आ रहीं है। घर में

अँधेरा है। बहुत विलम्ब करती हैं। सब काम खतम होगा तब आयेंगी। पहले माँ की पद-सेवा, वहाँ भी देर हो जाती है। सात साल की गृहिणी। फिर भी शर्म से भरी हैं। आधी रात के पहले कभी भी इस घर में पैर नहीं डालती।

आज सुनन्द अभिमान दिखायगा। छल के साथ सो जायगा। खर्राटे मारने लगेगा। बात नही करेगा। पहले उनको बात करने दो। चतुर्थी की रात में तो बातें करके सुनन्द थक गया था। नन्दिका के मुँह से एक वाक्य नहीं निकला। मुँह पर हँसी आई; लेकिन भाषा का स्फुरण नही हुआ। रोशनी ही एक दुश्मन-सी है। उसे बुझ जाने दो। बुझ गई। अब पौ फट रही है, नन्दिका अवश्य बात करेगी। देखूँगा कैसे ओठों पर ताला डालकर बैठेगी।

ताला खुल गया। आवाज निकली, "अरे छिः!—ठहरो, आज नन्दिका की बारी है।" वह सुनन्द से बातें करवायेगी। सुनन्द खर्राटे मारेगा। कटक से वह साइकिल से पन्द्रह मील का रास्ता तय करके आया है—बड़ा रास्ता, छोटा रास्ता, नदी का बाँध, नहर का बाँध, बैलगाड़ी की लीक, खेतों की मेड और गाँव का गलियारा। पैर में दर्द, वह सोयेगा, बात नही करेगा।

सवेरा होने दो। नुपूर की आवाज। मन को पुलकित कर देने वाली चम्पा फूल की खुशबू। शर्मीली चाल। खत्म नही होती। खुले हुए कोमल शरीर का मन भुलाने वाला अमृत स्पर्श नही लगता। कम्पित साँस की उष्ण सुषमा देह में नही लगती। नन्दिका लौट गई—अभिमानिनी? ना, दूर हटकर बैठी। हाथ बढ़ाने से सख्त दीवार से हाथ लगता है। अरे, यह क्या है? स्विच।

बिजली की रोशनी झलक उठी। कमरा रोशनी से भर गया। आँखों मे चकाचौंध हो गई। सुनन्द ने आँखें खोलीं। थकान भरी नजरों से पल भर के लिए देखा। टेबिल पर छोटी जाज़ घड़ी 'टिक-टिक' चल

रही है। रात का एक बजा है। दीवार में झूलते हुए कैलेण्डर से रमणी की मूर्ति हँस रही है। हिमानी स्नो का वह है निर्जीव विज्ञापन। निर्लज्ज आभरण—अति निर्लज्ज दृष्टि और हँसी। टेबिल पर नन्दिका का फोटो। मुँह सूख गया है। शायद रो रही है।

सुनन्द विचलित हो उठा। उठकर बैठा। सचमुच, नन्दिका रोती रहेगी। आज शनिवार है। सिर्फ पन्द्रह मील का रास्ता। बहुत नजदीक है। वह जा नही पाया है।

क्यो ?

मन में शका हुई। अपने पास से वह एक भी कैफियत नहीं दे सकता। चम्पा के ऐसेन्स की खुशबू अब भी देह पर है। देह मे कोमल मांस का स्पर्श।

उनका नाम है हिमानी। ठीक यही कैलेण्डर की तस्वीर के समान।

शनिवार। बारिश, तूफान, गड़गडाहट। धरती काँप रही है। खेत मे पानी का स्रोत चल रहा है। पेड़ों से टूटकर शाखाएँ नीचे लोट रही है। अँधेरा। शाम का समय। पानी और कीचड से सर्वांग भरा है। जाड़े में शरीर काँप रहा है। केवल मुँह पर हिम्मत वाली विजय सूचक हँसी। लेकिन, नन्दिका की आँखो मे आँसू। भय से शरीर काँप रहा है। लज्जा-शर्म दूर फेंककर वह पास दौड़ आई है, अपने आचल से भीगे हुए शरीर को पोंछकर कह रही है, "ऐसे दुर्दिन मे कोई भी घर से बाहर नही जाता। बाहर के लोग भीग-भीगकर घर दौड़ आते है।" "नही, नन्दिका! पन्द्रह मील का रास्ता मुझे जरा भी मालूम नहीं हुआ।"

"जैसे कोई आफत आ पड़ी थी, वैसे क्यों दौड़ आये ?"

"तुम्हारे लिए।"

"मैं मर जाऊँ!"

रात का एक बजा है। घर नहीं जायगा, यह सोचकर उसने घर

को खबर नही भेजी। खूब जरूरत पड़ती तो वह कभी-कभी शनिवार रविवार को घर नही जा सकता। पहले से आदमी भेजकर खबर दे देता, नही तो घर मे वे चिन्तित रहेगे। आज खबर नहीं भेजी है। बूढ़ी माँ बहुत व्याकुल हो उठेंगी। नन्दिका की आँखों पर नीद नही आती रहेगी। शायद वह छटपटाती रहेगी। चुप-चुप रोती रहेगी। मन ही मन पूछती रहेगी, 'क्या हुआ ? क्यो नहीं आये ?'

खुद सुनन्द भी इन दोनो प्रश्नो का जवाब नही दे सकेगा। ऐसी हिम्मत उसकी नही है। काम ने उसे नही रोक रखा है। वह तो करीब-करीब आजाद है। किसी दूसरे का गुलाम नही है। कम उमर में बहू, अवस्था और जीवन की अभिज्ञता उसे मिल चुकी है। लाड़ला लड़का। पितृ-वियोग के बाद छात्र-जीवन का दुख। कॉलेज छोड़कर एक साल क्लर्की की नौकरी। चार-पाँच महीने स्कूल में मास्टरी। उसके बाद बेकार जीवन।

ना, बेकार नही कहा जा सकता। घर की देखभाल, खेती-बाड़ी का काम, गाँव के मामले, थोड़ी-सी राजनीति। यही तो मनुष्य का परिचय दिलाते है। खोखले आदमी को ठोस बना देते है। जीवन निर्वाह करने का रास्ता दिखाते है। चार पैसे के रोजगार का सहारा हो जाता है। पैसा ही जीवन मे असल चीज है। मन मे इस धारणा को बद्धमूल बना देती है। और सब झूठ है। "धन के बाद धर्म और धर्म के सहारे नरहरि।"

तो पहले धन चाहिए। कटक, शहर की जगह रास्ते के दोनों तरफ आकाश को छूते हुए मकान। रास्ते के ऊपर खुली हुई दुकानों में धन कुबेर, बड़े-बड़े पेट वाले। काले बाजार के साथ उनका परिचय है।

उन्होंने धन कमाया है। धर्मशाला बनाकर, बाढ़, अकाल और स्मृति मन्दिरो की निधि को भिक्षा देकर उन्होने धर्म का भी अर्जन किया है। नर के शरीर मे अवतीर्ण हरिओम को उन्होंने ही प्राप्त किया है। वे चोर नही है, डकैत या गँठकटे भी नही है। वे साधु है, वे सावधान है।

सुनन्द को सीधा रास्ता दीख पड़ा। एक्सपैरीमैन्ट का आग्रह पैदा हुआ। वह अवश्य अपनी नाव खोल देगा। बेड़ा पार हो जायगा तो अच्छा है। आधे रास्ते मे डूब जायगा तो तैरकर भीगा हुआ फिर किनारे पर आ जायगा। तैरना सीखना भी अच्छा है। वह जरूर सीखेगा।

"माँ, मैं व्यापार करूँगा। किसी का गुलाम नही बनूँगा।"

"तुम्हारी इच्छा बाबा।"

"पैसा ?"

अभया ने चाबियों का गुच्छा बढ़ा दिया। बोली, "देखो क्या है। जो कमाओगे, वह तुम्हारा बनेगा। जो गवाँओगे वह तुम्हारा ही जायगा। तुम्हारे साथ विवाद करने के लिए और कोई नही है। होशियारी से चलने से, एक पैर रखकर फिर दूसरा पैर डालने से फिसले हुए रास्ते मे भी पैर फिसल नही जायगा। लो—"

माँ के उपदेश से वह बाहर नही हुआ है। छोटे-से व्यापार से शुरू किया है। जो नफा हुआ उसका आधा अपने पास रखकर बाकी वितरित कर दिया। पेड़ों मे पानी दिया। पेड़ों के ऊपर झण्डा नही उड़ा था। पहचानने वाले उसको पहचानते है। किसी का कहना इन्कार नहीं किया जा सकता। उनके आदेश का पालन करता है। अरे, चपरासी नहीं करेगा तो दफ्तरी करेगा। वह नही करेगा तो हाकिम जरूर करेगा। उन्होने मुँह सुखाया। उसके बाद, जहाँ मन्दिर खत्म होता है। सबके बाद त्रिशूल—वहाँ पतित पावन का झण्डा उड़ रहा है।

सुनन्द को भी एक पतित कहा जा सकता है। वह सामने जा रहा

है। होशियारी से पैर डाल रहा है। कन्ट्रोल की छोटी-सी दूकान। कन्ट्रोल की बड़ी दूकान।

माँ का कहना वह भूल नहीं गया है। होशियारी से जा रहा है। मंत्र भी सीख गया है—देना, दिलाना और दाता कहलाना।

उसके लिए अवश्य लेना भी पड़ेगा। लोगे और दोगे। कभी-कभी उल्टी रीति से भी व्यापार चलता है—दोगे और लोगे। सुनन्द के लिए सब माफ है। जिनसे डर है वे सब उसकी मुट्ठी मे है। किसी के घर मे रेडियो बज रहा है। किसी की गृहिणी सपनो मे भी न देखी हुई साड़ी पहन कर अप्सरा बनकर स्वामी का मन आकर्षित कर रही हो, किसी की छोटी बेटी के गले मे सोने का हार।

वे सब ही सुनन्द को याद करते है। वे आँखें मूँद लेते है तो सुनन्द को गँदले पानी का मौका मिल जाता है। मिल गया है। उसने सुभीता हासिल किया है। रुपये कमाये है। चन्दा देकर सिफारिश लाया है। काम भी हासिल किया है। जो लोग सेवा के आदर्श को दुम-सा बनाकर ऊपर उठ गये उन्ही लोगों से। वे लोग कच्चे-पक्के सभी फल खाने लगे है। दूर परदेश के चमगादड़ों को निमन्त्रण देकर बुला लाये। लेकिन जिन लोगों ने पेड़ रोपा था उनको कुतरे और सड़े हुए फल ही मयस्सर हुए। ऊपर की ओर ताकना ही काफी हुआ।

सुनन्द को क्या परवाह है? उसने रुपये कमाये है। जो लाया है उसका आधा अंश अधिक अर्जन के रास्ते मे फिर लग गया है। बाकी विभिन्न क्षेत्र में बो दिया है। कटक में एक छोटा-सा मकान भी बनाया है। पास मे ही किराये पर घर दिये है। वहीं उसका गोदाम है। दुकान है। लोग लगे हुए है। गुमाश्ता बैठा है।

गाँव में जमीन खरीदी गई है। अगर दुर्भाग्यवश नाव डूब जायगी इसी भय से नये गहने के रूप में और नकद सोने की मोहर भी माँ के पास जमा करके वह निश्चिन्त बैठा है।

सुनन्द होशियार है।

गाँव के सभी आदमी उसी के हाथ मे है। गाँव की हर किस्म की तरक्की के लिए उसने ध्यान दिया है। शिक्षा, तन्दुरुस्ती, आर्थिक अवस्था में तरक्की। सिर्फ धन चन्दा देने से नहीं होगा। लोगों के मन भी एक करने चाहिए। बहुत धीरे से। बहुत होशियारी से। सात रोज में एक रोज रविवार। उसी रोज वह गाँव में आता है। हर काम करता है।

बहुत सीधा-साधा। बदचलन मालूम नहीं पड़ता है। मन मे गर्व या अभिमान जरा भी नही है। अपरिचित लोग भ्रम मे पड़ जाते हैं।

"अरे, सुनन्द बाबू घर मे है?"

"कहिए, मेरा नाम ही सुनन्द है।"

ऐसा भ्रम बहुत होता है। ऐसे एक भ्रम ने ही अतनु बाबू को सुनन्द का दोस्त बना दिया था।

अतनु किसी राजवश के थे। राज्य चले जाने के बाद राजा उडीसा के बाहर और कही ठहरने लगे। दूसरे भाई सचित धन के ब्याज के ऊपर निर्भर रहकर तीर्थ क्षेत्र मे माला जपने और धर्म कमाने लगे। उसी वंश के एक ये अतनु। व्यापार मे उनका आग्रह हुआ।

सुनार ही सोने को पहचानता है। अतनु ने भी सुनन्द को पहचान लिया। सिर्फ छ. महीने की घनिष्ठता थी। कटक मे एक नये ढग का होटल खोलने के लिए अतनु बाबू की इच्छा है। उनके पास धन की कमी नहीं है, वह केवल सलाह चाहते हैं। सलाह देने वाला आदमी एक सुनन्द ही है। अतनु बाबू आते है, अथवा कभी-कभी सुनन्द को ले आने के लिए अपनी पुरानी मोटर गाड़ी भेज देते है। सुनन्द मना नही कर

सकता। अतनु बाबू की दो सन्तानों को वह खूब प्यार करता है। वे नेपाली राजकन्या की सन्तान हैं। नेपाल के किसी छोटे जमींदार या जागीरदार की कन्या श्रीमती तुहिना देवी।

उनकी बड़ी बहन हिमानी। बंग पाकिस्तान के किसी जमीदार पुत्र के साथ उनकी शादी हुई थी। आत्मरक्षा और सम्मान-रक्षा के लिए हिन्दुस्तान भाग आने के रास्ते मे क्या-क्या घटनाएँ घटीं, वह हिमानी बिलकुल नही जानती। होश आने के बाद उनको मालूम हुआ कि वह एक विधर्मी के घर मे बन्दिनी है। उनका उद्धार किया गया। यवन आश्रिता को अपने घर मे स्थान देने के लिए भाई तैयार नही हो सके।

मजबूरन बहन के घर मे आसरा लेना पड़ा। दो साल बीत गये है। सास, ससुर, स्वामी, देवर और तीन सन्तानो के बारे मे उन्हें अब तक कुछ खबर नहीं मिली। शायद भूल गये हैं। औरों की शुभ कामनाओं के कारण शायद एक रोज खबर आयगी। शायद एक रोज सब आ पहुँचेंगे। आये या न आयें, उनकी कथा भूल जाने के लिए हिमानी कोशिश करती है। उसके लिए चाहिए दोस्ती। दोस्त चाहिए—जो दोस्त दुख की याद नही दिलायेगा। सिर्फ सुख की बातें करेगा। आँखों मे आँसू नही लायेगा, ओठों पर पुलक का संचार करायेगा, हँसी से जी भर देगा।

अब तक सुनन्द वैसा दोस्त नही बन पाया है। केवल छः महीने की घनिष्ठता।

किसलिए यह घनिष्ठता ? यह आगे कैसे बढ़ी ? विचलित होकर सुनन्द सोचने लगा। अतनु बाबू का पाँच साल का लड़का मलय और तीन साल की लड़की छबीला। दोनों बच्चे ठीक देवशिशु के समान

दिखते है। बिलकुल तुहिना के चेहरे के। वह है हिमालय राज्य की कन्या, उन्हे देखने से पार्वती के रूप की कल्पना करने की इच्छा होती है। उन्हीं के अग से उत्पन्न मलय और छबीला। देखकर मन खुश हो जाता है। प्यार करने को जी चाहता है।

पहले वे दूर-दूर रहते थे। धीरे-धीरे संकोच हट गया। वे पास आने लगे। अब सुनन्द को देखते ही वे पहले दौड आते हैं। गोद में बैठ जाते है, 'चाचा' कहकर पुकारते हैं। तुहिना कहती है, प्यार के साथ हिमानी भी हिदायतें देती है, "अरे तुम लोग क्या सुनन्द बाबू को बैठने उठने नही दोगे?"

सुनन्द प्रतिवाद करता है।

खुद हिमानी बच्चों की देखभाल करती है।

"आप जानते है सुनन्द बाबू, तुहिना को मैंने बच्चों के झमेले से मुक्त कर रखा है। पहले तीन सन्तान वह मुझे देगी। उसके बाद जितने होंगे वह है उसके। क्यों तुहिना?"

शर्म की हँसी से तुहिना का मुँह लाल हो गया।

"चुप क्यों हो गई? अच्छा तुम कहो अतनु।"

अतनु ने सम्मति सूचक हँसी हँसी और सिर हिलाया।

हिमानी कहती है, "देखिये सुनन्द बाबू, मलय और छबीला किसकी सन्तान जैसी मालूम देती है? मेरी या उसकी?"

सुनन्द जवाब देता है, "आप दोनों बहन अवश्य जुड़वाँ हैं।"

"नहीं, तुहिना मुझसे ठीक पाँच साल छोटी है।"

"तो एक ही ढाँचे में षष्ठी देवी ने दोनों को बनाया है।"

हिमानी खुश होती है।

मानो सुनन्द परिवार ही का एक आदमी है। अतनु को व्यस्त देखकर जरूरत के समय कभी-कभी सुनन्द ने रुपये का चैक काट दिया है। अब दो हजार से ज्यादा हो गया है। लिखा-पढ़ी कुछ नहीं हुई

है। मदद नही, उधार नही, दान भी नहीं है। तब वह क्या है ? उतना भी काफी नहीं। अच्छे दिन, पर्व और त्यौहार और जन्म-तिथियों में दोनों बच्चे, उनकी जननी और उनकी बहन को उसने भेंट भी दी हैं। उसका कुछ हिसाब नही।

विनिमय में, सुनन्द को मिला है स्नेह, आदर, आतिथ्य, व्याकुलता। जैसे वह उनका अपना ही बन गया है। अतनु बाबू की सहृदयता, तुहिना देवी के प्रति सम्मान, बच्चों को स्नेह और हिमानी देवी के लिए सहानुभूति। सहानुभूति की आड़ मे फिर भी उसके मन के किसी अज्ञात कोने में छिप-छिपकर कौनसी चीज क्रीडा कर रही थी, जानकर भी मानो जानने की उसकी इच्छा ही नहीं थी।

सान्निध्य। लालायित गति। प्रज्ज्वलित बह्नि के समान हँसी। अति होशियारी के साथ अपने तुहिनधवल परिपुष्ट आवृत देह की चपलता। तुतलाती हुई उड़िया, बंगला और अँग्रेजी से मिली हुई भाषा। भौंह उठाकर तीर के समान सुतीक्ष्ण दृष्टि। सुवासित आगमन। लम्बे और खुले हुए कज्जल रंग के केशों का हिलता हुआ प्रस्थान। तीन खोई हुई सन्तानो की वह जननी है! या तूफान से टूटा हुआ उत्क्षिप्त कुसुम ? कौन जाने। मन मे सन्देह होता है। एक रहस्य है। जानने के लिए आग्रह होता है। लेकिन पूछा नहीं जाता। वह जितना कहती है उतना ही सत्य के रूप मे मानना पड़ता है।

तीन सन्तानों की वह जननी है!

सिनेमा से लौटते समय। अतनु बाबू की वही पुरानी गाड़ी। आवाज से तीनों भुवन काँप उठते हैं। गाड़ी वे खुद ही चलाते हैं। सोते हुए सबसे छोटे बच्चे को गोद में लेकर तुहिना देवी पास बैठी है।

पीछे हैं हिमानी, मलय और सुनन्द। कैपिटल सिनेमा से अतनु बाबू का निवास सिर्फ तीन-चार मिनट का मोटर का रास्ता है। पहले बच्चों को घर पहुँचा कर फिर उनको सुनन्द को पहुँचाने के लिए भी जाना पड़ेगा।

रात के साढे नौ बजे हैं।

हिमानी ने मलय को गोद मे लिया। लाड़ करने लगी। पूछा, "तू ऊँघ रहा है मलय ? नींद आ रही है ? इस तरफ देख कितने लोग, कितनी दुकान, रोशनी—"

मलय को पास मे बिठाया। किसी भी संकोच के बिना सुनन्द की ओर हट गई। तुहिनधवल कोमल देह का अयाचित निःसंकोच स्पर्श। चम्पक सैन्ट लगाये हुए खुले लम्बे केशों की मधुर महक। चलती हुई गाड़ी के मृदु आघात।

रास्ता करीब-करीब खत्म हो आया।

"शो अच्छा लगा सुनन्द बाबू ?"

"क्या आपको थोड़ा-सा अश्लील नही मालूम हुआ ?"

"वाह-वाह, जीवन में फिर श्लील और अश्लील क्या है ? दोनों मे विभेदक कौनसा है ?"

"कपड़े ?"

"अगर मैं कहूँ—मन—"

हिमानी का प्रश्न पूछता हुआ मुँह सुनन्द की छाती के ऊपर झुक आया। महकती हुई केश-राशि देह के ऊपर बिखर गई। प्रश्न के जवाब के लिए वह बहुत आग्रही थी। रास्ता खत्म हो आया। यही तो वही मोड़—मोटर की होर्न दी गई। और आधे मिनट का रास्ता। वह प्रश्न का जवाब देगा।

नाक के पास चम्पा फूल की महक। इसी फूल के ऊपर नन्दिका का अत्यन्त स्नेह। खिड़की के उस तरफ पेड़ों की एक कतार।

टोकरियों फूल खिलते हैं। महक फैल जाती है। धीरज छूट जाता है। महक के साथ-साथ नन्दिका मन में समा जाती है। श्लील व अश्लील के बीच वसन नही है। मन, केवल मन। अपना विस्मृत विमुग्ध मुँह नीचे झुक आता है। स्वप्नपुरी की माया छा जाती है। सुनन्द का मन और काया मानो एकाकार हो जाते हैं। छाती के ऊपर किसी का मस्तक झूल रहा है।

सुनन्द के काँपते हुए ओठ नीचे झुकते है। बार-बार। सिर्फ मन ही बोलता है, नीरव है वह भाषा—सिर्फ मन, वसन नही है।

गाड़ी रुकी।

रात के दो बजे हैं। सुनन्द का मन भ्रमण करने लगा। हिमानी स्नो के निर्लज्ज विज्ञापन में वह नारी मूर्ति उपहास कर रही है—महाशय, मैं भी एक मन की कल्पना हूँ, तथापि कौन मुझे निर्जीव कह सकता है। हाथ से छूकर मुझे अनुभव कीजिए। आँखें मूँद लीजिए। मैं नहीं हूँ। मैं शून्य हूँ। अब आँखें खोल लीजिए। मैं चित्रकार की कल्पना हूँ। मन का रंग हूँ। धारणा ने ही मुझे जीवन दिया है। निर्लज्ज बनाया है। अश्लील बनाया है। आपके आग्रह को मेरी तरफ खींच लाया है। बहुत यत्न के साथ आपने मुझे टाँग रखा है। रोज-रोज आपने मेरे ऊपर से कालिख साफ की है। दो साल बीत गये हैं।

सुनन्द ने आँखें खोली। बाल नोंचे। मन में दुख हुआ। वह भटक गया है। अन्याय किया है। नन्दिका उसके कर्म को नहीं देख सकती। उसका स्वामी कृतघ्न बन सकता है, नन्दिका इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। आज जरूर उसने दुख किया होगा। शायद आँखों से आँसू

बहते रहेंगे—आये नहीं ! खबर भी नही भेजी ! क्या हुआ ? बीमार तो नहीं हो गये ?

टेबिल के ऊपर से सुनन्द ने नन्दिका का फोटो उठाया। किस दृष्टि से कौन तुमसे अधिक सुन्दर है ? इन लोगो ने संस्कृति को जलांजलि दी है। सभ्यता का एक नया अर्थ दे प्रकाश कर रहे है। नारी देह की नग्नता को छिपाने के लिए ये लोग वसन का इस्तैमाल नही करते हैं; नग्नता को अधिक परिस्फुट करके आदि मानव के स्तर को मन को खीच लेना चाहते है। आज यही हालत है। मुझे माफ करो नन्दिका, मैं प्रस्तर-युग मे लौट गया था।

छाती के ऊपर नन्दिका का फोटो। आँखों में झलझलाते हुए आँसू। सामने स्वर्ण युग की देवी। जिस युग मे जननी के रूप मे पत्नी का आविर्भाव होता है, वह स्नेह करती है, हिदायत करती है, अच्छा बुरा बता देती है। भगिनी के समान खेलती है, झगड़ती है, रूठ जाती है। कन्या के समान विनय करती है, आदर चाहती है।

तुम ही दोस्त हो। तुम ही प्रिया हो। मैं अनुतप्त हूँ।

सुनन्द की इच्छा हुई वह अपने सामने अपनी कैफियत देगा। अतनु बाबू के घर के साथ छः महीने की घनिष्ठता। उसके लिए उसने बहुत कुछ किया है। उत्सर्ग किया है। किसलिए ? कौन उसे खींच लेता है ? हिमानी नहीं। मलय और छबीला। नन्हे-नन्हे दो बच्चे। सुनन्द को देखते ही वे कितने खुश होते है। उनकी हँसी, खुशी, जिद और हुल्लड़ देखने के लिए ही तो सुनन्द वहाँ दौड़ जाता है।

नहीं, अब वह वहाँ नही जायगा। दूसरों के बच्चों को अपने जैसा प्यार करने से भी वे अपने नहीं बन सकेंगे। सिर्फ अधिक-से-अधिक दुख ही मिलेगा। उसके साथ-साथ मन विकल हो उठेगा, बहुत किस्म की जटिलताएँ भी आ जायँगी। ऐसी कमजोरियों को वह कभी प्रश्रय नहीं दे सकता।

नन्दिका के फोटो को उठाकर वह गौर से देखने लगा। वह अब हँसती नहीं। रोती भी नहीं। शर्म से संकुचित हो गई। नन्दिका जननी बनेगी। पहले वह मलय को तैयार करेगी, उसके बाद छबीला। उसके बाद—

कनी चालीस पार कर गई है। रूप बहुत असुन्दर फिर भी गुण बहुत सुन्दर। तुरई के बीज जैसा काला रंग। मानो काले पानी की बूँद गिर रही है। एक आँख दूसरी से थोड़ी-सी छोटी है। नाक चपटी-सी है। सामने के दो दाँत थोड़े बाहर को नजर आते हैं, इसलिए वह हमेशा ऊपर वाले ओठ को खींचकर नीचे वाले ओठ से मिलाने की कोशिश करती है। देह मोटी है, फिर भी गाल ठीक एक लकड़ी के तख्ते के समान। ऊँचे माथे पर सिन्दूर का एक बिन्दु चमकता है।

कनी को सब असुन्दर कहते हैं। बचपन से ही ऐसे कहते आये हैं। लेकिन कनी को इस पर विश्वास नही होता। शादी के पहले जब उसे स्नान कराया जाता था, तब उसे अच्छी तरह से महसूस हुआ कि वह बिलकुल असुन्दर नहीं है। जिस रोज यह मालूम हुआ कि अपने दूल्हा ने उसका परित्याग किया है तब वह सच बात समझ सकी। इस दुनिया में उसका क्या भरोसा है, क्या स्वार्थ है ?

माथे पर सिन्दूर की यह बिन्दी ! हाथ में दो-दो चाँदी के कंगन। जिसके लिए उसने यत्न के साथ इन्हें पहना है, वह सुख से रहे। आनन्द से ही रहे। उसकी अच्छी खबरें ही सुनने को मिलें। जिनके घर में उसे आसरा मिला है, साल के बाद साल बिता दिये हैं, वे भी कुशल पूर्वक रहें। उनका सुख ज्यादा से ज्यादा होता जाय। इस घर की वह कोई भी नहीं है, फिर भी सब है—बेटी है, गृहिणी है, नौकरानी है।

सब ठीक चल रहा है। घर में धन-धान्य भरा है। घर हँस रहा है। हँसी के भीतर कही विषाद भी छिपा हुआ है। भाभी की गोद में एक सन्तान का अभाव रहा है। वह अपनी सम्मति नही देती तो नन्दिका इस घर की बहू बनकर कभी नही आती। सात के बाद आठवाँ साल चल रहा है। कोई भले ही न जाने, लेकिन वह जानती है। शादी के दिन से ही सुनन्द भाई नन्दिका को कितना प्यार करते हैं! जिस नन्दिका को सजाकर रोज आधी रात को वह सोने के कमरे में छोड़ आती है, फिर उसी को बड़ी भोर अपने हाथों से नहलाकर पूजा के कमरे में छोड़ आती है। उसकी तमाम सेवा व्यर्थ ही गई।

बूढ़ी आजकल सिर्फ तुम्हारे लिए ही अपने मन के बहते हुए दुख को बाहर निकाल रही है, "तू कुलक्षणी"—

"तुम चुप हो जाओ मौसी, भाभी इसी तरफ आ रही हैं"—

"आने दो। लोग कहते हैं बाँझ का मुँह देखने से त्राहि और गति नहीं मिलती। वह बहू हो या जो हो इसमें मेरा क्या?"

"तुम्हारे पैर पकड़ती हूँ, तुम चुप हो जाओ"—

लातें खाती है, तब भी बूढ़ी का मुँह वह बन्द कर देती है। दिन-रात सोचा करती है। देवताओं से मिन्नतें करती है। उसका और क्या चारा है? नन्दिका या सुनन्द का समय अब भी खत्म नहीं हुआ है। बूढ़ी के सिर्फ उतावली होने से क्या होगा? क्या यह किसी के हाथ की बात है? शायद उसके मरण का समय अब नजदीक आ रहा है। नहीं तो नन्दिका जैसी बहू के ऊपर वह कभी लांछन नहीं लगाती।

सुनन्द क्यों आजकल हर शनिवार को घर नहीं आता? पत्र लिखकर भेज रहा है—काम की भीड़, व्यापार बढ़ रहा है, उसके लिए बूढ़ी का गुस्सा नन्दिका के ऊपर और ज्यादा हो जाता है। व्यापार बढ़ना जैसे नन्दिका का कसूर है। कहाँ का पानी किस रास्ते में कहाँ जाता है, यह समझना कनी की बुद्धि को अगम्य है।

"कौन है रे, दोपहर को क्षण भर सोने भी नहीं देंगे। ठहरो, दरवाजे को क्यों खटखटा रहे हो। क्या देरी बिलकुल नहीं सही जाती ?"

कनी ने दरवाजा खोला।

बाहर से घर के भीतर सुमित्रा आई। साथ में दो बच्चे। गोद का बच्चा छाती पर। साथ में यही तीन हैं। लेकिन इतना ही काफी नहीं है। पहले और तीन हैं, जो स्कूल को गये होंगे।

धन्य यह सुमित्रा। गोरी पतली औरत, सिर्फ हड्डियों से बनी है। फूँक मारने से ही गिर पड़ेगी। पाँच लड़कों की माँ है। नन्हे बच्चे का रोना सुनते ही पड़ोस के लोगों को मालूम होता है राजीव को फिर कुछ एक हुआ है।

फिर क्या हुआ ?

वही काठ के फल से एक—लड़का।

राजीव लोचन सुनन्द के चचेरे भाई। उमर में छोटे हैं। गाँव के स्कूल से मिडिल पास करके घर में बैठे हैं। बेकार का समय कैसे बीतेगा ? नहरों और तालाबों से मछली पकड़ना, ताश खेलना, किसी के बगीचे से केले चुराना, अच्छे आदमी को गलत रास्ता बताकर रास्ते से भटका देना। यही काम है। बाप और ताऊजी के अलग होने के बाद जब चारों ओर से अभाव आ पहुँचा और अवस्था को शोचनीय बना दिया, उसी समय से राजीव का मन घर की तरफ लौट आया।

राजीव में परिवर्तन हुआ।

हर काम उसने अपने हाथों से ही किया। लोग ताज्जुब करने लगे। राजीव इतना कैसे बदल गया ? माँ-बाप की बातों को तो छोड़ो, जिठानी और सुनन्द भाई की बातें वह कभी अमान्य नहीं करता।

बड़ा अनुगत रहता है। उनके बताये हुए काम कर लेता है। मदद करता है। मदद लेता है। छोटी उम्र में माँ-बाप ने सुमित्रा के हाथ के साथ उसका हाथ बाँध दिया। बहू आयेगी तो घर सम्हाल लेगी।

तीन बहनों की ब्याह-शादी में घर की सम्पत्ति करीब खत्म हो चुकी थी। बाकी जो थी, वह गई माँ-बाप की अन्त्येष्टि क्रिया में। बीवी-बेटे जियेंगे कैसे। सुनन्द ने बोझा उठा लिया। अब वह सुनन्द का दाहिना हाथ है। अत्यन्त विश्वासी। सुनन्द बाहर के कामों के लिए ही मजबूत है। असल काम करता है राजीव लोचन। भाई खुशी से नही देंगे तो सोने के ऊपर भी राजीव हाथ नही देगा। हिसाब बढ़ायेगा। व्यापार मे लगायेगा।

अभया उस पर बहुत विश्वास करती है। नन्दिका भी। कटक मे व्यापार का काम छोड़कर एक घड़ी के लिए भी गाँव आने के लिए वह राजी नही होता। घर के हाल देखने के लिए अथवा चिट्ठी या रुपये माँ के पास भेजने के लिए बीच-बीच मे सुनन्द जबरदस्ती उसे घर भेजता है। भाई की जबरदस्ती का परिणाम—सुमित्रा की पाँच सन्तान। यह दु:ख किसी से कहा नही जाता, फिर भी उसकी आँखों के सामने साफ नजर आ जाता है।

सुमित्रा किसी भी बात को छिपा नही सकती। उसे अपरिचित बहुत आदमी गलत समझ सकते है। लेकिन वह कभी किसी की निन्दा नहीं करती। वह जब जो देखती, सुनती या अनुभव करती है दूसरों के साथ बात करते-करते उसे खोल देती है। कही हुई बातों का परिणाम क्या होगा वह उसका विचार कर ही नहीं सकती। दूसरों के घर मे झगड़ा हो जाता, तो वह बहुत व्यस्त होकर कहती—"क्यों मैंने यह बात उसको कह दी। दूसरे का कहना झूठ था, इसके बारे में तो मुझे किसी ने कुछ कहा नही था। झूठ बोलने का परिणाम अब उसे भोगना पड़ रहा है। फिर भी मैंने क्यों कह दिया।" सुमित्रा कान उमेठकर अपने को चाँटा मारती।

गाँव की औरतों के एक साथ बैठकर खुशो से दूसरों की चर्चा करते समय अगर सुमित्रा अकस्मात वहाँ पहुँच जाती तो कहती हुई औरतें बातें बन्द कर देती। वे चुप हो जातीं। औरत का स्वभाव ऐसा है कि पाँच देखी हैं तो कहते-कहते अनजाने में पच्चीस कह डालती है। अगर सुमित्रा के कानों में वह बात पड़ जाती तो पत्थर की लकीर हो जाती। इसीलिए सब चुप हो जातीं।

राजीव लोचन भी खुशी के साथ गृहिणी के सामने दुनिया की अच्छाई-बुराई चार बातें करने से हिचकिचाते। कभी बातें चलतीं तो घर का हानि-लाभ, बच्चों की पढ़ाई, जमीन का हिस्सा, और गाय-बैलों की तत्व कथा ही चलतीं।

अपनी स्त्री को वह कभी पराई नही समझते। फिर भी औरो के साथ उसे भी वे समान के रूप में कभी ग्रहण नहीं करते। वे उसे मूर्ख, बुद्धिहीन, और सरल विश्वासी समझते है। फिर भी बीच-बीच में खुशी की एक-दो बातें अचानक निकल जाती, निकल जाने के बाद पछताना पड़ता।

वे घर आये थे। एक रोज ठहरे और उसके बाद लौट गये।

"**तूने** सुना है कनी, बाबू का यह क्या ढंग है ?"

"क्या है भाभी ?"

"वह कह रहे थे—किसी राजवंश का बेटा और उनके शंख के पुतले के समान दो बच्चे—एक लड़का, एक लड़की। बाबू उन्हें अपने बच्चों के समान प्यार कर रहे हैं।"

"अच्छे बच्चे देखने से स्नेह श्रद्धा दिखाने के लिए सब का जी

चाहता है। भाभी, देखती नही हो, तुम्हारे बच्चो को हमारी बहू कैसे प्यार करती है ?"

"क्या इसके लिए बच्चो की माँ और मौसियों को भी प्यार करना पड़ेगा ? काम से जी चुराकर बच्चो की मौसी—वह एक जवान लडकी, मानो एक मैम—उनके साथ, समय नही असमय नही, घूमने के लिए निकलना क्या अच्छा है ?"

ताज्जुब से कनी सुमित्रा के मुँह की ओर देखती रही। क्या सुमित्रा ताजी मछली में कीड़े डालना चाहती है ?

वह कह रहे थे—"नन्दभाई तुम्हारे देवर है या जेठ है ?"

"उम्र से जरूर जेठ है लेकिन नन्दी दीदी मेरे बहुत बाद आई है, मेरी नजर मे वह अब भी बच्ची है। मैं पाँच बच्चों की माँ हूँ। उसी हिसाब से देखने से बाबू मेरे देवर से भी हीन है। उनका बचपन ही नही गया है। कटक शहर जैसी जगह, डायनो से भरी हुई है। मैं तो चाहती हूँ नन्दी दीदी को अब कटक जाना चाहिए।"

"तुम क्या कह रही हो ?"

"सच कह रही हूँ। अच्छी बात कह रही हूँ। पुरुष का स्वभाव तुम्हे क्या मालूम, तुमने पति का मुँह कभी देखा भी नही, गोद मे एक भी बच्चा लिया नही। तीन साल, पाँच साल, खूब अच्छा आदमी होने से सात साल। उसके बाद चमडे की चमक मर्दो को बाँधकर नहीं रख सकती। अति परिचित हो जाने के बाद घर की गृहिणी हर-रोज का कुर्ता और पाजामा-सा बन जाती है। अगर गोद मे बच्चे होते हैं तो बात कुछ दूसरी होती है।"

जिज्ञासा भरी दृष्टि से कनी देखने लगी।

"तुम समझ नही सकोगी कनी। नन्हें बच्चे का लोभ, उसके खेल व कौतुक, हँसी, तुतलाहट, बीमारी सब मिलकर मर्द को खम्भे से बाँध देते है। गृह की गृहिणी रोज का पहना हुआ पुराना कपड़ा होने से भी

उसी से मर्द बँधा रह जाता है। जब पथरीली या रेतीली जमीन में फसल नही फलती तो किसान उर्वर जमीन ढूँढ़ने के लिए जाता है। उसकी इच्छा होती है, कोशिश करता है। जिस किसान के पास अव्वल जमीन रहती है क्या वह सिर्फ एक फसल के बाद चुप बैठ जाता है ?'

कनी चुपचाप केवल सुनती ही रही।

"बाबू कटक मे किसी के दो बच्चो को प्यार कर रहे है। गाँव आने के लिए समय नही मिलता। वह मुझे यही कह रहे थे। नन्दी दीदी को वही बात कहने के लिए मै आई हूँ। अब उसे किसी की बात नही सुननी चाहिए। सीधा कटक जाना चाहिए। मै कहे देती हूँ ज्यादा देरी हो जायगी तो हाथ से निकल जायँगे। मर्दो की आदत ऐसी ही है।"

कनी की आँखों मे आँसू आये।

"रो रही हो।"

"नन्दिया भाई—?"

"हूँ, वही तो कह रहे थे।"

"भाभी—"

"कहो, रोती क्यों हो ?"

"तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। तुम चुप हो जाओ। बहू से ये बातें मत कहना। तुमको मेरी कसम। और किसी से भी मत कहना। तुम तो ठीक विचार से कह रही हो, लेकिन नतीजा बहुत खराब होगा। बहू सुनेगी तो आत्म-हत्या कर लेगी।"

"एं ! तू क्या कहती है ?"

"सच कहती हूँ। तुम्हारा मतलब जैसा है मैं वैसी ही कोशिश करूँगी। तुम चुप हो जाओ। शायद अब वह उठ गई है। दरवाजा खोलने की आवाज आ रही है। तुम यहाँ से जल्दी चली जाओ।"

मानो मार खाती हुई सुमित्रा एक बच्चे को गोद में लेकर दूसरे का हाथ पकड़कर उसे खीच-खीचकर वहाँ से भाग गई। छाती धड़क रही

है। सच, नन्दी दीदी सुनेगी तो आत्म-हत्या कर लेगी ? एक के बाद एक उसने कई औरतों से ये बातें कह दी है। अब क्या करना है ? उनके पास जायेगी। एक के बाद एक उनके हाथ-पैर पकड़ कर मिन्नत कर आयेगी। 'तुम्हारे बाप और भाइयों की कसम, यह बात और किसी से न कहना।'

अब सुमित्रा क्या करेगी ?

लकड़ी या पत्थर की एक प्रतिमा की तरह अभया ने पालुणी की बात सुनी। वह नाइन है। गाँव में घर-घर घूमकर गाँव की औरतों के नाखून काटती है। पैर पर महावर लगाती है। सब की भीतर की बातें सुनती है। अपने भीतर जमा रखती है। अपने बहू होने के दिनो से वह पालुणी को देखती आ रही है। अब पालुणी करीब-करीब बूढ़ी हो गई है। तेरह साल की उम्र मे बहू बनकर वह इस गाँव मे आई थी। वह जमाना दूसरा था। अब तो कानून बन गया है कि चौदह के पहले लड़की की शादी नही होगी और सोलह के पहले वह ससुराल नही जा सकेगी। कानून न मानने के जुर्म से पालुणी का दूल्हा तेरह साल की लड़की से शादी करके मुकदमे मे बहुत हैरान हो गया। और जुर्माना देकर आखिर उसे रिहाई मिली।

बाघ के एकदम मार देने से इतना दुख नही होता है जितना उसके पकड़कर खींचने से होता है। पालुणी जहाँ बैठ जाती है पहले ही वही बात शुरू कर देती है। आहा, इतने से भी बेचारी बेटी बच नही सकी। पन्द्रह साल की बेटी। चार रोज दुख पाकर आखिर उसी पुर को चली गई। दस महीने का बच्चा पेट में ही मर गया। ओहो, कैसी बात है वह ! पालुणी भूल नहीं सकती। वही बात वह कहती है। आँखों में से आँसू बह निकलते। उसके बाद दूसरों की बातें सुनती। सिर्फ सुनती

है। खुशी होती है तो खुद भी कुछ कह देती है। 'खुशी हो तो सुनो ! नही तो नही।'

वह कभी झूठ नही बोलती। बातों को बढ़ाना उसे नही आता। घर-घर में झगड़ा नही कराती। सब ही तो उसकी मालकिन हैं। सबके पैर पकड़ लेगी। आते-जाते जो देखती या सुनती, कह देती। यही उसकी रीति है। झूठ बोलने से क्या फायदा ?

पालुणी सच कह रही थी ? गाँव में चारों तरफ यह बात फैल गई है। दुश्मन हँस रहे है। पाँच-सात औरतें एक साथ बैठकर चर्चा कर रही हैं।

तुम सच कहती हो ? आखिर मेरे सुनन्द का यही हुआ ! कही की डायन को देखकर अपनी माँ और पत्नी को तुच्छ कर दिया। वे छोटे-छोटे बच्चे किसके है ? दिन-रात उन्ही को गोद मे लेकर घूमता रहता है ? इसीलिए एक महीने से घर नहीं आया है। केवल पत्र भेज देता है, 'बहुत काम है।' यही काम है !

निस्सहाय निगाह से अभया चारों ओर देखने लगी। दिन ढल चुका है। पहला अगहन का महीना है। जाडा लगना शुरू हो गया है। सामने बड़े तालाब मे काँच के समान पानी। चारों ओर नाना किस्म के पेड़। पालुणी की बात सुनकर मानो सब निश्चल होकर देख रहे है। विश्वास नही कर पाते है। आखिर सुनन्द का यही होगा ? यह घर, सम्पत्ति, बगीचा—ये किसके लिए है ?

अभया को दुनिया में बहुत अकेलापन महसूस हुआ। उनका और कोई भी नही है। इस कुलक्षिणी पालुणी ने क्यों घर के पीछे की तरफ उन्हें बुलाकर ये सब बातें कहीं। गाँव में सबको मालूम हो गया। क्या कनी को मालूम नही होगा ? उसने कहा नहीं। क्यों ?

असल बात को छिपाकर उसने कई दफा कहा है—"दीदी, तुम और भाभी एक बार कटक की ओर घूम आओगी तो क्या अच्छा नहीं होगा ? तब तक मैं घर की देखभाल करूँगी।"

"लेकिन क्यो ? कटक तो हम बहुत बार देख चुकी है। बहुत बार वहाँ रह चुकी है। इस लक्ष्मी के महीने मे घर छोड़कर कोई बाहर जाता है क्या ?"

"कटक मे तो तुम्हारा घर है।"

"अच्छा, इस महीने के बाद देखा जायेगा।"

कनी को सब मालूम है। लेकिन वह चुपचाप सह रही है। और बहू ? नही नही। उसके ढग और बातचीत से यह मालूम नही होता कि वह जानती है। शायद सुनी है और हँसकर उड़ा दी है। एक महीने के लिए घर न आना सुनन्द के लिए कोई नई बात नही है। काम ज्यादा रहता तो कभी-कभी ऐसा ही होता। आज एक असम्भव बात सुनने को मिली है, इसलिए नई सी मालूम पड़ती है।

सच हो या झूठ, यह बात चारो ओर फैल गई। सच नही है तो भी सच होने मे कितनी देर लगेगी ? राजीव सुनन्द से पाँच साल छोटा है लेकिन वह पाँच बच्चों का बाप बन गया।

एक नाती गोद मे लेने के लिए मन बहुत चाहता है। सात-आठ साल ससार करने के बाद बच्चे का मुँह देखने के लिए किसका जी न चाहेगा ? जिस औरत की गोद मे एक भी बच्चा नही आया, वह औरत औरत ही नही है।

क्या नन्दिका बाँझ है ? यह बात सही नही जाती। फिर भी सच बात को छिपाने से मन को सन्तोष नही होता। नाती का मुँह देखने के बिना क्या उन्हें आँखे मूँदनी पड़ेंगी ? क्यों ? नन्दिका उनकी कौन है ? वह तो पेट से पैदा नही हुई है। इसी वंश के बच्चे को उसने पेट में धारण नहीं किया है। तो लोभ किसके लिए ? उसके पति ने जब उसको तुच्छ समझकर छोड़ दिया, तो उस पर इतना लोभ क्यों ?

सुनन्द को एक लड़का गोद लेना चाहिए—बहुतों ने ऐसी राय दी है, खबर भी भेजी है। पत्र लिखकर दोनों लड़कियों ने भेजा है—माँ,

लड़का कौन है और भतीजा कौन है ? गाँव के लोग आपस मे कहने लगे, लडका होने से भी तो सुनन्द के पाँच लड़के है। उसने राजीव को मनुष्य बनाया है, नया घर बनवा दिया है, बच्चो की देखभाल करता है। पाँचो मे से चुनकर वह एक जरूर अपनी गोद लेगा। लडका और भतीजा, इनमें अन्तर क्या है ?

गंधिया सअर ने एक रोज चुपचाप कहा, "माँजी, अगर बाहर से ही लाना हो तो आसपास या वश से नही लाना चाहिए। उसमें अशुभ है। जिसके साथ बिलकुल कुछ भी सम्पर्क नहीं हो उसी से लाना चाहिए।"

गंधिया की बहू असल बात बोली "नही माता जी, बाहर से लाने से कुछ काम का नही होगा। इतनी फिक्र क्यों, हम सब भगवान से आरजू कर रहे है, बहूरानी के जरूर एक लड़का होगा, कुल उज्ज्वल करेगा।"

उसी आशा मे वर्षो बीत गये है, और प्रतीक्षा करना सम्भव नही है। सुनन्द बाहर से लड़का लायगा, उसके मरने के पहले यह कभी नही हो सकता। सुनन्द की वह दूसरी शादी करायगी। अभी तो बहुत उम्र बाकी है। शायद सुनन्द की भी वही इच्छा है। मन की बात वह प्रकट नही कर सकता। वह माँ है, बेटे के मन की बात वह नहीं समझेगी, तो कौन समझेगा ?

सुनन्द भी लड़के के लिए इच्छा करता है। उसी के लिए तो वह दूसरों के लड़कों को प्यार करता है। नन्दिका जैसी लक्ष्मी बहू घर में होते हुए भी उसकी नजर और किसी के ऊपर जा पडी है। वह जो हो, रूप में और गुण मे वह नन्दिका से अवश्य हीन होगी। आठ साल के संसार में उन्होंने कभी लडके और बहू के सूखे मुँह नहीं देखे हैं। उनको देख लेने से ही स्वर्गपुर-सा लगता है। वे लक्ष्मी और नृसिंह के समान दीखते हैं। मन भर जाता है।

हाँ, ये दोनों मेरी दो आँखें हैं। मेरे जीवन के कारण।

अभया की आँखों में आँसू भर आये।

मुँह मोडकर अभया पीछे की ओर देखने लगी। नन्दिका कब से आकर पीछे खड़ी है। उसने क्या सुना, क्या वह सोच रही थी, सब भूल गई। ऐसी बहू की एक बात सुनने से, बहू के मुँह की तरफ पल भर के लिए देखने से वह सब दुख भूल जाती है। उसकी एक ही पुकार 'माँ' के भीतर दोनों लड़की और बेटे की सब पुकार छिपी हुई है। उनकी तीन सन्तान बहू की इस सुवर्ण प्रतिमा के भीतर समा गई है।

ताजे बेला के फूल के समान सुन्दर मुँह हठात् इतना मुरझा क्यों गया? दुख, उद्वेग और अज्ञात भय मे काँपते हुए ओठों से बातें निकली—

"माँ, आप यहाँ क्यो?"

अभया कुछ जवाब न दे सकी।

"माँ, तुम रो रही हो?"

नन्दिका की आँखो में आँसू छलछला आये।

ऐसा उन्होंने कभी नही देखा था। तब उसको भी मालूम हो गया। मालूम हो गया कि सुनन्द ने उसकी अवहेलना की है। सब झूठ है। लोग सह नहीं पाते हैं इसलिए कहते है। सिर्फ ईर्ष्या है। घर बिगाड़ने के लिए बैठे है। उनकी हिम्मत तो बहुत हो गई!

"बीती हुई बाते मन मे आई, बहू!"

"माँ, भीतर आइए, अब ओस पड़ने वाली है।"

"चलो।"

लडखडाती हुई अभया सामने चली। नन्दिका पीछे-पीछे गई। दोनों चुपचाप थी। अभया ने समझा बहू ने उसकी बातो को सच नहीं समझा।

नन्दिका मन-ही-मन सोचने लगी—"माँ ने मन की बातें क्यों छिपाई? बाहर के लोगों की बातें क्या उनके कानों मे आ गई? अपने पेट का लड़का, जिसे वह जीवन से भी अधिक प्यार करती है, उसके

ऊपर क्या आज सन्देह उत्पन्न हुआ ? जो पवित्रता का प्रतीक है, जिसके मन मे कलंक का दाग नही पडा है, जो शुद्ध सुवर्ण—"

रात के नौ बजे है।

"बहू, अब सोने जाओ। कब तक पैर दबाती रहोगी। अब रात बहुत हो गई।"

"माॅं—"

"कहो।"

"तुम्हारे मन मे आज खुशी क्यों नही है ?"

अभया के गले के भीतर जैसे कुछ अटक गया। गला साफ करके बोली—"जा पगली—"

"आज आपने इतना कम क्यो खाया ?"

"आज थोड़ा ठीक नही लगता।"

दरवाजा आधा खोलकर कनी ने पुकारा "बहू रानी !"

"क्या है ?"

"खाने के लिए कब जाओगी ?"

"क्या ? मेरी बहू ने अब तक खाना ही नहीं खाया ?"

अभया पलंग पर से उठ बैठी। नन्दिका ने खाना नहीं खाया। कुल लक्ष्मी ने खाना नही खाया। सचमुच इस घर के ऊपर दुर्योग आ पहुँचा। उसने सब सुन लिया है ? सब जान लिया है ? क्या उसी के लिए उसका मन तड़प रहा है ?

"कल सवेरे हमे कटक जाना पड़ेगा, बहू।"

"अगहन का महीना। घर में लक्ष्मी की पूजा हो रही है—"

"होने दो—"

"माँ—"

"पहले चलकर खा आओ। मुझे मरने दो। कुल की लक्ष्मी ने खाना नहीं खाया, यह भी मुझे सुनने को मिला। आओ—"

आज शायद बहुत दिनों के बाद—बहू का हाथ पकड़कर अभया उसे रसोईघर को ले गई। उससे मना करते न बना। सच-झूठ क्या-क्या सुनकर बहू के मन में दुख हुआ है। आज वह खुद बैठकर बहू को खाना खिलायगी।

"घर में लक्ष्मी की पूजा हो रही है। लोगों की बातें सुनकर क्या तुमने मन खराब कर लिया, बहू? दूसरो के बच्चों को सभी लोग प्यार करते है—" प्रसन्न होकर अभया बोली।

नन्दिका का मुँह चमक उठा। सासू के पैर की धूल माथे पर लेकर वह अपने सोने के कमरे मे चली गई। आज आधी रात मे खुद सासू ने पास बैठकर कसम देकर उसे भर पेट खाना खिलाया है। पेट भर गया है। जी भर गया है।

बहुत आनन्द से भी आँखों से आँसू बहते हैं, फिर बहुत दुख में भी ओठो पर हँसी खिल जाती है। उसने दुख से हँसा था या आनन्द से, वह समझ नही सकी। वह सुख से रो रही है या दुख से, यह भी समझ नहीं पा रही है। आँखों से आँसू बह रहे है। तकिये पर टपक रहे हैं। आज की निर्जनता चारों तरफ से तड़प आती है। घड़ी की टिक-टिक की आवाज छाती पर मुद्गर पीट रही है। रोशनी जैसे देह मे तीर मार रही है।

नीद नही आती है। मन कटक की ओर दौड़ता है—नन्हें-नन्हें दो बच्चे—एक लड़का, एक लड़की। कितने सुन्दर। मक्खन के समान देह। चन्द्रमा के समान मुँह। हँसी में कितनी शोभा है। झूम-झूमकर चलना। तुतलाती हुई बातें। प्यार करने के लिए किसकी इच्छा नहीं होगी? गोद में लेकर, छाती से लगाकर, मुँह चूमने के लिए कौन नही चाहेगा? अपने बच्चे हों या न हों। बच्चे सबके ही हैं। जिसके मन में अपना-

पराया भाव पैदा नहीं हुआ, वह सबका है। प्यार करना पाप नहीं है, अनीति नहीं है—

और वह क्या करती है ?—

कुर्सी के ऊपर हाथ रखकर मुँह से मुँह लगाकर खड़ी है। टेबिल के ऊपर वह कौनसी चीज जगमगा रही है ? नये डिजाइन का एक सोने का हार। तरह-तरह के नग जडे हुए है।

कितनी खुशी से वह सीधी होकर खडी हुई। छिः छिः ! क्या शर्म बिलकुल नही है ! पतली साडी पहनी है। दस बार सरक जाती है। इतना बेहयापन !

दोनों बच्चों की वह मौसी। तीन सन्तान की माँ थी। सब खोकर अब दूसरों के पास आश्रय लिया है। फिर भी उसका यही ढंग ?

हाथ पर हार लेकर वह उठी। हँस रही है। ऐ ! उन्होंने क्या किया ? यह हार क्या उसी के लिए ? नन्दिका के लिए नहीं है ?

नन्दिका रो पडी। उठ बैठी। वर्षा की धारा के समान अजस्र रूप से आँखों से आँसू बहने लगे। छाती काँप रही है। निशा गरज रही है। ना—यह सहा नहीं जा सकता। पन्द्रह मील का रास्ता पन्द्रह कदम में तय करने के लिए इच्छा होती है। उसी डाइन के सामने खड़ी होकर गरज उठने के लिए दिल चाहता है—तू कौन है ? निकल मेरे घर से, निकल जा—

इतनी हिम्मत किसके लिए ? कहो—

खड़ी-खड़ी वह टकटकी बाँधकर देख रहे है। उनका चेहरा ही पूछ रहा है, यह सब हिम्मत किसके लिए ? मेरे समस्त स्नेह, समस्त सुहाग के बदले तुमने मुझे क्या दिया है नन्दिका ? यह मेहनत, समस्त समय और जीवन देकर यह अर्जन, यह सब किसके लिए ? इसका भोग कौन करेगा ? एक बार देखो तो इन बच्चों की ओर। तुम दे सकी ? ना। तुमने मेरे मनुष्य जीवन को व्यर्थ कर दिया है। इसलिए मैं—

राक्षस ! ना ना, तुम मेरे देवता हो। तुम मेरे सर्वस्व हो। मैं और कुछ नहीं चाहती। केवल तुम्हारे पैरो की धूल भर चाहती हूँ। तुम्हारा सुख ही मेरा सुख है, तुम्हारा आनन्द ही मेरा आनन्द। तुम्हारी इच्छा और आग्रह मेरा आदर्श। मैं और कभी नहीं रोऊँगी। तुम्हारे अभिलाषा में प्रतिबन्ध होकर खड़ा होने के लिए मैं कभी न आऊँगी। मुझे माफ करो।

"बहूरानी, बहूरानी"--

नन्दिका का मन लौट आया। कनी दीदी बुला रही है। दरवाजा खटखटा रही है। क्या उसके मन की भावना बाहर छूट गई ? तब वह क्या करेगी ?

"बहूरानी—"

"क्या है ?"

दरवाजा खुल गया।

आँखो से आँसू पोंछकर नन्दिका व्यस्त होकर पलंग से नीचे उतर आई। बत्ती तेज करके दरवाजा खोला। तमाम देह काँप रही है। भीतर प्रवेश करके कनी विस्मित मुद्रा मे देखने लगी। उसने नन्दिका की ओर देखकर पूछा, "तुम रो रही थी ?"

"नही तो। तुमने क्या सपना देखा ?"

"रोने की आवाज आई--"

"सपने मे जाने क्या देखा, और आधी रात में मुझे बुला रही हो।"

"मैं बिलकुल सोई नही थी। इसी खिड़की के नीचे बैठी थी।"

"तो मैंने सपना देखा होगा।"

"शायद। करीब आधे घण्टे से मैं रोने की आवाज सुन रही थी। तब तुम नीद मे कुछ बड़बड़ा रही थी।"

"शायद ।"

"लेकिन तुम तो कभी नींद में नहीं बड़बड़ातीं। आज ऐसा क्यों हुआ ?"

मुस्कुरा कर नन्दिका पलंग के ऊपर बैठ गई ।

"उसका जवाब मैं क्या दे सकती हूँ ?"

"मैं कहूँगी बहूरानी । बाहर के लोगों की झूठमूठ बातें सुनकर तुमने मेरे भाई पर अविश्वास किया । चन्द्रमा में कलंक है, मेरे भाई के मन मे कलंक नही है ।"

कनी की आँखों मे आँसू भर उठे ।

नन्दिका चौक उठी । मुँह में बात नही आई । हँसने की कोशिश की । संयत होकर बोली, "तुमसे नहीं छिपाऊँगी दीदी । मैं जान-बूझकर रोई न थी । मैं अचानक रो पडी । बहुत कोशिश की, लेकिन रोक नहीं सकी । मैंने भूल की है । उन पर अविश्वास करके मैं अपने ऊपर से विश्वास खो बैठी हूँ ।"

"मिथ्या बदनामी ।"

"सच भी होने दो, फिर भी मैं रोऊँगी नहीं । तुम सोने जाओ दीदी । आधी रात हो गई ।"

"आज मैं यहीं सोऊँगी ।"

"मेरा पहरा दोगी ? क्या पहरा दोगी ? मेरे मन में प्रवेश करके मेरी भावनाओं को जंजीर से बाँध सकोगी ? दीदी, अब पच्चीस रोज से तुम्हारे भाई नही आये हैं । मानती हूँ मेरे लिए आने की कोई जरूरत नही । एक स्त्री मर जाने से या खो जाने से या मन पसन्द न होने से क्या ? दुनिया में हजारों स्त्रियाँ हैं । जन्म देने वाली माँ तो एक से दूसरी नहीं बन सकेगी । माँ बूढ़ी हो गई हैं । पके आम-सी हैं । कब गिर पड़ेंगी, कौन जानता है ? उन्हें भी देखने की इच्छा नहीं होती !"

कनी निरुत्तर ।

"सुनो दीदी, माँ आज शाम को तालाब के किनारे बैठकर आँखों से आँसू बहा रही थी। तुम्ही कहो, मैं कैसे सह सकती। उनकी आँखों से आँसू बहेंगे तो उससे क्या अकल्याण नहीं होगा ? मैं रो पडी। एक-न-एक दिन तो वह जरूर घर आयेगे। मैं अवश्य उनसे यह बात कहूँगी।"

"तुम क्या पागल हो गई ?"

"पागल हुई नही, लेकिन रात को जागने से हो जाऊँगी। अब तुम जाओ। मुझे बहुत नीद आ रही है।"

कनी उठी।

दरवाजा बन्द करके नन्दिका ने दिया बुझा दिया। पलग पर बैठ कर फिर कुछ सोचने की कोशिश की। वह क्या सोचेगी ? अनजाने ही वह रोई थी। रोने का कारण भी उसने कनी से कह दिया है—अपने लिए नही, माँ के लिए। अब उसका कोई भी दुख नही है। दुनिया के लोगो ने उसे यह बुराई दी है कि वह बाँझ है। बृन्दावती से लेकर उसने हरएक देव देवी की पूजा की। बारहों मास अनेक व्रत और उपवास करके उसने सबकी प्रार्थना की है। उसके मातृत्व की व्याकुल पुकार किसी ने नही सुनी।

और किसके लिए ?

अब वह निश्चिन्त होकर सोने जाय।

नन्दिका चैन से सो नहीं पाई। मुँदी हुई आँखों के भीतर जगती हुई आँखों की पुतलियाँ भ्रमण करने लगीं। दोनों ननद, शोभा और आभा, देवरानी सुमित्रा, जिठानी और गाँव की बहुत-सी लड़कियाँ और बहू। वे सब कई सन्तानों की माँ है। वह भी उनके जैसी एक नारी है। लेकिन वह क्यो वंचित और निराश रह गई ? यदि इस घर की बहू न होकर वह और किसी के घर की होती—!

छि:, मन के भीतर वह यह सब क्या सोच रही है। उसकी मौत हो जानी चाहिए। यह सब वह क्यों सोच रही है ? अब वह सोने जायगी। नन्दिका ने करवट बदली। सामने राजीव। सम्बन्ध मे देवर। सबका वफादार। कर्मचारी। पाँच बच्चों का बाप। सबसे छोटे बच्चे का कल इक्कीसवाँ दिन मनाया जायगा। जैसे बहुत शर्मिन्दा होकर वह खड़े रहे है।

सुमित्रा उनको गालियाँ दे रही है—एक के बाद एक बेशर्म की तरह वे पॉच बच्चे संसार मे ला चुके हैं, और मैं कष्ट से मर रही हूँ। अगर वह एक ही शूल सहते।

उनके पीछे शोभा के स्वामी भागवत खड़े हुए है, उनके पीछे आभा के स्वामी दोलगोविन्द, उसके पीछे गन्धिया सअर, उसके पीछे—वे सब जो बाप बन चुके है।

सुनन्द कहॉ है ? नन्दिका ने आँखे खोली। अन्धकार। दरवाजे खिड़की सब बन्द हैं। बाहर की चॉदनी घर के भीतर प्रवेश नही कर सकती। अँधेरे से आवाज आ रही है।

"उन्हे क्यो देख रही हो ?"

"वे बाप है।"

"मै भी बाप होता।"

"तुमने क्या सोचा है, मैं मॉ नही हो सकती ?"

हा: हा:—

कौन हँस रहा है ? अन्धकार ? सन्नाटा ? उसके अपरिपूर्ण मातृत्व की कामना ? नीति और सस्कृति के बन्धन तोड़कर नन्दिका का भागता हुआ मन आज कहॉ दौड़ रहा है ? आठ वर्ष की कठोर साधना, कर्तव्य-धारणा, स्नेह-सुहाग, लाडलापन। सब पीछे छोड़ आई ? विवाह का मंत्र व्यर्थ हो जायगा ? दो देह, मन, आत्मा, अभिलाषा, आगत कल्पना के मिलन के बीच में क्या यही मातृत्व-कामना रोड़ा होकर खड़ी होगी ?

मैं बेवकूफ हूँ। तुम हँसो मत। मैं जननी बनना नही चाहती। मैं पत्नी हूँ। तुम्हारे पदों की सेविका हूँ। इस घर की कुल-वधू हूँ।

मैं गृहिणी। सबका सुख और आनन्द देखकर सुखी होना मेरा धर्म है। अपना धर्म मै अवश्य पालन करूँगी। मेरा अपना अस्तित्व कुछ भी नही है। सबके अस्तित्व के भीतर मैं अपना अस्तित्व विलीन कर दूँगी। मेरी फिर भावना क्या रहेगी? आकांक्षा क्या रहेगी? दुख और रुदन के लिए मुझमें बिलकुल स्थान नही है।

मैं पत्नी हूँ—तुम्हारे पदों की सेविका। हँसो मत, हँसो मत, हँसो मत—ना।

नन्दिका की थकी हुई आँखों की पुतलियाँ अस्थिर हो गई।

नन्दिका पुकार रही है—तुम आओ!

चाय की एक घूँट लेकर सुनन्द ने बिस्कुट का एक टुकड़ा मुँह में लिया। सर्दी के मौसम का एक सवेरा। सिर्फ साढ़े छ. बजे है। जल्दी तैयार होना पड़ेगा। आज का कार्यक्रम बहुत लम्बा है। दो मुकदमों का तत्व लेना पड़ेगा। ठीक तरह से हिसाब न देखकर बिक्री-कर अफसर ने तीन हजार रुपये का टैक्स लगा दिया है। उच्च अफसर के पास अपील की गई है। कल उसकी तारीख है। सब कागजात उसने वकील को दे रखे हैं। उनको याद दिलाने से वह मुकदमे के लिए तैयार हो सकेंगे।

और एक कन्ट्रोल का मुकदमा भी है। इतने कामों से तंगी आ गई है। यह सब राजीव की असावधानी का परिणाम है। बिक्री के खाते में अगर तुमने झूठे नाम और हिसाब लिखवाए तो अच्छा ही किया। लेकिन किरोसीन आयल के वे टीन और पचास साड़ियाँ तुमने तहखाने में क्यों तुरन्त नही भेजीं? अगर उतना नहीं कर सके, तो चाय और

सिगरेट का इन्तजाम करना चाहिए था। तलाश करने वाले कर्मचारियो के घर को पसन्द के लिए माल का नमूना भेजते, तो बहुत ठीक होता। मुकदमा लड़ना ही पड़ेगा। खर्चा, परेशानी, खुशामद, वकील—। बहुत मुश्किल है। चाय खतम हो गई।

टेबिल पर नन्दिका की चिट्ठी। खुली पड़ी है। कल से आई है। आधी रात को पढ़ते-पढ़ते नीद आ गई थी। थोड़ी-सी लम्बी है। कल क्या पढ़ा था, याद नही है। आज फिर से पढा। इस चिट्ठी मे उसने इतनी चीजें लिखी है। माँ से शुरू करके रूअर बस्ती के छोटे बच्चो तक। गाय बैल, पेड़, धान, तालाब,—सब बातें। सब अच्छे है।

और वह खुद? अपना विषय लिखना वह हमेशा भूल जाती है। देखते-देखते एक महीना हो जायगा। क्या इतना काम है कि एक रोज के लिए भी आ नही सकते? तुम अपना स्वतन्त्र व्यापार कर रहे हो न? लेकिन अब तो गुलाम कर्मचारियो से भी बढ़ गये। माँ तो पगली-सी हो गई है। तुम्हे देखने के लिए छटपटा रही है। तुम आओ, एक दिन के लिए भी आओ। माँ कटक आने वाली थी। मुझे कह रही थी। अगहन का महीना है। घर छोड़ना ठीक नही है। मैने मना किया है।

क्या नाराज हो गये? शोभा ने पत्र भेजा है। दो हाडी पकवान भेजे हैं। तुम पहले नही आओगे तो उसे कोई छुयेगा भी नही। काली गाय की दिव्य सुन्दर काले रग की बछिया हुई है। गाँव के सब आकर देख जाते है। खूब प्रशसा कर रहे है। तुम्हारी देवरानी सुमित्रा इतनी बेशर्म है, कहती है काली गाय ने तो साँड का मुँह भी नही देखा है। कटक से आकर किसी डाक्टर ने क्या दवा दी, हाथी का बच्चा-जैसी दिव्य सुन्दर बछिया पैदा हुई। बाबू जरूर मन्त्र जानते है।

फिर कहती है—ना, लिखूँगी नही। सुनोगे तो हँसते-हँसते थक जाओगे। तालाब के किनारे जो केले का पेड़ था उसमें बहुत बड़ा गुच्छा आया था। अब केले पककर पीले पड़ गये हैं। तुम्हारी इतनी श्रद्धा थी

उसके ऊपर। एक बार आकर उसे देख न जाओगे तो केले सड़ जायेंगे, फिर उन्हें कोई छुयेगा भी नही।

चिट्ठी का जवाब मत देना, और खुद आ जाना। यहाँ सब तुम्हारा रास्ता जोह रहे हैं।

उसने पत्र पौकेट मे रखा। बहुत प्यार के साथ नन्दिका के फोटो की ओर नजर डाली। मन ने कहा तुम ही खुद ढूँढ़ रही हो। एक महीने से मुलाकात नही हुई है। विच्छेद सहा नही जाता? काम नही होता तो तुरत निकल जाता। व्यापारी की आजादी का अन्त नही, नन्दिका, सभी उसके मालिक है, अनेक उसके दुश्मन है। तुम्हारा आदेश मैं कभी टाल नही सकता। आज ही जाऊँगा। काम खत्म करके जाऊँगा।

टेलीफोन की घटी बज रही है।

"कौन? ओ—अच्छा। क्या दाम है? हलो, हलो—चन्दूलाल? बड़े दाने की चीनी? दाम? अच्छा, मै खुद ही जाऊँगा। शाम के पहले जा नही सकता। हाँ, रात को आठ बजे।"

सुनन्द उठ खड़ा हुआ। इस टेलीफोन को घर मे लाकर वह बहुत परेशान हो गया है। काम हो या न हो, हर वक्त कोई-न-कोई पुकारता रहेगा। उसी राजीव का कसूर है। माल गोदाम से दिन को साठ बार डाक पढ़ता है। बस्ती के परिचित और अपरिचित कितने आदमी आकर तग कर रहे है। थाना, मेडिकल कॉलेज, सिविल कोर्ट, भुवनेश्वर, हर जगह उन लोगो का काम रहता है। मना करने से मन खराब करेंगे।

सुनन्द तैयार हो गया। बाहर निकलते समय आजकल वह खद्दर स्तैमाल करता है। धोती, पंजाबी चादर, और सिर पर टेढ़ी की हुई टोपी। बहुत सुन्दर लगता है। यही है उसका दरबारी लिबास। कमीज के नीचे बनियान, ऊपर स्वेटर, जाड़ा नही लगता। पैरों में चप्पलें। इस लिबास मे इस जमाने में बहुत सम्मान, खातिर और

सचाई की निशानी भरी हुई है। इस लिबास में बाहर आने से मन के भीतर कार्यसिद्धि की दृढ़ता आ जाती है।

राजीव ने नजदीक आकर पूछा, "भाई, कहाँ जा रहे है आप ? कल अपील की तारीख है, वकील के घर को भी जाना है ना ?"

"मैं वकील के घर जा रहा हूँ।"

"कपड़ों के पार्सल मालगोदाम मे पडे है। देरी करने से 'डैमरेज' देना पड़ेगा। अब तो सिर्फ तीन हजार रुपया है। करीब तीन हजार और चाहिए। आज माल न छुड़वाने से फिजूल जुर्माना देना पड़ेगा। गोदाम से भी माल खत्म हो आया है। देहात के व्यापारियों को पूरा माल दे सकना सम्भव नही हो रहा है।"

"मेरे पास इतने रुपये नही है। करीब एक हजार है। बैंक का जमा दो हजार से ज्यादा नही। सब देकर माल छुड़वाने से मुकदमा कैसे चलेगा ? दो-चार रोज ठहर जाओ। डैमरेज देना पड़ेगा तो क्या करेगे ?"

"फिजूल जुर्माना—"

सुनन्द चौक उठा। ठीक तो है, फिजूल जुर्माना, ऐसा तो कभी नही हुआ था। हमेशा वह बहुत होशियार रहता आया है। व्यापारी के जीवन में कर्जा करना लगा ही रहता है। फिर भी इतना परेशान वह कभी नहीं हुआ था। बहुतों से कर्जा माँगा है। परोक्ष में उन सब लोगों ने इन्कार कर दिया है। क्यो इन्कार कर दिया है, उसकी सूचना भी उसे मिल चुकी है।

निर्बोध शिशु के कुछ अपराध करने के बाद निःस्सहाय आँखों से, बेत हाथ मे लिये हुए शिक्षक की ओर देखने की तरह एक क्षण के लिए वह राजीव लोचन की ओर देखता रहा। यह उसका छोटा भाई। एक दिन यह बहुत खोटा था। अब बहुत अच्छा हो गया है। कमजोर देह। सिर के बाल झड़े जा रहे हैं। एक रुपये की तरह

माथे पर गंज बन गया है। बड़ी-बड़ी मूँछ। आठ-दस राज में शायद एक रोज हजामत करता है। आँखें भीतर धँस गई है। बदन पर साफ कमीज कन्धे के ऊपर फटी हुई है।

उम्र मे डेढ़ साल छोटा होने पर भी राजीव लोचन सुनन्द से दस साल बड़ा दिखता है। रात-दिन मेहनत करता है। सुनन्द से बहुत कम बोलता है। लेकिन जो कुछ बोलता है उसकी कीमत रहती है। सुनन्द सिर्फ उसका बड़ा भाई नही है, वह उसका गुरु है, अन्नदाता है, उसका भविष्य है। अपने काम के लिए वह तनख्वाह नही लेता। केवल हिसाब दिखाने के लिए खाते मे कुछ लिखवा दिया जाता है। उसे जब जितने की जरूरत होती है सुनन्द दे देता है। उसकी जरूरत क्या है सुनन्द जानता है।

सिर झुकाकर राजीव लोचन वाक्यबाण फेंकने लगा। अब बहुत समय है। अतनु बाबू से रुपया माँगने से शायद वे दे सकते है।

सुनन्द चौक उठा। वह जानता है कि राजीव लोचन से कोई भी बात छिपाई नही जा सकती। वह बाल की खाल निकालने वाला आदमी है। अतनु बाबू ने हाथ-कर्जा के स्वरूप सुनन्द से कितने रुपये लिये है, सिर्फ अपने सिवा दूसरे किसी को मालूम नहीं है। राजीव को भी उन्होंने उसके बारे में कुछ नहीं कहा है, लेकिन राजीव ने जरूर इस का पाई-पैसा हिसाब रखा होगा। ऐसी दक्षता उसकी जरूर है। कब किसको उसने क्या इनाम दिया था, पता नही उसको भी अतनु बाबू के हिसाब मे जोड़ दिया या नही।

बोला, "वे तो खुद ही रुपये की तलाश मे है। उनका सिनेमाघर बन चुका है। शायद कल पहला शो शुरू होने वाला है। शिक्षामत्री शो का उद्घाटन करेगे। सिनेमा जब चालू हो जायगा तब जरूर वे कर्जा चुका सकेंगे। लेकिन उसके पहले नहीं।"

"किसी भी लिखा-पढ़ी के बिना दो हजार सात सौ रुपये—"

"ऍं, इतने--"

"आपने हिसाब नही रखा है ?"

"रखा है लेकिन देखा नही ।"

"देखिए । मेरे हिसाब से इतने हुए । लेकिन ब्याज जोड़ने से और भी ज्यादा हो जायगा । अगर आप मुझे हिसाब बता देगे, तो मैं ब्याज निकाल कर दे सकूँगा ।"

"जरूरत नही है । अपनी सुविधा के अनुसार वे जरूर लौटा देगे । पहले उनका सिनेमा चालू होने दो । वे भद्र पुरुष है ।"

"सिनेमाघर तो अतनु बाबू का अपना नही है । वे वहाँ केवल मैनेजर ही है । जितना खर्चा हो रहा है, उनके लिए तो वे मालिक से रुपये ला रहे है ।"

नई बात सुनकर सुनन्द ताज्जुब में ही बैठ गया ।

"मालिक कौन है ?"

"खुद ठुनठुनवाला । कल उनके बड़े लड़के आये थे, अतनु बाबू का बाकी हिसाब चुका गये है । नकद दस हजार—आज हम उनसे रुपया मांगेंगे तो वे दे सकते है ।"

"अतनु बाबू मैनेजर है ?"

"हाँ, इस बात को उन्होंने छिपा रखा है ।"

"क्यो ?"

"वे भद्र लोग है । राजा के लड़के है, कहीं नौकरी कर रहा हूँ, कहने से असम्मान होगा । ठुनठुन बाबू और अतनु बाबू के बीच इकरारनामा हुआ है कि ठुनठुन सब खर्चा करेंगे और अतनु बाबू मैनेजरी करेंगे । काम शुरू होने के रोज से सिनेमा चालू होने के रोज तक अतनु बाबू को मासिक तनख्वाह पाँच सौ रुपये मिलेंगे । चालू होने के बाद वे वर्किंग पार्टनर बनेंगे । हर एक किस्म के खर्च, रुपये का ब्याज आदि जाने के बाद नैट लाभ का सत्तर प्रतिशत ठुनठुनवाला का और तीस

प्रतिशत अतनु बाबू का। अगर अतनु बाबू का हिस्सा किसी महीने में पाँच सौ से कम हो जायगा तो ठुनठुनवाला उतना पूरा कर देंगे।"

टेलीफोन की आवाज आई। कौन बोल रहा है? कान के पास रिसीवर लेकर सुनन्द ने सुना। बोला, एक मिनट ठहरिए। रिसीवर से मुँह दूर हटाकर सुनन्द ने राजीव से कहा, "रुपये के लिए इतनी चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। अगर डैमरेज लगेगा तो जरूर दिया जायगा।"

किसी भी प्रतिवाद के बिना राजीव लोचन वहाँ से चला गया।

हिमानी नहीं, तुहिना बोल रही है। बच्चों को नौकर के जिम्मे छोड़कर आज बड़े सवेरे तुहिना अतनु बाबू को साथ लेकर नये सिनेमाघर को चली आई है। वहीं से वह बोल रही है। अपने घर पर अब तक टेलीफोन नहीं गई।

सुसवाद।

आज नया सिनेमा खुलने वाला है। उद्‌घाटन करने के लिए मंत्री आ रहे हैं। देश के बहुत बड़े-बड़े आदमियों के पास पहले से निमंत्रण भेजा गया है। सुनन्द तो पराया नहीं है। इसीलिए सिर्फ फोर्मेलिटी दिखाने के लिए उनके पास निमत्रण पत्र नहीं गया है। तुहिना अब खुद उनको निमंत्रण दे रही है। आज शाम को उनके दूसरे सब प्रोग्राम बन्द होने चाहिए। अतनु बाबू काम में बहुत व्यस्त हैं। आयोजन में लगे हुए हैं। मंत्री आयेंगे। बड़े-बड़े सरकारी लोग भी आयेंगे। और भी बहुत बड़े-बड़े आदमी। नारी और पुरुष।

सुसंवाद

हिमानी देवी रात की एक्सप्रैस से कलकत्ता चली गई है, वहाँ से भागलपुर जायेंगी। खुशी की बात है—उनके स्वामी, सास, ससुर और

तीन बच्चे भागलपुर में ही हैं। खबर पाकर अतनु बाबू ने पत्र लिखा था। उनके स्वामी असीम बाबू खुद आकर शाम की गाड़ी से पहुँच गये। भागलपुर मे वे बिजिनैस कर रहे हैं। एक रात ठहर जाने के लिए बहुत अनुरोध किया गया, लेकिन राजी नहीं हुए। उनकी माँ बीमार हैं। सती साध्वी कुल-वधू का मुँह देखकर अन्तिम समय उनके हाथ से एक बूँद गंगाजल मुँह मे लेकर मुक्ति लाभ करेगी। उसी के लिए मातृ-भक्त पुत्र असीम बाबू की इतनी अधीरता।

खुद हिमानी देवी भी अपने तीन बच्चों की ख़बर पाकर उन्हें देखने के लिए बहुत उतावली हो गई। उडने की शक्ति रहती तो जरूर उड़ जाती। गाड़ी छूटने के पहले चुपचाप मुझसे पहले बोल गई, "सुनन्द बाबू को मेरा प्रणाम कह देना बहिन, जाने के पहले उनसे मैं मिल नहीं सकी। माफ करना। उनका स्नेह भूल न सकूँगी। उड़ते हुए पक्षी को वे जरूर भूल जायेंगे, लेकिन उनकी स्मृतियाँ मैं साथ लिये जा रही हूँ।"

गाडी छूट गई। बातें अधूरी रह गई।

"वे कल चले गये। आज बहुत खराब लगता। बच्चों को भी घर पर छोड़ आई हूँ। अब जाना चाहिए। आप आज जरूर आयेंगे।"

"आऊँगा।"

"अच्छा, प्रणाम।"

रिसीवर रखकर सुनन्द विस्मय के साथ टेलीफोन यंत्र की ओर देखने लगा। विचित्र बात है। तुहिना कभी इतनी बातें नहीं करती है। हिमानी चली गई है, इसके लिए उसके मन में बिलकुल दुख नहीं है। बल्कि आनन्द से उछल रही है। क्यों? सुनन्द जानता है। अतनु बाबू से हिमानी कभी खुशी से बातें करती तो सब काम छोड़कर तुहिना वहीं दौड़ आती। किसी काम का बहाना दिखाकर और कहीं बुला लेजाती। हिसाब का खाता खोलकर दिखाती। सुनन्द के साथ खुशी से बातें करने के लिए हिमानी को प्रश्रय देती।

इसीलिए बड़े सवेरे सुसंवाद देने के लिए टेलीफोन किया ? परिहास के साथ बोली—"उनकी स्मृतियाँ साथ लेकर जा रही हूँ। स्मृतियाँ ?"

सुनन्द की देह झिन-झिन करने लगी।

उसने चारो ओर देखा। हिमानी स्नो का विज्ञापन फोटो हवा से फट गया है। सफेद दीवार के ऊपर एक टुकड़ा सफेद कागज झूल रहा है। उस पर एक भी रेखांकन नही है। टेबिल पर गृह लक्ष्मी नन्दिका का फोटो—हँस रही है—पुकार रही है, तुम आओ, एक दिन के लिए भी आओ—उस फोटो की ओर देखने के लिए हिम्मत नही होती। अपने को अपराधी-सा महसूस होता है।

राजीव लोचन फिर आ पहुँचा।

"वकील के घर नही जाओगे ?"

"तुम भी चलो। अतनु बाबू के नाम भी नोटिस देना पड़ेगा।"

"रुपयों के लिए ?"

"हाँ, मूल और ब्याज दोनों के लिए।"

पहले जो लोग एक बात को दस बात बनाकर इस गुप्त कथा का प्रचार कर रहे थे, वही अब उल्टा कहने लगे, "देखो इस आदमी के ढंग को, ऐसे आदमी के नाम वह क्या कह रहा था ! सुनन्द जैसा लड़का, अन्य के द्रव्य के प्रति जो कभी आड से भी नहीं देखता !"

अब गाँव में वह पाँच रोज रह चुका है। कटक और कटक के व्यापार से बहुत दूर रह सका है। वहाँ टेलीफोन की घंटी बज-बजकर हताश हो गई होगी। डैमरेज और मुकद्दमे का मामला राजीव लोचन सँभालता रहेगा। नोटिस देने की जगह सिर्फ एक पत्र लिखकर वह राजीव को सौंप आया है, अब उन बातों की चिन्ता नहीं है। घर और गाँव के दूसरे लोगों के हाल देखने में उसका समय बीत गया है।

सुनन्द का हाथ खुल गया है। गरीब, अभावग्रस्त, जो जैसा चाहता है, उसे वह मिल जाता है। स्कूल में छात्रावास नहीं था। उसके अभाव से दूर गाँव के बच्चे स्कूल में पढ़ नहीं पाते। गाँव का नया हाई स्कूल विकास नहीं कर पाता। उसने छात्रावास के लिए पाँच हजार रुपये का वचन दिया है, एक हजार नकद दिये है। छात्रावास माँ के नाम पर बनेगा——अभयाश्रम, कितनी खुशी से नन्दिका ने रुपये निकाल दिये हैं।

सिर्फ राजीव के बाल-बच्चो के लिए नही, हर भाई के बच्चों के लिए और भाभियो के लिए सुनन्द ने शीतवस्त्र का इन्तजाम किया है। लिस्ट लेकर गंधिया कटक गया था, हिसाब के अनुसार राजीव लोचन ने कपडो की एक बडी पोटली भेज दी। नन्दिका खुद जाकर घर-घर सबको कपडे पहना आई है। स्नेह, आदर, कल्याण लेकर लौटी है। किसीके पैरों की धूल मिली है, किसीने पीठ थपथपाई है, सिर झुकाकर किसी ने पुलक के साथ हँसी हँसी है, किसीने परिहास भी किया है।

सुमित्रा जूडा बाँध रही है। बाल नीचे पड़ जायेंगे इसलिए नन्दिका को स्टूल पर बैठाया है। सामने मेज पर बड़ा आईना रखा हुआ है। अब तक शाम नही हुई है। होने वाली है।

बातूनी सुमित्रा ने कहा, "सिर क्यों हिलाती हो दीदी ?"

"आईने पर किसकी छाया पड़ी है, देखो तो !"

"अरे ? खुद मालिक जा रहे हैं।"

"बहुत अच्छा हुआ। आज सामने आ गई।"

"मुझे मौत क्यों न आ गई ! बाल बाँध रही थी, घूँघट नीचे गिर गया था। अच्छा जाने दीजिये, मालिक छोटे ही है। सुनोगी दीदी, तुम्हारे देवर के ऊपर मैं बहुत रूठ गई हूँ। अबकी बार घर आने दीजिये, मैं पूछूँगी कैसे वे कह रहे थे कि मालिक हमेशा किसी के दो बच्चों को साथ लेकर घूम रहे हैं, और उनकी मौसी, समय नहीं, असमय नहीं, तुम्हारे घर को आ रही है, मालिक के साथ हँसकर बातें कर रही है।"

"वह यही कह रहे थे ?"

"मैं जरूर पूछूंगी। देखूंगी वह कितने सच बोलने वाले हैं, मेरे पास झूठ बोलने का—"

"यह झूठ है, तुमको कैसे मालूम हुआ ?"

"मै तो अन्धी नही हूँ, बहरी भी नही हूँ।"

"खुद साँप मारकर दूसरे के गले मे उसे डाल देने के लिए तो उन्होने कहा नही होगा ? मर्द हमेशा सच नही बोलते। इसीलिए उन लोगों से यह न पूछना भी अच्छा है। बेशर्म होकर पूछने से वे जो जवाब देंगे, उस पर विश्वास करना केवल बेवकूफी है।"

"मालिक से तुमने पूछा है ?"

"क्या झूठ सुनने के लिए ? कौन क्या करता है, उससे हमे क्या मिलेगा ? शायद राजीव ने तुम्हारे साथ परिहास किया होगा। तुमने सुना ही क्यों ?"

सुमित्रा का हाथ क्षण भर के लिए रुक गया, आईने के ऊपर नजर पड़ी। पास-पास दो मुँह। एक यौवन से जगमगा रहा है। गोया अभी शादी के बाद ससुराल आ पहुँचा है। और दूसरा मुँह—जैसे किसी बुढ़िया का मुँह हो, पाँच बच्चों की माँ का।

उसी मुँह की ओर सहानुभूति से भरी दृष्टि से नन्दिका देख रही है, मानो उसकी दो आँखें फिर एक बार कह रही हैं—'खुद साँप मारकर दूसरे के गले में डालने के लिए उन्होंने कहा होगा। पुरुषों का ढंग किसे मालूम ? वे तो केवल ताजे सुन्दर रंगीन गुलाबों की आशा रखते हैं। वह तो एक मुरझे हुए फूल के समान है, कौन जाने ! नन्दिका दीदी की बात सच भी हो सकती है ?'

"दीदी—"

"क्या—?"

"मालिक क्या कह रहे थे ?"

"किसके बारे में ?"

"तुम जो कह रही थीं—"

नन्दिका हँस पड़ी। बोली, "सच हो तो भी क्या छोटे भाई के बारे में वे मेरे सामने कहेंगे ? शर्म नही आती ? मै अनुमान से ही कह रही थी—"

"पूछोगी ?"

"क्या राजीव के ऊपर तुम्हारा विश्वास नही है ?"

"इस गाँव मे आने के बाद मैने उनके बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। सुना था कि वे लड़कपन में बहुत खराब थे। बहुत दुष्ट थे। कटक शहर की जगह है, खराब जगह है। मैं—अब अधेड़ हो गई।"

"तुम्हारा छोटा लड़का अब बड़ा होने जा रहा है न ?"

"वही तो मेरी बीमारी है।"

"उन्हें यह बात कह दूँगी।"

"छि·—"

"तो कहूँगी भी नही, पूछूँगी भी नही।"

सुमित्रा चुप हो गई, उसका मुँह सूख गया, मन की बातें वह किससे कहे ? मर्दों का प्यार तो औरतों की बीमारी के लिए ही होता है।

शाम के पहले सुमित्रा घर लौटी। साथ मे कनी है। छोटे बच्चे को घर में छोड़कर अब तक सुमित्रा नन्दिका के पास अटक गई थी। आधे रास्ते में उस बात की याद आई। घूमते हुए मन को कटक से लौटाकर चिल्ला-चिल्लाकर बोली, "उसमें मेरा क्या है ? मैं तो अधेड़ हो चुकी हूँ। पाँच बच्चों की माँ।"

"क्या हुआ भाभी ?"

"कुछ नहीं। जब तक बच्चे नही होते है तब तक औरतों का जन्म गृहस्थ की अपेक्षा करता रहता है, मन कहता है, 'यही मेरा सर्वस्व है, गति है, मुक्ति है।' जिसकी गोद में दैव ने बच्चे दिये हैं, वह क्यों पर-छिद्र की तलाश में रहेगी ?"

"किसकी बात कह रही हो ?"

"मेरी अपनी बात। सुन रही हूँ वह कटक में दूसरी किसी औरत को प्यार कर रहे हैं। उसमे मेरा क्या है ? अब तुम लौट जाओ कनी, अब तो घर नजदीक आ गया। यही तो, बच्चे के रोने की आवाज आ रही है। दीदी को मेरा प्रणाम कह देना।"

कहने के लिए अब तक कनी को याद नही रहा। सास के पैर दबाने का काम समाप्त करके आधी रात को नन्दिका सोने के कमरे मे लौटी। चुप-चुप कनी ने कहा, कहाँ से क्या सुनकर सुमित्रा भाभी ने राजीव भाई के ऊपर अभिमान किया है—

नन्दिका का मन कह उठा—'दुनिया में सभी समान हैं, लड़की हो या अधेड़, सुन्दरी हो या असुन्दरी, धनी हो या गरीब। पाँच बच्चों की माँ हो या सपनों में भी गर्भ की वेदना अनुभव न करने वाली औरत मात्र ! सब ही समान हैं, सच-झूठ समझने के लिए धीरज नहीं रहता, कहीं से कुछ सुन लिया तो मन न जाने कहाँ-कहाँ घूमने लगता है। अच्छा, ठीक ही हुआ सुमित्रा ने अभिमान किया है।'

क्या वह भी अभिमान करेगी ?

पलंग की ओर देखकर नन्दिका मन ही मन हँस उठी, दरवाजा बंद किया। रोशनी तेज कर दी। सुनन्द को नींद आ गई थी। सचमुच नींद। बहाना नहीं है, मच्छरदानी लगाई नहीं थी। मुँह पर मच्छर बैठकर खून चूस रहे थे। मुँह को छोड़कर देह एक सफेद चादर से ढकी हुई थी।

पास खड़ी होकर उसने मच्छरों को भगा दिया। हँस पड़ी। बेशर्म कनी ने अपने कर्तव्य में बिलकुल त्रुटि नहीं की। पलंग के ऊपर गेंदे के

फूलों की माला झुला दी। तकिये के पास एक गुच्छा गुलाब के फूल। सुहाग रात को उसने यही देखा था। खिले हुए फूलों की महक महसूस की थी। अब तक याद है।

मन को सरस बनाने के लिए बगीचे के फूलों की जरूरत नहीं पड़ती। इसी सोये हुए मुँह मे सब फूलों का सौन्दर्य समा गया है, इसी साँस में सब फूलों की सुगन्ध है। समुद्र की लहर के समान उमड़ आती हैं, फिर एक बार उमड़ आने के लिए प्रफुल्ल होकर लौट जाती है।

यही फूल हमेशा के लिए खिलता आ रहा है उसके हृदय में। सुन्दर, अमलीन और ताजा। वह इसकी सुगंध महसूस करती है। सात साल सात मुहूर्त के समान भी मालूम नहीं होते। समय रुककर खड़ा हो गया है।

यही उसका पहला अग्रहान है। अब भी उस रोज के समान उसकी देह और मन में पुलक की धारा छूट रही है। मन कहता है, जो मुँह उसका है, केवल उसी का ही है, उसी मुँह पर वह होंठ लगायेगी। स्वर्ग की निधि और सम्पत्ति को भी वह उसके लिए दूर हटा देगी, दूर फेंक देगी।

उसका झुकता हुआ मुँह शर्म के मारे ठहर गया। उसके शर्म भरे मुँह में सुनन्द की साँस लग रही थी। शायद वह आँखें खोल देंगे! क्या सोचेंगे? दूसरा कोई देख तो नहीं रहा?

मुँह उठाकर नन्दिका चारों ओर देखने लगी। दरवाजा खिड़की सब बन्द हैं, सिर्फ यही बेशर्म दिया बड़ी-बड़ी आँखों से देख रहा है। बड़े आईने के भीतर से नन्दिका की ओर देख रही है, उसी से ही उसे शर्म है। अब रोशनी को बुझने दो। नन्दिका को नन्दिका के भीतर छिप जाने दो।

"नन्दिका?"

"मच्छरदानी लगा रही थी।"

"अँधेरा क्यो कर दिया ?"

"रोशनी से नींद नही आयेगी ।"

"लेकिन मेरी नीद तो तोड़ दी ।"

नन्दिका ने कुछ जवाब नही दिया ।

घर पर पाँच रोज बिताने के बाद सुनन्द फिर कर्मभूमि कटक को लौट आया । सब काम निर्विघ्न चल रहा है । उसके लिए कही भी कुछ बन्द नही है । जब तक राजीव लोचन है, तो उसको क्या चिन्ता ?

वहीं आकर पहले सुसवाद दिया—"चिट्ठी खोलकर अतनु बाबू ने कहा, हाँ, उनके मुझ पर रुपये जरूर है, हिसाब करने के बाद मैं कभी भेज दूँगा । हताश होकर मैं लौट आया, दो-तीन घटे के बाद उनकी पत्नी खुद आकर पाँच हजार रुपये दे गई ।"

"खुद आई थी ?"

"हाँ ।"

"इतने रुपये बाकी थे ?"

"कर्जा चुकाने वाला आदमी जब हिसाब भूल जाता है तो परिमाण घट जाता है, बढ़ता नही ।"

सुनन्द खामोश रहा ।

अब कई रोज से मन छटपटा रहा है, अतनु बाबू के घर जाकर मलय और छबीला को एक बार देख आना चाहिए । लेकिन जा नहीं सकता । मन-ही-मन लज्जित होकर चुप हो जाता है । निश्चय नहीं कर पाता, क्यो तुहिना देवी स्वयं आकर रुपये दे गई थी, अतनु बाबू को जितनी बार उसने कर्ज दिया है, उसको मिलाकर कभी इतने रुपये नहीं होंगे ।

तुहिना या अतनु बाबू क्या उसके साथ सब सम्पर्क मिटा देना चाहते है ? क्या उनके घर को एक बार जाना चाहिए ? बच्चों को देख आयेगा ? पूछेगा तुहिना से ?

जा नही सका। वे लोग भी नहीं आये। सिनेमा देखने के बहाने वह कई बार जयती टाकीज तक गया है। अतनु बाबू से भेंट नही हुई। आत्मसम्मान अथवा छाती के भीतर किसी छिपी हुई शर्म ने उसे मुलाकात करने से रोक दिया है।

उस घर के दो बच्चे बहुत याद आते है।

यह कमजोरी किसके लिए ? अपने बच्चे नही है, फिर भी बाहर निकलने से ही कितने कमजोर अनाथ और भूखे बच्चे नजर मे आते है। वे भी सुन्दर है, सरल है, प्यार करने के लायक हैं। उनको प्यार करने से, उनकी देखभाल करने से वे भी मलय और छबीला से अधिक सुन्दर बन सकेंगे, गोद में आने के लिए हाथ बढ़ायेंगे।

सुनन्द मे बच्चों के लिए लालच पैदा हो गया है, तो वह दूसरो के बच्चो को प्यार कर रहा है। सिर्फ बातों से नही, देना-लेना और जबर-दस्ती दूसरों की सेवा करना। राजीव लोचन के बच्चों के लिए उसका प्यार बहुत अधिक हो गया है। उनके प्रत्येक अभाव को वह पूरा करता है, जब गाँव को आता है, तब उसके बच्चो के लिए कपड़े किताब ले आता है। खुद जाकर दे आता है। छोटे बच्चों को गोद में लेकर अपने घर ले आता है।

कुनू, मुनू, सुनू, गुनू—यही उनके पुकारने के नाम है। पुकारते-पुकारते सुनन्द की भूल हो जाती है। वे हॅसते है। अभया गुस्से के मारे लाल हो जाती है। सुनन्द को कुछ कहती नही, लेकिन कुनू मुनू के प्रति मन में बैरभाव आ जाता है।

मन मन से कहता है—आखिर क्या यही होगा ? दुश्मनों के बच्चों में से क्या एक इस घर का प्रभु बनेगा ? उसके हाथ से खाना खाने के लिए वे उस पार से इस पार उड़ आयेंगे ?

आजकल सास इतनी जिद्दी बन गई हैं। हर चीज में केवल 'ना-ना-ना'। खाने के वक्त खाना अच्छी तरह नही खातीं, कपड़े अच्छे नहीं पहनतीं। पुराण सुनने के लिए उनका कितना आग्रह था, लेकिन अब कहती है रहने दो। हँसी-खुशी की बातों में गुस्सा हो जाती है। पैर पर हाथ देने से पैर हटा लेती हैं। मुँह मे सिर्फ 'ना-ना' की आवाज, चलने और फिरने में भी केवल 'ना-ना' का भाव।

वह बहुत कमजोर हो गई हैं। बीमार तो नही हुई ?

नन्दिका ने पैर पर हाथ रखे। रात के नौ बजे हैं। फागुन का महीना। सर्दी कम हो गई है, बाहर अँधेरा छाया हुआ है, घर के भीतर दिया जल रहा है, लालटेन हाथ मे लेकर इस घर से उस घर होकर कनी सामान सजा रही है और घर में साँकल लगाती है।

दो रोज से सुनन्द घर आये हैं। कल कटक लौट जायेंगे। कल तीसरा रोज है, फिर भी कहना नही मानेंगे। जरूरी काम है। घर में बैठकर वे क्या पढ़ रहे हैं। शायद नन्दी के इन्तजार में है। संसार मे दुःख-सुख की बहुत बातें की जाती हैं।

कनी जल्दी मे है।

नन्दिका सास के पैर दबा रही है। उनको नींद आ जायगी तो रोशनी कम करके दरवाजा बन्द करके वह चली जायगी।

अभया चौंक उठी। पैर खींच लिया। शायद सपने देख रही थी। सिर उठाकर नन्दिका की ओर देखने लगी। फिर तकिये पर सिर रखा।

"माँ—"

"हूँ—"

"चौक क्यों उठीं ? क्या सपना देखा।"

"उस पार का सपना। इस पार का संसार मुझे अब अच्छा नहीं लगता।"

"तुम बहुत कमजोर हो गई हो माँ। उनके साथ चन्द रोज के

लिए कटक चली जाओ। मन बहल जायगा, हिफाजत भी अच्छी होगी।"

"जाऊँगी तो केवल श्मशान को ही जाऊँगी।"

"ऐसा क्यों कह रही हो ?"

"अरे ? बहुत जरा करने वाली तो ? अब सोने के लिए क्यों नहीं जाती हो ?"

नन्दिका खामोश रही। यह सब सुनने की उसकी आदत पड़ गई है। एक रोज जो गोद मे बिठाकर, पीठ थपथपाकर, मुँह में पकवान देकर प्यार से कहती थी, 'मेरी कसम, इतना ही खालो,' यह वही सास है। उनकी बातों से क्या वह रूठ जायगी ? छाती काँपने लगी, दीर्घ श्वास आती रही। आँखो मे से आँसू आ गये। सोचा, 'उन्ही के पैरों पर सिर रखकर रात बीत जायगी।'

हाँ, वह वैसा ही करेगी। रूठकर पैरों से भगा देने से भी वह छल नही करेगी। उस दूसरे घर मे वह इन्तजार करते रहेगे। किस्सा सुनायँगे, नन्दिका सुनेगी हामी भरेगी। जो कहेंगे, उसे सच मानना पडेगा। कोई बात पसंद नही आती तो नन्दिका हाँ नही मिलाती, लेकिन हँस देती है। उसी हँसी से उन्हे पता लग जाता है। वे दूसरी बातें कहना शुरू कर देते है।

अब वे चुपचाप बैठे रहेगे। नीद आयगी तो अपने-आप सो जायँगे। आज नन्दिका यहाँ से नही जायगी। सास के पास बैठी रहेगी।

"अब सोने के लिए क्यों नहीं जाती ?"

"मैं यही सोऊँगी—"

अभया के पैरों पर सिर रखकर नन्दिका वही पलंग पर लेट गई। दुख सँभाल नहीं सकी और फूट-फूटकर रोने लगी।

फिर भी अभया अटल रही। पल भर के बाद बोली, "यह ढंग मुझे अच्छा नहीं लगता बहू, आधी रात में आँसू बहाना बहुत अशुभ है। तुम यहाँ से चली जाओ, बातों को अमान्य मत करो।"

नन्दिका उठ बैठी। भीगे हुए कण्ठ से पूछा, "माँ मैंने क्या अपराध किया है ?"

हँसती हुई मुद्रा मे अभया बोली, "दोष या गुण से मुझे क्या मिलेगा ? जो जैसा अच्छा समझती हो वैसा ही करो। फिर भी जब तक मैं जिन्दा हूँ, तब तक दुश्मन का बच्चा इस घर का बच्चा बनकर कभी नही आ सकता। पहले मुझे मरने दो, उसके बाद तुम लोग राजीव के बच्चे को इस घर में ले आना। नहीं तो जिस रोज लाओगे, उस रोज······। हाँ, कह देती हूँ, उसी रोज—"

अभया ने बात समाप्त भी नही की कि बिजली की तरह उनकी बातों से नन्दिका की देह मे सिहरन दौड़ गई। वह समझ गई दूसरो के बच्चों के प्रति स्वामी के स्नेह ने सास के मन पर निराशा का प्रभाव डाला है। लेकिन उसके लिए उसका क्या कसूर है। अगर स्वामी राजीव लोचन के किसी पुत्र को गोद लेना चाहेंगे तो नन्दिका उसमे बाधा नहीं डाल सकती। उसकी राय पूछेगे तो वह मना कर नही सकती।

"माँ, एक बात कहने की हिम्मत नही होती।"

अभया चुप रही।

"माँ, तुम इस घर मे एक दूसरी बहू ले आओ।"

मुँह से बात निकल गई। कहने के लिए मन ने इशारा नही किया था। उसकी आत्मा ने एक ऐसा साथी कभी नही चाहा है। उसकी मातृत्व-कामना ने एक सन्तान की इच्छा रखी थी, जिसे वह अपने देह से सम्भूत कर सकेगी, अपना रक्त-मास और अस्थि देकर जिसका निर्माण कर सकेगी।

देवताओं ने ऐसा एक सौभाग्य उसे नही दिया है। देगे भी नहीं। उन्होंने ही आज कपट किया है, उसके अनजाने में उस कथा की भावना मुँह से निकाल दी है, जिस भावना ने उसे बहुत बार सपनों में रुलाया है, आत्महत्या करने के लिए तालाब के पास दौड़ाया है। सौत ?

मुँह से बात निकल गई। सास सुन नही पाई। अच्छा ही हुआ। नन्दिका सतर्क हो गई। फिर कभी न कहेगी। अपने गले पर वह छुरी कभी नहीं चलायगी। इससे अच्छा तो यही है कि दूसरे किसी का बच्चा गोद ले ले। उसके लिए बाहर का एक बच्चा और सौत के बच्चे के बीच मे कुछ अभेद नही है, लेकिन सास की आँखों में, स्वामी की आँखो मे और दुनिया की आँखों मे···?

अभया ने करवट बदली। नन्दिका क बात उनके मन के भीतर समा गई। देह के मांस के भीतर जैसे पैनी छुरी चली जाती है। वह कट जाता है। रक्त की धारा बह जाती है। क्षण-भर के बाद पीड़ा से जल उठता है, अब सहा नही जाता।

अभया उठ बैठी। अस्त-व्यस्त भाव। कटु निगाह से नन्दिका की ओर देखा, उसका मुंह म्लान हो गया है। आँखो मे आँसू भर आये है। क्या वह अपने मन की बात नही बोली? जिसमें उसकी इच्छा नही है, क्या मन की परीक्षा करने के लिए उसने वही कह दिया है? घाव पर नमक छिड़क दिया है? व्याकुल अवसरों पर उन्होने भी दूसरों के सामने यही बात एक दो बार कह दी थी। शायद नन्दिका को खबर मिली है।

"तो क्या दिल्लगी करती हो बहू?"

नन्दिका चौक उठी। सिर हिलाकर कहा, "मेरे मन की बात मैंने कही, माँ। अपने दुर्भाग्य के लिए क्यों मैं दूसरों के सुख और आनन्द मे कब तक बाधा देती रहूँगी? अगर वे दूसरों के बच्चों को प्यार करेंगे तो मैं मना नही कर सकूँगी। तुम यदि दूसरों के बच्चों से घृणा करोगी तो भी मना नही कर सकूँगी। दूसरे का बच्चा क्यों इस घर में आयेगा? मेरे साथ मेरी एक छोटी बहन यहाँ आ जायगी, अगर भगवान उसकी गोद में एक बच्चा दे देगे तो उसे पराया क्यों कहा जायगा? वह तो घर का ही बच्चा होगा।"

"लेकिन सुनन्द राजी हो तब !"

"उनको राजी होना ही पड़ेगा ।"

"**तुम** यह क्या कह रही हो नन्दिका ? पहले जिस रोज तुम्हारे मुस्कराते हुए मुंह से इस बात को मैंने सुना, सोचा, तुमने कहाँ से क्या सुना है और इसीलिए मेरा परिहास कर रही हो । तुम्हारी बात मेरे कानो में आई और निकल गई । फिर एक बार तुमने वही बात कही । कान में आई थी । तुमसे विदाई लेने के बाद जब एकान्त मे बैठा था वही बातें फिर कानों से निकलकर जाग्रत हो उठी । तुम्हारा गम्भीर मुख सामने आया । बहुत रोज तक मैं छटपटाता रहा । असल बात जानने के लिए मैं उद्विग्न हो उठा, उसी के बारे मे तुमसे पूछने के लिए बहुत जरूरी काम छोड़कर मैं दोड़ा आया था, पूछने की हिम्मत नहीं हो रही थी । तुमने ही पहले कहा । अब मैं समझ गया हूँ । अब अधिक कहने की आवश्यकता नही ।"

सुनन्द के गम्भीर मुँह पर हँसी दौड़ गई । अपलक दृष्टि से वह नन्दिका की ओर देख रहा है । दोपहर हो गया है । बाहर फागुन की कोमल धूप । खिड़की से मलय पवन का मृदुल प्रवाह आरहा है । फिर भी नन्दिका की देह और माथे पर पसीने की बूंदे है । चित्र प्रतिमा के ऊपर सुदक्ष चित्र, हँसी खीचने की तरह नन्दिका के मुँह पर एक कृत्रिम स्मितहास झलक रहा है । नजदीक न आकर वह टेबिल का आधार लेकर खड़ी हुई है । उसके मन में कौनसा दुख तड़प रहा है कौन जाने । इसमें जिम्मेदार कौन है ?

पलभर के लिए सुनन्द खिड़की से बाहर की ओर देखने लगा । आँगन पर नजर दौड़ाई । कही भी कोई नही है । एक भी आवाज सुनाई

नहीं देती। यह निस्तब्धता कितनी भयंकर है। सही नहीं जाती। फिर नन्दिका के ऊपर आँखें ठहर गयीं। वह कहती है--

"अरे, ऐसे क्या देख रहे हो?"

"देख रहा हूँ, हमारे सुख के संसार मे आग लगाने के लिए किसने कोशिश की है? हमारे अमृत पात्र मे किसने जहर डाल दिया है? देख रहा हूँ और सोच रहा हूँ।"

अरे, ये क्यों इतना सोच रहे हैं? अनुमान से किस किस निरीह और निर्दोष आदमी पर सन्देह का बोझा लाद रहे हैं। ना—ऐसे व्यर्थ सोचने का वह उन्हें बिलकुल अवसर नही देगी। कहने से अगर कसूर हो गया तो कसूर को वह अपने सिर पर ले लेगी।

नन्दिका सुनन्द के नजदीक आई। पलंग के पास खड़ी होकर सुनन्द के बालों को सहलाती हुई कोमल स्वर से कहने लगी, "क्या रूठ गये? मन की बातें तुमसे नही कहूँगी तो और किससे कहूँगी? अकेला रहना मुझे अब अच्छा नहीं लगता। मन से एक प्रेत निकलकर जैसे मुझे मारने के लिए मेरे पीछे दौड़ रहा है। मुझे एक साथी चाहिए—जो मेरी लड़की बनेगी। छोटी बहन, साथी—"

"और, दुश्मन?"

"बन नही सकेगी, उसे मैं अपनी गोद में ले लूँगी। उसके पास मैं अपने को सौप दूँगी। उसके प्रति अपने मन मे सौत की भावना कभी नहीं लाऊँगी।"

"किसी उपन्यास मे चार बातें कण्ठस्थ करके दोहराती-सी मालूम होती हो। काले बाजार का संगीत-जैसा लग रहा है। रहने दो। ज्यादा कहने की जरूरत नही।"

"मन की बात नही कहूँगी?"

नन्दिका ने सुनन्द के मुँह से दृष्टि फिराई। छाती के भीतर कपन होने लगा, 'क्या वह सच कह रही है? मन की बातें? स्वामी देवता

के सामने खड़ी होकर उनके बाल सहलाती हुई वह झूठ बोलती है, धोखा देती है। क्या वह सच बात कह देगी—तुम्हारी माँ का अब और धैर्य नही रहता है। वे एक नाती देखना चाहती है। और वह नाती सुनन्द के रक्त और मास से उद्भूत होना चाहिए।'

सुनन्द के सिर से नन्दिका ने अपने काँपते हुए हाथों को उतार लिया। सोचने लगी, सच बात ही कह देना चाहिए। उनके पैरों के ऊपर सिर रखकर स्वीकार करवा लेना चाहिए—वह और किसी की सन्तान नही चाहती।

सुनन्द की सन्तान और किसी के गर्भ से जनमे, वह यह बिलकुल नही चाहती। वह सहेगी कैसे ? माँ—

आफत आ जायगी। माँ आशा लेकर बैठी है, नन्दिका अवश्य सुनन्द को राजी करा लेगी। और एक लड़की से शादी करने के लिए वह राजी हो जायगा। वह नाती का मुँह देख सकेगी। आनन्द से आँखे मूँदेंगी और स्वर्गपुर को चली जायँगी।

सीधे तरीके से उन्होने कभी कुछ भी नही कहा है। लेकिन उनके विरक्त ढग से उनके मन का भाव प्रकट हो जाता है। जिस बहू को पलभर न देखने से वह पगली-सी हो जाती थी, आज पास जाने से वही पूछने लगती है 'क्यो आई ? क्या खबर—?'

यही उसके जीवन के सर्वस्व—सामने निर्बोध जैसे बैठे है। क्या सोच रहे है वही जानते है, बच्चों का खयाल अब तक उनके मन में नही आया। कभी उन्होने दिल खोलकर कुछ नहीं कहा। हर वक्त खुशी और आनन्द। खेल और कौतुक। जैसे एक छोटा-सा बच्चा। छोटी-छोटी बातों में अभिमान।

"तुमने कंगन क्यो नहीं पहने ? उस सिल्क की साड़ी को क्यों नहीं पहना ? क्या सिर्फ पेटी में रखने के लिए मैं उसे कलकत्ता से लाया था ?"

"भूल नही गई, लेकिन समय नहीं मिला। अब जाती हूँ, पहन लूँगी।"

बिलकुल छोटा-सा बच्चा ! शादी के पहले—शर्म, संकोच, छिपा हुआ भय, डरता हुआ अभिमान—अब वे दूर हट गये है, छोटे-से बच्चे की भाँति छाती मे मुँह छिपाकर कहते है, "मुझे लाड करो।"

"छि., कनी दीदी आती ही होगी, उठो।"

"आने दो। मैं उठूँगा नहीं। तुम लाड करो तो !"

झट से लाड करना। बच्चे जैसी उभरती हुई हँसी। कितनी खुशी से वे उठ जाते है।

मानो एक नन्हा-सा बच्चा। फिर नन्दिका को एक बच्चे की क्या जरूरत है ? सामने वही बच्चा मुँह सुखाकर बैठा है। कौन कहेगा कि उसके साथ आठ साल का परिचय है ?

कितना सुन्दर मुँह ! मूँछ निकल आती है। नाक के नीचे जो मूँछें थी, उन्हें कबसे काट दिया है। आँखों पर चश्मा नहीं है। बाल छोटे-छोटे है।

यही बच्चा—उसके सिर के बाल सफेद हो जायँगे, मुँह के दाँत गिर पड़ेंगे। फिर भी शायद उम्र का ख्याल नही होगा। तब भी वह लाड़ के लिए याचना करता रहेगा। एक दूसरे बच्चे की उसको क्या जरूरत है ? वह पेट से पैदा होगा, लेकिन यह तो उसकी आत्मा से ही पैदा हुआ है।' आत्मा से भी अधिक। मुँह सुखाकर बैठा है। क्या सोचता है कौन जाने ?

अपनी भावनाओं मे नन्दिका निमग्न होगई। अपने को भूल गई। सुनन्द के मुँह को उठाकर लाड़ करने के लिए इच्छा हुई। लेकिन कर नहीं सकी। सुनन्द की नजर उस पर पड़ गई। वह शर्म के मारे संकु-

चित-सी होगई। उसके हाथ पकड़कर सुनन्द ने प्यार के साथ कहा, "बैठो, मेरे पास बैठो।"

नन्दिका बैठी।

प्यार के साथ सुनन्द ने कहा, "एक बच्चे के लिए तुम बिलकुल व्याकुल हो गई हो। मेरी बात मानोगी ?"

नन्दिका की आँखो में आँसू छलक आये।

"जो दवा मैं लाया था, उसे तुमने बिलकुल नही खाया। अलमारी के भीतर वह वैसे ही पड़ी है। उसे खाना चाहिए।"

आँखों से आँसू पोंछकर नन्दिका बोली, "मैं और दवा नहीं खाऊँगी। मंत्र पानी से शुरू करके होमियोपैथी, कविराजी और एलोपैथी सब तो मैंने खाकर हजम कर दिये है। उससे सिर्फ शरीर ही मोटा हो रहा है। उससे लोग केवल हँसते ही हैं। और दवा खाने के लिए मुझे मत कहो। आदमी के भाग्य को दवा से अन्यथा नही किया जा सकता।"

"तुम कटक चलो। स्त्रियों के विषय में अति अभिज्ञ डाक्टरनी श्रीमती कुमारी भोई को एक बार तुम्हें दिखलादूँ। पाँच साल तक विलायत, अमेरिका और जापान में शिक्षा लेकर वह लौटी है। देखने के बाद वह क्या कहती है एक बार सुनना चाहिए।"

अपनी दक्षता के बारे मे कुछ सोचते हुए वह दीवार के सहारे खड़ी होगई। बच्चों को साथ लेकर खुद तुहिना देवी अतनु बाबू की पुरानी गाड़ी से मलय के जन्मदिन का निमन्त्रण देने के लिए आई थी। केवल पाँच-सात मिनट ठहरी थी। सुनन्द आजकल नहीं जाता है, उसके लिए बहुत अभिमान भी किया था।

—सिनेमा अच्छी तरह से चल रहा है। लेकिन आशानुरूप लाभ नहीं होता है। शर्त के अनुसार अतनु बाबू को हर महीने उनका प्राप्य मिल जाता है। ठुनठुनवाला अधीर हो गये हैं।

—भागलपुर में वे अच्छे हैं। व्यापार चल रहा है। चार रोज के

अन्तर से हिमानी की सास और स्वसुर की मौत होगई है। अब वह बहुत हैरान है। छोटा बच्चा बहुत सुन्दर हुआ है।

छोटा बच्चा बहुत सुन्दर हुआ है!

अस्पताल जाकर नन्दिका की परीक्षा होनी चाहिए। वहीं सब मालूम हो जायगा।

वह कटक क्यों आई है, यह सोचते ही छाती काँप उठती है। नारीत्व की परीक्षा! उसे और दुनिया में सबको मालूम हो जायगा नन्दिका माँ हो सकती है या नही।

कनी के ऊपर बीमार सास को वह सौंप आई है। सात रोज सात युग के समान लगते है, जब सास की याद आ जाती है। फिर भी ये सात रोज सात मुहूर्त के समान लगते है, जब स्वामी का प्यार और सुहाग की याद आ जाती है। इस बार वह अकेली कटक आई है। किसी से उसे डर नही है। तकाजा करने के लिए कोई नहीं है। सिर्फ नौकर चाकर ही है। बाहर से एक नौकरानी काम करने के लिए आती है। सबके मुँह में केवल माँ—माँ—का शब्द ही होता है।

उनका तो समय ही नही है। घर छोड़कर वे कहीं बाहर जाना नही चाहते। जाते भी है तो थोड़े ही समय के बाद लौट आते हैं। केवल बात-चीत करने की इच्छा, बात करते-करते लाड़। लाड़ करते-करते हँसी। हँसते-हँसते गोद में लोट जाते हैं। हँसी की पेटी का ढक्कन खुल गया है। हँसी के स्रोत में अगणित प्रेम के पुष्प तैरते हुए आ रहे हैं—किसी अज्ञात स्वर्ग के पारिजात-पुष्पों की माला।

मानो सात साल का एक छोटा बच्चा। आँखों से भी वैसे ही दीखते हैं। लाड़ के लिए याचना करते हैं। नन्दिका अकुण्ठित और निःसंकोच अपने को दे देती है।

आठ साल के पहले—वह कोमल देह की उत्तेजना, मन की अन्धी दौड़, ऊबड़-खाबड़, सीमा और दीवारों पर कूदकर शराबी मन दौड़ता है, नन्दिका चमकती हुई तरंग-सी काँपती है, डरती भी है, जैसे कोई नहीं है, कुछ भी नही है, इसके बारे में निश्चित करने के लिए वह आँखें मूँद लेती है।

आज वह सब अतीत हो गया है। छोटे-छोटे दोनो बच्चो का सकोचहीन अपने-पराये भेद से रहित हँसी हँसकर एक दूसरे के ऊपर लोट जाने का वह खेल। एक दूसरे का खिलौना और पुतली है। एक दूसरे की पुतली को साफ सुथरा करते हैं। कीमती किस्म-किस्म की साड़ी और गहनो से सजाकर देखते है—आँख भरकर देखते है।

दोनो जीवन के मिलन में इतना आनन्द !

बच्चों से इससे ज्यादा क्या फायदा मिलेगा !

देखते-देखते ही पन्द्रह रोज बीत गये। डाक्टरनी दो वक्त आई और यह-वह पूछकर देह की परीक्षा कर चुकी है। आधी उम्र की मोटी गोरे रंग की सुन्दर औरत। ज्यादा बात नही करती। जो भी कहती है हँसकर। हर समय बहन करके पुकारती है। देवता और भाग्य के ऊपर पूर्ण विश्वास।

कहती है, "सुनो बहन, मनुष्य केवल कोशिश ही करेगा, लेकिन भगवान की इच्छा के बिना इस दुनिया में हो ही क्या सकता है ? जिसका बच्चा होना चाहिए, देह के यत्र सब ठीक होते हुए भी सन्तान नहीं होती। जिसके यंत्र बिगड़ गये है और उसका बच्चा होने की सम्भावना ही नहीं है, वहाँ असम्भव भी सम्भव हो जाता है। डाक्टर कारण जानना चाहता है। हमारा काम है दवा देकर, नहीं तो औपरेशन करके रास्ता साफ कर देना। यह बहुत आसान काम है बहन, डरने की कुछ बात ही नहीं। एक बार मैं यंत्र से देखूँ तो—"

यंत्र से देखना क्या फिर भी बाकी है ?

फुरसत कहाँ है ? कटक शहर में जितने भी परिचित और सम्बन्धी थे हरएक के घर जाकर वह घूम आई है। उनमें से भी कई लोग यहाँ आकर देख गये है। बीच-बीच मे थियेटर और टाकीज जाने का कार्यक्रम भी रहा है।

वे इस जीवन का पूर्णतया उपयोग कर रहे हैं। अगर तमाम समय ऐसे आनन्द से बीत जाता तो कुछ फिक्र भी नही रहती। लेकिन बीतता नही, पीछे से कोई पुकार उठता है—ठहर जाओ। नही रुकने से खींचकर पकड़ लेता है, फिर दूसरा कोई सामने खड़ा होकर रास्ता रोक लेता है।

"कौन ?"

"पहचान नही सकोगी।"

सचमुच पहचाना नहीं जाता। कभी देखा हुआ-सा नहीं लगता। कितना सुन्दर रूप ? चीनी मिट्टी का खिलौना भी इसका रंग देखेगा तो लज्जित होकर मुँह छिपा लेगा। दो भौंहों को किसने कितने यत्न से कुंजी से खीच रखा है। होठों पर लाली लगा रखी है, ऊपर से नीचे तक कहीं भी अभाव नही है, मालूम होता है जैसे सत्रह-अठारह साल की एक छोटी-सी लड़की, दो बच्चों की माँ, दो बच्चे भी बहुत सुन्दर है, ठीक माँ की तरह।

"मलय, तू मौसी को नमस्कार कर। अरी छबीला, आँचल में मुँह क्यों छिपाती है ? तू भी मौसी को नमस्कार कर।"

अब नन्दिका पहचान सकी। तुहिना देवी ! हिमानी देवी की छोटी बहन। दूसरे कमरे में अतनु बाबू सुनन्द के साथ बातचीत कर रहे हैं। रात के करीब आठ बजे हैं। तुहिना देवी कितनी अच्छी है। कितनी सन्दर बातें करती है। बातो से मन खरीद ले जाती हैं।

"मैं सुनन्द बाबू को ही दोष दूंगी, वे तो अब बिलकुल नहीं जाते हैं—कामों का बहाना दिखाते हैं। तुम भी इतने रोज से आई हो। खबर तक भी नहीं भेजते हैं।"

नन्दिका ने बच्चों की तरफ आँखें फिराई। उन्हें छाती से लगाने की इच्छा होती है, लेकिन हिम्मत नही होती। उनके हाथ पकड़कर केवल वह उनका नाम ही पूछ सकती है।

नन्दिका ने सबका सत्कार किया। विदाई के समय तुहिना का हाथ पकडकर फिर एक बार आने के लिए अनुरोध किया। मन की इच्छा को रोक न सकने के कारण मलय को एक बार गोद में ले लिया, छाती से लगा लिया। मुँह चूमकर कहा, "अरे! पहचानता नहीं, मैं तेरी मौसी।"

"वह तो भागलपुर गई है।"

तुहिना बोली, "यह तुम्हारी एक दूसरी मौसी है।"

छबीला माँ की गोद से उतरी ही नही।

तुहिना ने कहा, "अगर तुम गरीबों के घर पर एक बार नहीं आओगे, तो मैं यहाँ फिर बिलकुल नही आऊँगी। सुनन्द बाबू, नन्दिका को लेकर कल जरूर हमारे घर आना पडेगा। ठीक आठ बजे। नहीं तो देखेंगे।"

सुनन्द हँसने लगा। नन्दिका बोली, "मैं इनको साथ ले आऊँगी।"

कनी ने खबर भेजी है, माँ की तबियत खराब थी, अब ठीक हो गई है। भाभी को और कुछ रोज के लिए कटक में ही रहने दो। जल्दी लौटने की जरूरत नहीं, सुमित्रा भाभी घर की देखभाल कर रही हैं।

नन्दिका को लगा, जैसे कनी पीछे से पुकार रही है, सास की

तबियत बहुत खराब है, क्या तुम वहीं रुक गई ? सेवा करने के लिए यहाँ कोई नहीं है, तुमको तो मालूम है कि वह सुमित्रा को टेढ़ी नजर से भी नहीं देखती। तुम जल्दी लौट आओ।

स्वामी को यहाँ अकेला छोड़कर गाँव जाने के लिए दिल नहीं कहता। सास से दूर रहने पर भी खराब लगता है। स्त्री का जीवन सचमुच कितना कष्टमय जीवन है ! डाक्टरनी भी अपनी परीक्षा खत्म करके कुछ अच्छा-बुरा बता देती तो मन का दुख भी दूर हो जाता।

हिम्मत करके नन्दिका ने कहा, "माँ की तबियत ठीक नहीं है।"

सुनन्द ने जवाब दिया, "कहो, ठीक नहीं थी।"

"कनी हर वक्त वैसा ही उल्टा लिखती है।"

"क्या लौट जाने की इच्छा हो रही है ?"

"तुम माँ को यही ले आओ। उनकी तबियत आजकल ठीक नहीं रहती। दिनों दिन वे कमजोर होती जा रही है। तुम जिद्द करोगे तो वे आने को राजी हो जायँगी, मेरा कहना वे नही सुनेंगी। उन्हें भी डाक्टरनी को एक बार दिखाना चाहिए।"

सुनन्द समझ गया। वह जानता था कि गुरु ब्रह्मा के कहने से भी माँ कटक आने को राजी नही होंगी। उनके वहाँ घर है, जमीन है, जायदाद है, उनकी देखभाल करने की शक्ति उनमें भले ही न हो फिर भी वह वही रहना चाहती हैं। कटक आने के लिए उनसे सुनन्द ने बहुत बार अनुरोध किया। आँखें दिखाकर वह मना कर देती है, जब कभी कटक आती हैं, दो-चार रोज के बाद ही गाँव लौटने को उतावली हो जाती हैं। यहाँ उनकी साँस बन्द हो जाती है। यहाँ के हल्ले से उनका मन घबराने लगता है।

नन्दिका लौट जाना चाहती है। एक तरफ स्वामी, दूसरी तरफ सास। उसके गले में प्रेम और भक्ति की पवित्र डोर बँधी हुई है। दोनों को साथ में लेकर वह जाना चाहती है। कर्तव्य ! उसके लिए

दोनों कर्तव्य समान है। अभिमान करके मुँह सुखाने के लिए इसमें कुछ भी नही है। कुटुम्ब में सभी समान है। नन्दिका एक दूसरे घर से इस घर में आई है, यह किसी के भी ख्याल मे नही रहता। सत्य भी सपना-सा लगता है।

नन्दिका ही घर की मालकिन है। कुल की लक्ष्मी। वह जैसा कहेगी, दूसरो को वैसा करना ही पड़ेगा।

अगर दशरथ जीवित रहते तो सीता का निर्वासन दण्ड कभी सम्भव न होता। विचलित-मति पुत्र को वह जरूर समझा कर कहते, 'सीता मेरे कुल की लक्ष्मी है। वह इक्ष्वाकु वंश की जननी बनेगी। उसी वश के भविष्य को गर्भ में धारण करके क्या वह बनवासिनी बनेगी ? असम्भव। मैं कौन हूँ ? तुम लोग कौन हो ? जीवन की लम्बी माला मे हम एक-एक दाने के समान ही है। अतीत के लोग चले गये है। अब इस वंश का दायित्व मेरे ऊपर है। मेरा जमाना खत्म हो जायगा तो मैं भी चला जाऊँगा। उसके बाद तुम्हारी बारी। जो उसके बाद आयगा अब वह मेरे कुल वधू के गर्भ मे है। क्या जानबूझ कर मैं इस माला को तोड़ दूँगा ? सुनो राम, नाम के मोह में अन्धे मत होओ। अबाध्य होने से यह वंश तुमको अतिक्रम करके चला जायगा। तुमको फिर निर्वासन दण्ड देगा।'

नन्दिका कुल लक्ष्मी है। लेकिन वंश के भविष्य को उसने गर्भ में धारण नही किया है। इसीलिए उसके मन मे व्याकुलता। इसी के लिए उसने डाक्टरनी की याद की है।

"मुँह सुखाकर ऐसे क्यों बैठ रही हो ?"

नन्दिका की आँखों में आँसू भर आये। वह सुनन्द की तरफ आई और पलंग के सहारे खड़ी होकर बोली—"नही, मैं गाँव को नही जाऊँगी। तुम माँ को यहाँ लिवा लाओ। बूढ़ी हो गई है, अकेली गाँव में नहीं रह सकेंगी।"

नन्दिका का हाथ पकड़कर सुनन्द ने उसे अपने पास खीच लिया और मुस्कुराकर कहा, "माँ गाँव मे अकेली नही रह सकेगी। मै जानता हूँ कि वह अपने लडके से बहू को अधिक प्यार करती है, तुम्हे देखे बिना वह रो-रो मर जायँगी।"

"यह सब क्या कह रहे हो तुम ? छि. !"

"यही सुनने के लिए। इतना ही सुनकर मेरे मन में जो आनन्द अनुभव होता है, वाणी से मैं उसे कैसे कह सकूँगा ? यह संसार तुम्हारा है। तुम जैसा कहोगी, वैसा ही अवश्य होगा। तुम्हारी आँखो से आँसू क्यो बहेगे ? हँसो एक बार।"

नन्दिका की आँखो में आँसू, मुँह मे हँसी।

"समय है। रात के आठ बजे है। चलो आज अन्नपूर्णा थियेटर चलें। काली बाबू का 'गणदेवता' अभिनीत हो रहा है। चलोगी ?"

"तुहिना देवी को भी साथ ले लेगे तो बहुत ही अच्छा होगा। कितनी अच्छी है वे ! दो बार यहाँ आ चुकी है, उनके घर मैं एक बार भी नही जा सकी।"

"जल्दी तैयार हो जाओ।"

'गणदेवता'। पर्दा उठ रहा है। पर्दा गिर रहा है। पोशाक पहने हुए बहुत-से आदमी रंगमच पर आते है और जाते है। कितनी बात-चीत, राग-रग, हँसी, रोना, गीत-वाद्य और शोर-गुल।

तुहिना तन्मय हो गई है। नन्दिका भी तन्मय ! उसने कुछ नहीं देखा है, कुछ भी नही सुना। केवल छबीला की देह का स्पर्श उसने अनुभव किया। छोटी छाती का स्पन्दन उसकी नस-नस को भेद गया है। उसकी गोद में वह सो गई है। तुहिना के चाहते हुए भी उसने बच्चे को नहीं जाने दिया। अतनु बाबू की गोद में मलय। वह जगा हुआ है। पर्दे की तरफ बड़ी-बड़ी आँखों से देख रहा है। उसे भी गोद लेने के लिए नन्दिका आतुर है। लेकिन वह नही आता।

अभिनय समाप्त हो जाता है। आदमी फिर वास्तविकता के बीच लौट आता है—सत परीक्षाओं के बन्धनों के बीच।

यंत्र, आलोक और कई किस्म की परीक्षा के बाद डाक्टरनी ने कहा, पेट का यंत्र बिगड़ गया है। दवा काम नही करेगी, औपरेशन करना पड़ेगा।

उसके लिए भी नन्दिका तैयार थी—चाहे जीवन या मरण की ही समस्या भले ही क्यो न हो !

सुनन्द ने प्रतिवाद किया। "मुझे सन्तान नही चाहिए। नन्दिका, एक लड़का या लड़की होने से क्या मुझे तुमसे अधिक सुख मिलेगा ?"

नन्दिका के मुँह में लाड़लापन—केवल लाड़लापन। जैसे वह सुनन्द की प्रथम सन्तान, प्रथम कन्या।

कोई भी बात छिपी नही रहती। यह भी बात प्रगट हो गई। गाँव की औरते कभी अकेली और कभी-कभी झुण्ड मे भी सच बात क्या है, यह जानने के लिए दौड़ी आती। कनी से पूछती है तो वह मुँह मोड लेती है। अभया से पूछने की किसी की हिम्मत नहीं होती, नन्दिका से पूछने को मुँह नही खुलता। मन पूछता है, नन्दिका के चलन और ढंग से उनको जवाब मिल जाता है—बात सच ही है, वह जननी नहीं बनेगी। वह बाँझ है।

आशाएँ खत्म हो गई। उसके साथ-साथ मन की ताकत भी, अब पुत्र की कामना करके नन्दिका देवताओ की प्रार्थना नही करती, वह प्रार्थना करती है—मेरी मौत हो जाय। उसका मनुष्य जन्म व्यर्थ ही हुआ।

आँखों से आँसू बह आते हैं।

सास गुस्सा नहीं करतीं, वह मौन हो गई हैं, पूछने से जवाब नहीं देतीं।

कनी से पैरों मे मेहदी लगाते वक्त लकीर टेढ़ी हो जाती। लेकिन शिकायत के साथ वह नही कहती, आज भाई आने वाले हैं, इस पुराने कपड़े को बदल देना चाहिए। सिर पर तेल भी नही है, भाई सोचेंगे कि कनी भाभी का ध्यान नही रखती।

सिर्फ उतना ही नहीं, नन्दिका को देखने से सुनन्द का मन छटपटाने लगता है, सबके ऊपर राग और अभिमान होता है। कोई भी उसका ध्यान नही कर रहा है। वह सूखती जा रही है। मुँह मुरझाया हुआ दीखता है।

ऐसा क्यो कनी ?

भाई से, ऐसा एक प्रश्न पूछा जायगा, कनी ने यह आशा नही की थी। सेवा में वह कभी एक भी त्रुटि नहीं करती। फिर भी नन्दिका सूखती जा रही है। कटक से लौटने के दिन से ही वह आधा पेट खाती है। कटोरे में न जाकर जब हाथ मिट्टी में चले जाते है तब उसको होश आता है।

"हूँ, वह फिर कटक जायगी, गाँव में रहना उसके लिए मुमकिन नहीं है। तुम लोग सब मिलकर उसको मारने का विचार कर रहे हो।"

कहकर सुनन्द बाहर चला गया। कहीं भी उसका दिल नही लगता, कटक में जितना समय कामों मे व्यस्त रहता है, उतना समय सब भूल जाता है, एकान्त मे फिर वही बातें सताने लगती है, जहाँ भी देखो आँखों के सामने नन्दिका की तस्वीर आ जाती है, एक पलक के समान सुख, आनन्द और हँसी के वे दिन बीत गये है, फिर वही पुरानी बात, अकेला और रसहीन जीवन। सताता हुआ चिन्ताग्रस्त जीवन, नन्दिका हताश हो गई है। फिर भी उसने हँसने की कोशिश की है।

क्या देखा तुमने ? मुरझाया हुआ मुँह। अपनी देह के प्रति असाव-

धान। जैसे वह कोशिश करके हँस रही हो। मजबूरन बात कर रही हो। जब वह चलने लगती है तो ऐसा मालूम होता है मानो कोई उसे धकेल रहा है। अन्यमनस्क। क्यो ऐसा हुआ ? पूछने से कुछ नही कहती, लेकिन सुनन्द को सच बात का पता लग गया है। बाहर निकलते ही जो देखती है वही पूछती है, 'क्या डाक्टरनी ने यही कहा ? अब कही से एक बच्चा गोद ले लो। रक्त के सम्पर्क से हो तो अधिक अच्छा है।'

गाँव की औरतें नन्दिका को ऐसे ही सताती रहेगी, कौन किसका मुँह बन्द कर सकता है ? वह यह सब नही सह सकती। मन की बातें किसी से कह भी नहीं सकती, इस गाँव मे रहना उसके लिए असम्भव है। अबकी बार वह उसे कटक ले जायगा। माँ को भी साथ ले जायगा। एक को छोड़कर दूसरी रह नही सकेगी।

शाम हो गई है। मार्च का महीना। आधा चाँद आसमान के ऊपर से हँसमुख उतर आ रहा है। आँगन मे एक चटाई बिछाकर अभया चुपचाप बैठी है। सामने सुनन्द, नन्दिका रसोई मे। कनी भी वही है। गर्मी शुरू हो गई है। आज हवा बिलकुल बन्द है। चाँद की रोशनी मन को प्रफुल्ल नही कर सकती। गुस्सा-सा आरहा है।

जो बात कहने की इच्छा थी, उसे वह कह नही सका। यही है उसकी दुखिनी माँ। उम्र ढल चुकी है। कब गिर पड़ेगी कोई नहीं कह सकता। कटक जाने के लिए माँ राजी नही होगी, यह वह जानता है। जिस श्मशान पर पूर्व पुरुषों का भस्म पड़ा है वही उसकी चिता जले, उसके मन मे यही कामना है। और मुखाग्नि देगा सुनन्द। बार-बार वह यही कहती आई है। कुछ रोज के पहले भी कहती थी।

नन्दिका कटक नही जा सकेगी। जाना भी नही चाहिए। यहीं रहने दो। भाग्य में जो है वही होगा। उसके विषय मे माँ से बात करने की हिम्मत नहीं होती। यदि मुँह से कुछ निकल गया तो माँ का मन

दुखी हो सकता है, व्यापार की बाते, जगह जमीन, गाय बैल, दो बहनें, गॉव की खबरे, राजीव की प्रशसा—।

अभया गौर से सुन रही थी। दिल खोलकर लड़के के साथ बात-चीत हुई, नन्दिका के सम्बन्ध मे उन्होने एक भी बात नही पूछी। दूसरे जो पॉच बातो मे दो बार बहू की प्रशसा करती है, आज उन्होंने उसका नाम भी नहीं लिया। नन्दिका के दुर्भाग्य के लिए उस पर माँ की घृणा पैदा हो गई।

दुख भरे मन से सुनन्द उठा। देखा नन्दिका कार्य व्यस्त थी। धीरे-धीरे घर के पीछे की तरफ चला गया। तालाब के पास बैठा। निस्तब्धता से मन मे उदास भाव पैदा हुआ। सामने निर्मल पानी पर आसमान और चन्द्रमा की परछाई पड़ी है। चारो तरफ तरह-तरह के पेड़। अपरिचित पक्षियो की फड़फड़ाहट की आवाज। उसने कुछ नहीं देखा। कुछ भी नहीं सुना। केवल सोचने लगा।

ऐसा लगा, जैसे नन्दिका आ रही है। उसने मुँह फिराकर देखा। हाँ नन्दिका। धीरे-धीरे छिप-छिपकर आयगी। पीछे से आँखें बन्द करेगी। कितनी बेवकूफ? केवल उसी एक के बिना और कौन सुनन्द की आँखें बन्द कर सकती है? हर बार वह कहता है—छोड़ दो नन्दिका। आज भी वह वैसा ही मजा करेगा। हाथ से छूकर कहेगा—सुषमा। उसके बाद—हिमानी। ऊँ हूँ—इन्दिरा। नन्दिका चौक उठेगी। अपने आप हाथ खोल लेगी। फूट-फूटकर रो पड़ेगी।

"वे कौन है?"

"तुम्हारे नाम। जहाँ भी जितनी सुन्दर और गुणवती बहुएँ दुनिया में है, उन सबको मैं तुममे ही देखता हूँ।"

"मुझे क्या उनमें नही देखते हो?"

वह क्या जवाब देगा ?' नन्दिका पीछे से आकर खड़ी हो गई है। वहाँ से चम्पा के फूल की महक आ रही है, अब वह आँख बन्द करेगी, सुनन्द सोचने लगा, 'वह क्या जवाब देगा ?'

"क्या आज खाना नहीं खाओगे ?"

"नहीं—"

"क्या मुझ पर नाराज हो ?"

नन्दिका पास खड़ी है। सुनन्द समझ गया कि अपने अभिलपित प्रश्न का जवाब देकर उसने नन्दिका के मन में सन्देह नहीं, दुख ही उत्पन्न किया है। नन्दिका का हाथ पकड़कर उसने उसे पास बिठाया। कहा, "सचमुच मै तुम पर नाराज हूँ, कटक से आने के बाद से ही तुम खाना-पीना भूल गई हो। अपनी देह की परवाह नही कर रही हो। दिनों-दिन कमजोर होती जा रही हो।"

"झूठ बात है।"

"छि. अपने को कष्ट देने का क्या कारण है। सन्तान होना असम्भव है, ऐसा तो डाक्टर ने नहीं कहा है। उन्होने कहा था कि औपरेशन करके वह पेट सुधार देगी, बहुत सोचने के बाद मैंने भी औपरेशन कराने का निर्णय किया है।"

"खाली गोद बाँझ होकर औपरेशन टेबल के ऊपर मरना मैं नही चाहती।"

"और सूख-सूखकर, रो-रोकर—"

"हाँ हाँ, वैसे ही मरना बेहतर है।"

"लोगो की बातें सुनकर—"

"किसी बात से मैंने राग-द्वेष या अभिमान कुछ भी नहीं किया है। वे सब सच ही कहते है। मैं केवल माँ के लिए सोच रही हूँ। वह मुँह खोलकर कुछ नही कहती है, लेकिन एक नाती के लिए व्याकुल बैठी है।"

"अच्छी बात है। मैं एक बच्चा गोद ले लूँगा। मेरी बहनो के इतने बच्चे है। तुम्हारी और माँ की इच्छा के अनुसार उनमे से ही मैं एक गोद ले लूँगा।"

"माँ की इच्छा ऐसी नही है। वह चाहती है तुम्हारा लड़का—"

"तब कलकत्ता में औपरेशन करा लेगे।"

"अगर मेरी मौत चाहते हो तो।"

"हमें बच्चे नही चाहिए, बच्चा स्वर्ग नही ले जाता है। जानबूझ कर हम अपने सुख और आनन्द के संसार में जटिलता नही लायँगे नन्दिका। उससे फायदा ही क्या? हमारे भाग्य मे सन्तान नहीं है। भगवान् अगर वैसा ही चाहते है तो उसमे कौन बाधा दे सकता है? नन्दिका, माँ एक नाती चाहती है। नाती उन्हें प्राप्त नहीं हो सकता। आँखे मूँदेगी। मूँदने दो। उसके लिए क्यो फिक्र कर रही हो? सूख-सूखकर क्यो यह हालत करती हो?"

नन्दिका ने अपने रोने के प्रवाह को रोक लिया।

सुनन्द कहने लगा "मैं अब और गाँव को नही आऊँगा। तुम्हारे सूखे हुए मुँह को, रोती हुई आँखों, और इस अमनस्कता को देखने के लिए मै कटक से क्यो घर तक दौड़कर आऊँगा?"

"तुम्हारे पैर पकड़ती हूँ।"

नन्दिका फूट-फूटकर रो उठी, अपना क्रन्दन रोकने की कोशिश करके बोली, "तुम यह क्या कह रहे हो? तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, तुम यह सब और कभी नही देखने पाओगे। मैं—मैं—अबसे सिर्फ हँसती ही रहूँगी। अपने को बहू की वेशभूपा मे सजाकर तुम्हारे सामने खड़ी होऊँगी।"

सुनन्द चौक उठा। नन्दिका रो रही है। पैर पकड़कर मिन्नते कर रही है। अब वह केवल हँसती ही रहेगी। केवल बहू बनकर सामने आयगी। तो सुनन्द क्या नन्दिका की हँसी और रूप को ही प्यार करता

है ? नन्दिका के सूखे हुए मुँह, रुग्ण शरीर, असज्जित और असावधान रूप, मन के दुख को क्या वह बिलकुल प्यार नही करता ? नन्दिका जो हो, जैसी हो, वह उसे जरूर स्नेह करता है ।

नन्दिका के सिर को सुनन्द अपनी छाती की ओर ले आया । पीठ सहलाकर बोला, "तुम्हारे मन में इतना दुख होगा यह मुझे मालूम नहीं था । मेरी कसम तुम चुप हो जाओ । दिल्लगी को सच समझकर अगर रोने लगोगी तो मैं तुम्हे और कुछ नही कहूँगा । चलो अब खाना खिलाओ ।"

सिर उठाकर नन्दिका बोली, "क्या तुम रूठ गये ?"

"क्या तुम ऐसा सोच भी सकती हो ?"

"सब कसूर मेरा ही है । आओ, नही तो माँ को नीद आ जायगी ।"

बहुत रोज के बाद आज ही अभया ने खुशी से बात की । "अब देरी नही करनी चाहिए माँ, हमारे भाग्य के लिए अगर विधाता अप्रसन्न हुआ तो हम क्यो किसी को कोसने जायँगे ? डाक्टरनी ने तो कह दिया कि तुम्हारे सन्तान नही होने वाली है । अब इन्तजार करने में भी कुछ फायदा नही । जिस बच्चे को तुम प्यार करती हो, जिसके माँ-बाप राजी हो जायँ उसी को तुम गोद मे ले लो । सुमित्रा के भी बच्चा होने वाला है । उसी को तुम गोद ले लो ।"

पैर दबाते-दबाते नन्दिका के हाथ काँप उठे, सास आज़ इतनी कैसे बदल गई, दुश्मन का बच्चा है न, उसी को फिर घर लाने के लिए सलाह देती है ! क्या हमारे मन की परीक्षा कर रही है ? बिना भय के जवाब दिया, "मेरा भाग्य मन्द है, लेकिन जो दूसरी बहू बनकर आयगी, उसके क्या सन्तान नहीं होगी ?"

"दूसरी बहू आयगी।?"

"आप इजाजत देगी तो—"

"वह कौन है ?"

"ललिता। सम्बन्ध में शोभा दीदी की ननद। आठ साल के पहले शोभा दीदी के साथ आठ-नौ साल की जो लड़की आई थी, वह कितनी सुन्दर और सुचतुर थी। हर वक्त मेरे पास रहती थी। एक दो बार मैंने उसको पत्र भी लिखे है। मेरे मन वह खूब भाती है, दीदी ने भी उसकी बहुत प्रशंसा की है।"

"क्या शोभा ने ?"

"हाँ, मैंने उनको लिखा था।"

"क्या उसके माँ-बाप राजी हो जायँगे ?"

ललिता के माँ-बाप नहीं है। केवल भाई और भाभी हैं। उनके बच्चे बहुत हो गये है। वे गरीब है। भाभी भी ललिता को देख नही पाती। रात-दिन उससे काम कराती है। फिर भी ललिता एतराज नही करती। दीदी ने लिखा था, "प्रस्ताव आयगा तो उनके भाई और भाभी राजी हो जायँगे।"

अभया उठ बैठी। क्षण भर के लिए नन्दिका की ओर देखने लगी। उसका मुँह जैसे आग्रह से भरा हुआ था। होठों पर मुस्कराहट थी। समझ गई, जैसे नन्दिका अपने हृदय से कह रही है। मन की परीक्षा नहीं करती। नन्दिका की छाती के भीतर प्रवेश करके उसकी छटपटाती हुई आत्मा का स्वरूप तो वह देख नही सकी, आकुल-व्याकुल पुकार तो वह सुन नहीं सकी !

बोली, "सुनन्द की राय ले ली ?"

"जरूरी नहीं। आप राजी हो जायँगी तो—"

"क्या उसको मालूम है ?"

"मैंने उनसे अब तक कहा ही नहीं।"

"अगर वह राजी नहीं हुआ तो ?"

"अपनी माँ के खिलाफ वे जा ही नहीं सकते ।"

"अगर ललिता तुम्हें पसंद है तो मैं क्यों मना करूँगी । मेरे तो अब ज्यादा दिन बाकी नही रहे । तुम लोग सुख और आनन्द से संसार बसाओगे, यही देखकर मैं खुश होऊँगी ।"

"मैं क्यों मना करूँगी ?"

जिस ओर देखो उसी ओर से यही सवाल सुनाई देता है । आधी रात का समय, अँधेरा छाया हुआ है, आसमान मे अगणित तारे, धीर और शीतल हवा । सन्नाटा । सब केवल यही बात कहते है ।

नन्दिका की छाती काँप रही है । आँखों से आँसू की धारा बह रही है । कितना भी पोंछने से नहीं रुकती । रोते हुए इस मुँह को लेकर वह कैसे घर के भीतर जायगी ?

वह चैन से सो रहे है । सफेद मच्छरदानी । दिये को कम कर दिया गया है । मच्छरदानी को छूते ही नींद टूट जायगी । मुँह की ओर देखते ही पूछेगे 'क्यों रो रही हो ?' मन की बात वह कह नही सकेगी । मुँह की बात कहने की भी हिम्मत नहीं है । अब वह क्या करे ?

अरे, कोने का कमरा खुला पड़ा है । साँकल नहीं लगाई गई है । उसी कमरे में उसने कपड़े बदले हैं । कनी ने उसको सजा दिया है । कैसी विडम्बना है ! छि: यह वेश-भूषा उसे चाहिए भी नहीं, इस घर में उसका अब क्या है ? अब तो वह कनी से भी हीन हो जायगी ।

सामने वाले बीच के कमरे में कनी सोती है । अब वह सो गई है । उसी कनी ने उसे सजाया है । अच्छी साड़ी पहना दी है । बदन पर गहनों का मण्डन किया है । आँखों में काजल । जूड़े में फूलों की माला ।

पैरों में मेंहदी। मानो आज उसकी सुहाग रात है। यह दिल्लगी किसके लिए ?

वह खुश होंगे। मुरझी हुई देह, सूखा हुआ मुख, रोती हुई आँखें, अभिमान भरा ढंग देखने से उनके मन में दुख होगा। वह आनन्द चाहते है। तब वैसा ही होने दो। वे भी कहेंगे, मैं भी क्यों मना करूँगा ? नहीं-नहीं इस दुनिया में केवल वही एक मन के नीचे छिपी हुई और रोती हुई बातों को समझ सकेगा। विष के पानी से भरे गिलास को अमृत कहकर पीने बैठूँगी तो केवल वही एक मना कर सकेंगे— छि: मत पियो।

सिर्फ वही एक।

भीतर प्रवेश करके नन्दिका ने दरवाजा बन्द कर दिया। रोशनी तेज की। दर्पण की ओर देखा। आँसुओं से काजल की बारीक रेखा बह आई है। आँचल से आँखो के नीचे से वह पोंछने लगी। बस, अब वह जान नही पायँगे। देखकर उनको अचरज होगा, दो घंटे के पहले नन्दिका को उन्होने कैसे देखा था, और अब कैसे देख रहे हैं। मर्द है वे—कैसे उन्हे मालूम होगा कि हम कितनी जल्दी बदल सकती हैं।

पास आई। मच्छरदानी उठाकर धीरे-धीरे देखने लगी। बेहोश सो रहे हैं, सोने दीजिये। उनके सुखी मन के भीतर अच्छाई या बुराई प्रवेश नहीं कर पाती है। हिंसा या द्वेष उन्हें मालूम ही नहीं। सभी को प्यार करते है, किसी पर सन्देह नहीं करते। अब चैन से सोने दीजिए। जब सवेरा होगा तो जरूर देख सकेंगे। समझेंगे, नन्दिका अबाध्य नही है। उनको खुश करने के लिए नन्दिका अपने को आठ साल के पीछे भी लौटा ले जा सकती है।

रोशनी कम कर देने के लिए नन्दिका टेबल के पास लौट आई। आधी रात होने वाली है।

"रोशनी को तेज कर दो।"

"क्या तुम्हारी नींद टूट गई ?"

"तुमने ही तो मेरी नीद तोड़ी ।"

"इतनी देर तक क्या कर रही थी ? अब क्या समय होगा ?"

नन्दिका ने घड़ी की ओर देखा । सिर्फ ग्यारह बजे हैं ।

"अरे, कटक होता तो अब तक काम भी खत्म नही होता । गाँव मे आकर आदमी आलसी बन जाता है । मैंने तो अब एक नीद भी ले ली है, अब नीद नही आयगी ।

सुनन्द ने मच्छरदानी उठाई । नन्दिका की ओर देखा । सिर्फ आँखें नही उसका मन भी भर गया । नन्दिका के मन में जरूर थोड़ा-सा दुख हुआ था । वह दुख अब अपने-आप हट गया है । अपने-आप को सजाकर वह स्वामी के पास आई है । शर्म की वजह से नजदीक न आकर वह टेबल के पास खडी हुई है ।

खुद उठकर नन्दिका का हाथ पकड़ कर उसे अपने पास लाने के लिए सुनन्द की इच्छा हुई । वह पूछेगा उस समय क्यों रो रही थी । क्यों मुँह सूखा कर दिया था ? नही, उस बात को वह नहीं पूछेगा । उसके निष्फल जीवन की बातों की याद दिलाकर उसके मन में वह दुख नहीं लायगा ।

बोला, "आओ, तुम्हें एक मजे की बात सुनाऊँगा ।"

"कौनसी बात ?"

नन्दिका सुनन्द की ओर देखने लगी । वे बैठे हुए है—आग्रहभरी आँखों से मुस्कुराते हुए मुँह से देख रहे है । उस दृष्टि और मुस्कराहट का अर्थ वह समझ लेती है ।

"अत्यन्त गुप्त बात ।"

"सच ? मुझे नींद आरही है । कथा सुनने का आग्रह नहीं है ।"

"सो-सो स्वप्न देख रहा था, उसी की कथा ।"

"स्वप्न की कथा ?"

"हाँ। केवल दो-चार बात। ज्यादा कहकर मैं तुम्हारी नींद में व्यवधान नहीं डालूँगा। रोशनी बुझा दो और यहाँ आओ। दिनभर काम के बाद बहुत थक गई हो।"

रोशनी बुझ गई। नन्दिका का हाथ पकड़ सुनन्द उसे अपने पास ले गया। मच्छरदानी गिरी। नन्दिका ने पूछा, "स्वप्न की बात कहोगे न ?"

"हाँ कहता हूँ।—मैंने स्वप्न में देखा···तुम्हारा एक लड़का हुआ है। डाक्टरनी भोई हँसकर कह रही है-—आपको मैंने कैसे धोखा दिया था, देखिये। सचमुच नन्दिका, कमल के फूल के समान कितना सुन्दर है। एक लड़का मैं स्वप्न मे देख रहा था, उसकी आवाज अब भी मेरे कानों में है। ऐसा स्वप्न पहले मैंने कभी नहीं देखा था। नन्दिका, मेरा स्वप्न सत्य ही होगा। शादी के पन्द्रह-बीस साल के बाद भी कुछ लोगों के सन्तान होती है। और तुम ? तुम तो कल ही आई हो, मुझे तो कल ही जैसा लगता है। डाक्टर लोग झूठ नही बोलते, लेकिन कभी-कभी भूल कह देते है। एक रोज श्रीमती भोई को भी अपनी भूल माननी पड़ेगी।"

दाँत और होठ बंद करके नन्दिका ने अपनी छाती के भीतर के दुख को दबाये रखा। काँपती हुई साँस लेने लगी। सचमुच क्या उन्होंने स्वप्न देखा था ? क्या यह स्वप्न सचमुच सत्य होगा ? क्या नन्दिका पन्द्रह या सत्रह साल तक इन्तजार करेगी ? अथवा उसके मन में बुझी हुई आशा के दीप को फिर जलाने के लिए मिथ्या स्वप्न की यह एक अवतारणा ? कौन जाने शायद वह अपनी छटपटाती हुई कामना की स्वप्न प्रतिमा को देख रहे थे ?

नन्दिका जवाब नही दे सकी।

"क्या सो गई ?"

"नही।"

"चुप हो गई जी ?"

"स्वप्न की बातें सोच रही हूँ।"

"क्या झूठ है ?"

"तुम्हारी किसी बात को मैं झूठ नहीं समझूँगी। तुम्हारा स्वप्न एक रोज अवश्य फलेगा। जो सुन्दर कमल के समान लड़का स्वप्न मे आया था, सचमुच वह इस घर में आयगा। उसे गोद मे लेकर मैं चूमती रहूँगी। और देरी नही सही जाती।"

"सच ? इतनी आतुरता ?"

देह का उष्ण स्पर्श।

चिबुक पर अनागत शिशु के निमन्त्रण सन्देश की मोहर। नन्दिका की बाहु सुनन्द की पीठ पर आ पड़ी। वह उसकी पीठ सहलाने लगी। लाड़ के साथ धीरे-धीरे कहा, "क्या मेरी मनोकामना पूरी करोगे ? प्रत्येक देवता मेरी प्रार्थना से अप्रसन्न होगये हैं। तुम्ही मेरे जीवन देवता हो। मेरी मनोकामना तुम पूरी करोगे ?"

सुनन्द के खून मे अनल का तेज। स्नायु मे बिजली की लता। उसी लता के पुलकित पल्लव पाश में नन्दिका का निविड़ बन्धन। सुमधुर सुगन्धित सुमनराशि की सुषमा के समान नन्दिका के आनन पर चुम्बनों का स्पर्श, अली के गुजन के समान कानो मे लगी एक ही बात।— सुनन्द कह रहा है—"अवश्य, अवश्य।"

नन्दिका की अवश आँखों की लोतकधारा को काले अंधेरे ने छिपा रखा था।

आनन्द के पारावार में मन को डुलाती हुई लहरों के समान वह चंचल। लहरों के शब्द के समान वह मुखरित। सबके प्रति सत्य और सहानुभूतिशील व्यवहार। अपने प्रति भी, रोज-रोज तीन बार नई पोशाक बदलना, नई साड़ी, नये गहने। लोग चाहे जो सोचें, आज

नन्दिका को किसी भी बात की चिन्ता नहीं है। केवल मन के ऊपर सास की बातों की लहरें उठ रही है।

"बहू, क्या वह राजी होगया ?"

"राजी हो जायेंगे माँ, दीदी को पत्र लिखकर मैं पहले ललिता के सम्बन्ध में बात पक्की कर देती हूँ।"

दूसरे रोज अभिमान के साथ अभया ने पूछा, "पूछा तुमने ?"

"मौका देखकर पूछूंगी माँ।"

"क्या मेरे मरने के बाद पूछोगी ?"

मुझ पर अविश्वास मत करो माँ, वे कभी बातों के बाहर नहीं होगे। दीदी ने लिखा है कि ललिता की भाभी असहमत हो रही है। कहती है वह ललिता को सौत के पास कभी नही भेजेगी। भाई भी राजी नहीं है। उसकी भाभी के पास मै स्वयं पत्र लिखूँगी।"

"पहिया ऐसा ही घेरा डालता रहेगा। और इसी के बीच मैं चल बसूँगी।"

"नहीं, बात इतनी दूर नही जायगी। जिसके लिए आपत्ति उठती है वही रास्ता साफ कर देगी। इस निष्फल जीवन से अब क्या लाभ ?"

नन्दिका खिलखिला पडी। सामने सास बैठी है, 'ऐसी उन्मुक्त हँसी बहू को शोभा नही देती,' यह बात वह भूल गई। चैत्र मास की दोपहर। धीरे-धीरे चैत्र-पवन से आम के बौर की मधुर गन्ध मन को पुलकित कर रही थी।

अभया घूर-घूरकर देखने लगी। देखते-देखते उनकी कठोर दृष्टि विचलित हो गई। अरे, बहू क्या कह रही है ? क्या सचमुच उसके मन में वही भावना है ? नही तो ऐसी बात उसके मुँह से निकली कैसे ? देखने से लगता है जैसे कल ही शादी के बाद ससुराल को आई है। कौन कहेगा कि आठ साल की बहू है ? देह के ऊपर सोने का रंग चमक उठता है। पान के पत्ते के समान सुन्दर मुँह पर आनन्द की आभा।

सिर मे सिन्दूर की माँग। माथे पर चन्दन की बिन्दी के बीच में एक नीली रेखा। आसमानी रंग की साडी पहनी है। सोने के गहने से भरी हुई है। अभया की आँखें सिर से पैर तक देखने लगी। कौन कहेगा कि नन्दिका एक साल की भी बहू है ?

बोली, "यह सब क्यों मुँह पर लाती हो ? क्या ललिता के ऊपर ही मोहर लगी है ? क्या संसार में कोई दूसरी लडकी ही नही है ? लडका राजी हो जायगा तो कहीं भी शादी हो सकेगी।"

"सभी तो ऐसे ही दोष निकालेगे। कहेंगे कि सौत है।"

"हूँ, तो मुझे एक दूसरी की जरूरत नही। तुम एक बच्चे को गोद ले लो। जहाँ तुम्हारा मन चाहता है।"

नन्दिका अब मुस्कराने लगी।

गाँव मे से औरतें आ रही है। बातो की फुसफुसाहट सुनाई देती है। कनी की भी। वे क्यों आ रही है, नन्दिका को मालूम है। आठ साल की पुरानी बहू को वे आज नये रूप में देखेगी। बाद मे कहने लगेंगी, देखो तो कितनी बेशर्म है। घर मे दूसरी औरत एक भी नही। उसे रोज-रोज कौन शृंगार कराता है ? क्या अपने आप ? स्वामी तो कटक में रहते है। तो यह सब शृंगार किसके लिए ?

इसका जवाब उसके मन में न था। अपने लिए अब नई आ रही है। सब कुछ वही पहनेगी। वही लगायगी। समय समाप्त हो रहा है। ललिता आयगी। उसके सामने नई बहू होकर खड़ी नहीं होगी। वह, नन्दिका— बूढ़ी बनेगी। ललिता,—वही नई बहू बनेगी। वह खुद तो इस घर मे पहले से ही आई है। पहले ही वह सब भोग करेगी। गाँव की औरतों को हँसने दो। खिल्ली उड़ाने भी दो। यदि ललिता न आई तो और किसी के लिए रास्ता साफ करना पड़ेगा। अब समय समाप्त हो रहा है।

आँसुओं की धारा प्रबल वेग से बह निकली। गाँव की औरतें आँगन में आगई। उनके जाने के बाद आज वह तीन चिट्ठियाँ लिखेगी।

पहले सुनन्द को 'तुम आओ ।'

"बहू, तुम रो रही हो ?"

"नहीं तो ।"

आँखों से आँसू पोंछकर वह उठ खडी हुई । अभया चकित होकर देखती रही ।

बड़ी भाभी ने कलाहुण्डी से पत्र लिखा है, नन्दिका के बड़े भाई वहीं पुलिस इन्स्पैक्टर है । भाभी को गर्भ से पाँच सन्तान हुई थी । तीन लौट गई । सबसे बड़ी है लड़की, छ साल की । अब तक ठीक तरह से बातचीत भी नही कर पाती । मझला तीन साल का लड़का, उसके पहले और बाद की सताने मर चुकी है । यम उसे जूठा करके छोड़ गये है । उसकी किस लड़के मे गणना हो सकती है । सबसे छोटा जन्म के बाद ही चला गया । भाई उदास हो गये है । भाभी हमेशा रोती है । छोटे से पत्र मे भी आँसुओ के दाग है ।

पढ़ते-पढते नन्दिका की आँखों मे आँसू आ गये । "यह तुम क्या करने जा रही हो, नन्दी ? अपने हाथ से ही क्या जहर तैयार कर उसे पीने जा रही हो ? कौन लड़का किसका है ? मेरा कहना मानो । खुद रस्सी बनाकर उसे अपने गले मे न डालो ।"

नन्दिका की छाती धड़क उठी । अगर यह पत्र किसी की नजर मे आजायेगा तो ! उनके सामने आजायेगा तो ! नन्दिका ने पत्र के टुकड़े टुकड़े कर दिये । लम्बी साँस लेकर आँखे पोछने लगी । दरवाजा बंद करके वह चिट्ठी पढ़ रही है । दोपहर की रोशनी खिडकी के उस तरफ उपहास कर रही है, चैत्र की सनसनाती हुई हवा हँस रही है ।

फिर छोटी भाभी के पत्र के ऊपर नजर डाली—तुम जैसी बुद्धिमती

लड़की की बुद्धि को किसने अंगार बना दिया ? मर्दों पर क्या विश्वास ? उनके मन में क्या है, इसे तुम कैसे जान सकोगी ? अगर दूसरे के हाथ पतवार दे बैठोगी तो तुम्हें उसी की मर्जी पर रहना पड़ेगा। सिर्फ पानी की ओर देखती रहोगी। मेरी अवस्था को देखो। चार-चार बच्चे साथ लेकर फुलवाणी जैसे थाने पर कैसा हैरान होती हूँ। तुम्हारे भाई आबकारी के हाकिम है। जहाँ थे वही अब भी है। हमेशा शराब पीकर मस्त रहते है। घर में आयेंगे तो बच्चों से लेकर मुझ तक को मार सहनी पड़ती है। मेरी मौत क्यों नही होती। चार लड़को मे से तुम जिसको चाहो ले सकती हो। तुम्हारा बडा धरम होगा। लेकिन जान-बूझकर क्यो काले सर्प को अपने गले में डालने जाओगी ?

आखिर भाई यही बने ? वहाँ जाकर बंद कराने की इच्छा होती है। लेकिन लाचार। भाभी की सलाह वह कभी कबूल नही कर सकती। उनका अनुरोध रख नही सकती। हिम्मत नही है।

फिर एक बार लम्बी साँस ली और पत्र फाड़ दिया।

बड़ी ननद शोभा की चिट्ठी—आखिर वह राजी हुई, नन्दिका। भाभी पहले बहुत दिखाती थी कि ननद ललिता को वह बहुत प्यार करती है। लेकिन यह चतुराई किसके पास ? गाँव के सब आदमी उसको अच्छी तरह पहचानते है, घर टूटा हुआ पड़ा है, जमीन सिर्फ दो ही एकड़ है। आधे पर उठाई जाती है। स्वामी ने तेल, नमक, चावल, दाल की एक छोटी-सी दुकान की है। उससे इतना लाभ तो होता नहीं कि सारे परिवार का पालन-पोषण हो सके। बीच-बीच में यहाँ-वहाँ कागज लिखने मे ही संसार गुजरता है।

लेकिन जो हो, बिम्बाधर बहुत अच्छा आदमी है। हर समय मुँह पर हँसी खिलती है। ललिता की उमर हो गई। गरीब लड़की है। किसी अच्छे घर में देने के लिए तो दहेज चाहिए। नहीं तो लोगों का हँसना ही सफल होगा। बिम्बाधर इस बात को समझता है। भाई तो

बूढ़े नही हो गये हैं, फिर, खुद भाभी ने पत्र लिख भेजा है। राजी न होने की गुजाइश ही कहाँ ?

उनकी गृहिणी मागुणा राजी नही हुई। ललिता उनके हाथ की कठपुतली है। दस साल से लेकर दस महीने तक के भी पाँच बच्चे हैं। गौशाला साफ करना, बर्तन माँजना, धान कूटना और चूल्हा जलाना—ललिता हर काम करती है। फिर भी भाभी का गुस्सा सहना पड़ता है। ललिता जैसी लड़की आजकल के जमाने में बिलकुल नही मिलेगी।

शादी में एक पैसा खर्च नही होगा, किसी को कुछ मालूम भी नही होगा, जो जरूरत पड़ेगी, सब हमारी तरफ से दिया जायगा, यह बात सुनते ही मागुणा का मन शान्त हो गया और वह बोली—'तुम लोग जैसा अच्छा समझो वैसा ही करो। बेचारी के माँ-बाप नही हैं, वह सुख और आनन्द से रह सकेगी तो वही सबसे अच्छा है।'

भाभी, ललिता को देखने से तुम भी खुश हो जाओगी। आठ साल के पहले तुमने देखा था, लेकिन तब से अब बिलकुल बदल गई है, बहुत सुन्दर दीखती है। तुम्हारे पास ठीक तुम्हारी छोटी बहन-सी मालूम होगी। विनय से भरी है। तुम्हारे लिए बोझ कभी नही बनेगी। लेकिन भाभी और एक बात भी तुमसे कहनी है।

शोभा देवी के पत्र की आखिरी लकीरो पर नन्दिका की आँखें स्थिर हो गई। वह बार-बार पढ़ने लगी—तुम एक नई बात कर रही हो। जो हो, वह तुम्हारी सौत बनेगी। तुमको तो इस संसार मे क्या मालूम है। उसे सौत के समान ही पास लेना पड़ेगा। तलवार की धार पर चल सकोगी क्या ? अपने घर का सोना अगर कभी पीतल बन गया तो अपने कर्मों को ही कोसना पड़ेगा। तुम्हारी आतुरता देखकर मैंने सम्बन्ध करा दिया। अब सब पक्का हो गया। फिर भी सोच-समझकर आगे बढ़ना है। बाद मे कही पछताना न पड़े।

नन्दिका के मन के भीतर वह एक ही वाक्य भनभनाता रहा—'घर का सोना अगर कभी पीतल बन गया तो ?'

सोच नही पाई। सिर दर्द करने लगा। क्या यह भी सम्भव है ? वह किसे पूछेगी, भली सलाह देने वाला कौन है ?

पलंग के ऊपर लेटकर नन्दिका छटपटाने लगी। उसकी नीद गायब हो गई। शोभा देवी की इस बात का जवाब नही मिलता।

साँकल खटखटाती हुई सास पुकारने लगी, "बहू, बहू—"

नन्दिका झट से उठ पड़ी। दरवाजा खोला। आज एक नई बात हुई है। कभी तो सास ऐसे नही पुकारती। वह क्या चाहती है ? खुद क्यों दौडी हुई आई है ?

घर मे प्रवेश करने के पहले बाहर खडी होकर अभया ने पूछा, "कहाँ-कहाँ से पत्र आये है ?"

"शोभा दीदी का—"

आग्रह मे अभया का मुँह उज्ज्वल हो गया, वह घर के अन्दर चली आई। पलग के ऊपर बैठकर बोली, "पढो तो क्या-क्या लिखा है ? सब अच्छे हैं न ?"

"हाँ।"

हाथ में लेकर नन्दिका पत्र पढ़ने लगी। आखिरी लकीरों को पढ़कर सुनाने का उसके मन मे साहस नही हुआ। बुढ़िया के मन मे उससे दुख बढ जायगा। हँसती हुई आँखो पर सन्देह के काले बादल घिर आयेंगे। ओले बरसेंगे। तूफान टूट पड़ेगा। बिजली चमकेगी। वज्र के गर्जन से धरती काँप उठेगी। सब उत्पात और गर्जन केवल

उस एक को ही सहना पड़ेगा—नन्दिका को। उसके दुख और नैराश्य मे हिस्सा लेने के लिए दूसरा कोई भी नही है।

थोडी देर के बाद अभया ने कहा, "ललिता तो बहुत अच्छी लडकी है। बचपन मे यहाँ आई थी। मुझे छोडकर कही भी नही जाती थी। जैसे इस घर के लिए ही उसका जन्म हुआ था। आठ या नौ साल की लड़की, वह भी मेरे पैर दबाने आती थी।"

"अच्छी लडकी है—"

"हाँ माँ, हमे वैसी ही एक लडकी चाहिए। बात मानेगी। हर काम के लिए कमर कसकर निकल पडेगी। दो-चार बात कहने पर भी सह जायगी। तुम्हारे मन को तो अच्छा लगा है। सुनन्द—?"

नन्दिका के विद्रोही दुख ने सिर ऊँचा किया। धीरज के खम्भे हिलने लगे—मानो रस्सी तोडकर वह अपने नोकदार सीगो से चीर-फाड़ने के लिए दौडा आ रहा है। अरे, यही दुनिया की रीत है! आठ साल की सेवा, भक्ति, अच्छापन और सहिष्णुता का क्या यही परिणाम है? भाग्य पीछे हट गया, क्या इसीलिए ये लोग भी बदला लेने आयँगे? एक पल भर मे ही सास उसे अथाह समुद्र में फेक देना चाहती है। लड़के के सामने अपने मन की बात कहने की हिम्मत नही है। दूसरी एक लड़की का सर्वनाश करने के लिए अब उसी को ही हथियार बनाना चाहती है।

अब असहिष्णुता की रस्सी को ढीला करना पडेगा। वह कह देगी—'यह सम्बन्ध कभी नही हो सकेगा। कोई भी सम्बन्ध नही हो सकता। तुम्हारे सुनन्द ने एक बार शादी की है। एक पत्नी जीवन में रहते हुए वह दूसरी शादी कभी नही कर सकता। जानबूझकर नन्दिका आत्महत्या नही करेगी, वरना तुम'—

सास के प्रश्न भरे मुँह पर आग्रह। वह नन्दिका का मरण ही चाहती है। अपनी आशा देवी के पास वह नन्दिका को बलि देना

चाहती है। तो वैसा ही होने दो। छाती के भीतर का दुख नाच-नाच कर थक गया है। रस्सी तोड़ नही सका। थककर सिर झुका दिया है। नीचे गिर पडा है। अब घातक का काम शुरू होगा। केवल आँखों के आँसुओं पर ही भरोसा है।

"बहू, तुम रो रही हो ?"

"नही तो—"

आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी, आँचल से पोंछने से भी वह नहीं रुकी। उसे महसूस हुआ है—अनजाने मे अपने मन की बात उसने प्रकट कर दी है। दुनियाँ को कह दिया है— जो उसने कहा है, जो कुछ किया है, वह सब केवल अपनी अच्छाई के लिए प्रतारणा-मात्र है। वह कुछ नही चाहती है, किसी को भी नही चाहती है। केवल एक को चाहती है—सुनन्द को। उसकी धन-दौलत सिर्फ उसी एक का स्नेह है। क्या उसके लिए नन्दिका को प्रतारणा करनी पड़ेगी ?

समझ गई—

नन्दिका चौंक उठी। फौरन बोली, "माँ, मुझ पर से तुम्हारा विश्वास हट गया, यही मेरा दुख है। तुम्हारे सुनन्द राजी नही होंगे, मेरी यह धारणा रहती तो मै किस मुँह से शोभा दीदी के पास पत्र भेजकर खुद ही ललिता के बारे मे सम्बन्ध ठीक करती ?"

नन्दिका की आँखो से फिर आँसू बहने लगे।

अभया बोली—"तो मैने भूल की थी।"

सिर झुकाकर नन्दिका ने सास का पैर पकड़ा। काँपते हुए कण्ठ से कहा, "मै कभी तुम्हारी बातों से बाहर नही गई, जाना भी नहीं चाहती हूँ। कोई अच्छा-सा दिन और तिथि तय कर देने पर मैं शादी का इन्तजाम करने लगूँगी।"

अभया ने उत्तर नही दिया, धीरे-धीरे पलंग से उतरकर अपने कमरे में चली गई। उसने पीछे मुड़कर भी नही देखा।

चकित होकर नन्दिका देखती रही। मन ने कहा, 'उनको विश्वास नही हुआ है, वह परीक्षा लेना चाहती हैं। नीरव शब्दों से जैसे वह प्राणदण्ड का सा आदेश देकर चली गई।' सिर झुकाकर नन्दिका को उसी आदेश का पालन करना पड़ेगा।

फांसी के तख्ते की जरूरत नही, घातक या उसके हथियार की भी जरूरत नही। वह खुद ही अपने लिए घातक बनेगी। खुद ही अपने लिए कृपाण बनेगी। हँस-हँसकर वह अपने आप श्मशान को चली जायगी। कोई भी उसका रास्ता न रोक सकेगा। पीछे से कोई चिल्लाने लगेगा तो वह कान बन्द कर लेगी। आँखों के आँसुओं का अन्त हो जायगा।

नन्दिका हँसने लगी। शोभा की चिट्ठी को भी उसने टुकड़े-टुकड़े करके बाहर फेक दिया। लेकिन उस चिट्ठी में फिर भी एक 'किन्तु' है, कोई भी किन्तु उसे रोक नही सकता। वह उन्मत्त-सी हो गई है। कमरे में इधर से उधर चक्कर लगाकर वह केवल हँस रही है।

कनी नजदीक आई। पलभर के लिए देखने लगी। 'क्या भाभी पगली हो गई? अभी तो शाम होने मे बहुत समय बाकी है। लेकिन अभी से कमरे में घुसकर इधर से उधर घूमकर वह क्यो हँस रही है? जिसके बदन मे भूल से भी कपड़ा नही हटता था आज उसका वेश अधनंगा-सा कैसे हो गया है? उस तरफ के कमरे में बैठकर बूढी केवल रो ही रही है। नजदीक जाने से चिढ़ उठती है। कुछ भी तो नहीं हुआ। तो आज घर में इतना परिवर्तन क्यों?'

"भाभी—"

"क्या ?"

"भाई आज आयेंगे, राजीव ने यह खबर भेजी है।"

"राजीव ने पहले तो कभी ऐसी खबर पहले से नहीं भेजी ?"

"राजीव भी आज आने वाले थे। लेकिन भाई खुद आ रहे है, इसलिए वे आ नहीं सकेंगे।"

"सचमुच ?"

नन्दिका हठात् गम्भीर हो गई। अपनी वेश-भूपा की तरफ देखकर जैसे वह धिक्कारने लगी, छि, कितनी गदी थी वह। मिन्नत के साथ कहा, "कनी, क्या आज मेरे बाल नही सँवारोगी ?"

कनी डर गई, नजदीक आई और नन्दिका के हाथ पकडकर बोली, "तुम्हे आज यह क्या हो गया है, भाभी ! तुम ऐसी क्यो लग रही हो ? उस तरफ भी अभया दीदी क्यो रो रही है ? मुझे नहीं बताओगी ?"

"सिर्फ आज एक दिन के लिए उनको रोना है, कनी, कल से फिर हँसने लगेगी। कल तू खुद ही देख लेगी। तुम्हारे भाई आज आने वाले है न। चलो मेरे बाल सँवारो। मुझे गंदा देखकर वे रूठ जायँगे।"

कनी समझ गई, 'नन्दिका हँस-हँसकर रो रही है। कौन जाने किस दुख के मारे अपने पर से विश्वास खोकर वह बेशर्म बन गई है।'

"**जिस** घर मे बच्चे नही हैं वह घर, घर नही है। वह घर उजाड़ से भी अधिक है, दूसरे किसी आदमी के खून मे पैदा हुए बच्चे को अपना कहकर गोद लेने से बाहर के भीत और लोभी मन को तसल्ली मिल जाती है, लेकिन आत्मा के भीतर से 'नहीं-नहीं' की आवाज आती है। तुमने स्वप्न देखा है। तुम्हारा स्वप्न जरूर सत्य

होगा। मेरी मनोकामना सफल हो जायगी। तुमने मुझे वचन दिया है, उसी के भरोसे मै सब कुछ तय कर चुकी हूँ। तुम्हारे मुँह से इन्कार का शब्द सुनने के लिए मुझमे और धैर्य नही।"

सुनन्द नन्दिका की ओर केवल देखता ही रहा। आधी रात हो गई थी। शिवरात्रि की अमावस्या मे अभी तीन रोज बाकी है। बाहर अधकार। कमरे के भीतर दिया जल रहा है। लेकिन उस दिये की रोशनी नन्दिका की रूप-शिखा के सामने जैसे निष्प्रभ हो जाती है। नन्दिका एक स्टूल पर बैठी है। पलंग के ऊपर से पैर नीचे करके सुनन्द बैठा है। वह बेवकूफ-सा देख रहा है।

सचमुच क्या उमर बीत गई ? सन्तान होने की क्या कोई भी आशा नही ? नन्दिका का अब छब्बीसवाँ साल है। और उसको पैतीस। लेकिन अब भी नन्दिका केवल सोलह साल की सी मालूम होती है। हाँ, श्रीमती भोई ने उसे हमेशा के लिए हताश कर दिया है। स्वप्न की जितनी अवतारणा करने से भी वह विश्वास नहीं करेगी।

नन्दिका उठ आई। पलग पर बैठकर उसने लाड के साथ कहा, "मैं ललिता को चाहती हूँ। कल की ही छोटी-सी लडकी है। मेरे पास भी कुछ रोज रह चुकी है। रूप मे सुन्दर है और गुण मे भी। मेरी मन पसद है। वही मुझे एक बच्चा ला देगी। तुम्हारे खून से पुतला बनाकर वह मेरी गोद मे दे जायगी। ललिता को मै यहाँ लाऊँगी।"

"क्या दुनिया के सामने मेरी खिल्ली उडाने की इच्छा है ?"

"क्यो ? कौन कहेगा कि तुम्हारी उमर हो गई है ? अभी कितनी उमर हुई है ? हम औरतें आँखो की एक पलक से ही बूढी हो जाती हैं। लेकिन—"

"बस, बस, रहने दो। तुम्हारी इच्छा होती है तो तुम्ही जाओ, शादी कर लो।"

हँस-हँसकर नन्दिका लोट-पोट हो गई। दोनों हाथों से सुनन्द का

गला घेरकर उसने उसका मुँह चूमा। बोली, "क्या तुमने समझा है कि कोई दूसरा शादी करने वाला है? ऐसा होता तो मैं ललिता को क्यों तय कर लेती? सचमुच मैं उसी से शादी करूँगी। तुम सिर्फ मेरे लिए वर बनकर जाओगे और ललिता को मेरे पास ले आओगे। बहुत दफा तुमने कहा है कि मेरे पास तुम्हारा अदेय कुछ भी नहीं है। तुमसे मैं आसमान का चाँद नहीं माँग रही हूँ। अपने लिए एक साथी माँग रही हूँ। मेरी एक छोटी बहन—वही ललिता। नही दोगे?"

निबिड़ आलिगन। चुम्बन। प्रत्युत्तर।

"एक नई बात करने जा रही हो तो खुद वर की वेशभूषा पहनकर ललिता को लाने के लिए क्यो नही चली जाती?"

"बस, वही होगा। तुम मुझे सजा दोगे और तुम साड़ी पहनकर नौकरानी बनकर मेरे साथ चलोगे। मै तुमको सजा दूँगी। यही तय हुआ न? ठहरो, मै साडी ले आती हूँ।"

नन्दिका पलग के ऊपर से एकदम उठ गई। पहनी हुई साड़ी का आँचल सुनन्द के हाथ मे रह गया। सुनन्द बोला, "बस, इसी से ही काम चल जायगा।"

"छि." हँस-हँसकर नन्दिका लौट आई। और कहने लगी, "छोड़ दो—"

"मेरे पास बैठो।"

नन्दिका बैठी। सुनन्द ने कहा, "क्यों लोगों के सामने मेरी खिल्ली उड़ाने जा रही हो, कहो तो!"

"तुम मुझे प्यार करते हो, इसलिए लोग हँसेंगे तो हँसने दो। लोग कभी हँसेगे, क्या इसके भय से हम पहले से ही रोना शुरू कर दें? हमें जो सुन्दर मालूम होगा वही करेगे।"

"क्या घर में अशान्ति फैलाओगी? ताली बजाकर हुल्लड़ मचाने के लिए क्या लोगों को मौका दोगी?"

"इससे घर में अशान्ति नहीं फैलेगी। लोग ताली भी नहीं बजायेंगे।"

नन्दिका की मुख-मुद्रा, चमकती हँसती हुई आँखों की पुतलियों की चंचलता, सुपुष्ट ब्लाउज पहने हुए अंग का आलोडन, अपनी वसन-विहीन देह पर नन्दिका के कोमल उष्ण कर के स्पर्श ने सुनन्द के लोभी आग्रह को उत्तेजित कर दिया। उसने कहा—

"लोगो के मुँह में कौन हाथ देने वाला है ?"

"मैं, सबको मालूम हो जायगा कि ललिता को मैं अपने लिए ही लाई हूँ। उसमे तुम लाचार हो। तुम सिर्फ—"

"यह मुझसे नहीं होगा।"

"तो मुझसे ही होगा। देखो, वर के भेष में मैं कैसी दीखने लगूंगा। मेरे हाथ छोड़ो।"

पलंग से उतर कर नन्दिका बीच के कमरे मे चली गई। सुनन्द देखता रहा। सोचता रहा—'कोई कुछ कहेगा या सोचेगा, इसलिए वह अपनी प्रियतमा पत्नी की इच्छा को क्यो ठुकराए ? वह एक साथी चाहती है। एक सन्तान चाहती है। जो आयगी वह नन्दिका की सेविका ही बनेगी। स्नेह, आदर, आदेश और खेल की सामग्री बनेगी। एक पालतू बिल्ली का बच्चा। उसमें क्या नुकसान है ?'

ललिता ! हाँ, एक बच्चे की स्मृति अस्पष्ट-सी दीख रही है। कमजोर, सोने के वर्ण की एक नौ साल की लड़की है। उसकी चर्चा भी हुई थी। कम बोलती है। बहिन की ननद मानकर दिल्लगी करने से मुस्कराकर दूर भाग जाती है। नन्दिका पास बैठी रहती। सुनन्द घर के भीतर आ जाता है तो उठकर भागना चाहती है। रास्ता रोककर सुनन्द कहता है, 'अरे कहाँ भागती हो ? ठहरो—'

'अरे—'

उसका हाथ पकड़कर नन्दिका पास ले आती है। धीरे-धीरे कहती है, 'बैठो मेरे पास, जाओ मत।'

'मुझे नींद आ रही है।'

उठकर भागती है।

उस छोटी-सी लड़की की याद आ रही है। वही ? छिः, नन्दिका उसको ही चाहती है। नन्दिका उसे पहचानती है, प्यार करती है। ललिता उसकी सेवा करेगी, कभी थकेगी नही। वह नन्दिका की इच्छा पूरी करेगी। सुनन्द को क्यो कष्ट होगा ? उसमे उसे क्यों एतराज है ? वह नन्दिका की मनोकामना पूरी करेगा।

सामने नन्दिका खड़ी है—वर के वेश मे नही, मर्द के वेश मे। उसी का कपड़ा पहना है। कपड़े का कुच पैरो तक पहुँच गया है। देह पर पूरी बाँह वाली कमीज। लम्बाई अधिक हो गई है। छाती की जेब से रूमाल और फाउन्टेन पैन झाँक रहे है। सोने के बटन झलक उठते है।

तन्मय होकर वह नई पोशाक में उसी पुराने मनुष्य को देखने लगा। आँखो मे काजल, माथे पर चन्दन की सज्जा के बीच मे सिन्दूर की बिन्दी। काले बालों के बीच मे सिन्दूर की एक लकीर। जूड़े मे बकुल के फूल। कान मे सोने की बालियाँ झूल रही है।

"अरे, इस तरह क्या देख रहे हो ?"

"मैं देख रहा हूँ।"

"कैसा लग रहा है ?"

"ऊँ हूँ, ठीक नहीं। मेरे पास आओ, मैं सजाए देता हूँ। आओ—"

नन्दिका और नजदीक हो गई।

उसके हाथ पकड़कर सुनन्द उसे और भी नजदीक खींच लाया। जेब से रूमाल निकालकर नन्दिका के माथे का सिन्दूर मिटा देने के

लिए उसने हाथ बढ़ाया। उसका मतलब समझकर नन्दिका ने झट से उसका हाथ पकड़ लिया और काँपते हुए कण्ठ से कहा, "तुम यह क्या करने जा रहे हो ? क्या इतनी हिम्मत बढ़ गई है ?"

किसी अनजाने भय से उसकी अन्तरात्मा काँप उठी। हँसता हुआ मुँह मलिन हो गया। आँखों में आँसू उमड़ आये। दिल्लगी करने का परिणाम उसे मिल गया। जिसके लिए माथे पर उसने बालारुण का प्रतीक लगाया है, वहीं आज खुद अमा अन्धकार फैला देने के लिए हाथ बढा रहे है। अब अभिनय रहने दो। वह और नहीं सह सकेगी, प्रज्ज्वलित तपन की गरिमा माथे पर लेकर वह सदा के लिए आँखें मूँद लेगी। सास की मनोकामना पूरी करने के लिए वह और अभिनय नहीं करेगी।

सुनन्द बोला, "इतना रह जायगा तो सब पकड लेगे।"

"चुप रहो। ज्यादा मत बोलो।"

नन्दिका दूर हट गई और फूट-फूटकर रो पडी। छाती के बटन खोलते-खोलते काँपते हुए कण्ठ से वह बोली, "वर का वेश पहनने की कोई भी जरूरत नहीं। गोद में बच्चा लेकर झुलाने का मेरा इतना-सा भी आग्रह नही है। मुझे ललिता की जरूरत नहीं है। उसे नहीं आना चाहिए। मेरे माथे का सिन्दूर—मेरे माथे का सिन्दूर !"

जैसे वह पागल हो गई, बदन पर से कमीज खोल रही है। मुँह से निकल रहा है—"मेरे माथे का सिन्दूर—ललिता की मुझे क्या जरूरत ?"

विचलित होकर सुनन्द उठ आया। नन्दिका का हाथ पकड़ कर कोमल कण्ठ से उसने कहा, "मेरी कसम, रोओ मत। मैंने भूल की है।"

"इतनी बड़ी भूल ! इतनी हिम्मत !"

"मेरा कसूर है। अब रुकावट नहीं बनूँगा।"

"एँ—"

सहसा नन्दिका के हाथ रुक गये। उसने अधखुली कमीज के भीतर मुँह छिपा लिया। कानों को सुनी हुई बातों पर विश्वास नहीं होता। क्या उसपर से किसी ने आवाज दी ?

"मैं रुकावट नहीं बनूँगा नन्दिका, तुम्हारे लिए मैं जरूर वर का वेश पहनकर जाऊँगा।"

चकित होकर एक क्षरण के लिए रुक गई। कमीज नीची करके उसने मुँह को बाहर निकाला। जैसे वह और किसी का मुँह है। उसकी समस्त देह काँप रही थी। सिर घूम रहा था। जैसे गिर पड़ेगी। सामने जीवन के सर्वस्व खड़े हैं। सूखा मुँह। अत्यन्त दुख के साथ कहते है, "तुम्हारी बात ही होगी। आओ। रोओ मत। मेरी कसम।"

नन्दिका अपने-आपको सँभाल नही सकी। आँसू से भरी आँखों से सुनन्द की ओर देखने लगी। मालूम हुआ जैसे हट-हटकर वे दूर चले जारहे है। हाथ पहुँच नहीं सकता। मुँह अस्पष्ट-सा दीखता है। सचमुच क्या वे दूर हट जायँगे ?

नहीं, झूठ बात है।

उसके जीवन, उसकी आशा, भरोसा और सम्बल को वह दोनों बाहुओं के बन्धन में बाँध रखेगी, छोड़ेगी नही। ·रोशनी जैसे हँस रही है। वह भी बुझ जायगी।

रोशनी बुझ गई है। सुनन्द की छाती पर नन्दिका झुक आई है। कन्धे पर उसका मुँह। उसके गर्म आँसुओं ने सुनन्द की खुली पीठ पर दो गर्म लकीरें खीच दी है।

पलंग पर। पीठ सहलाकर सुनन्द बोला, "रोओ मत नन्दिका, तुम्हारे मन को दुख देना मैं नहीं चाहता। तुम्हारी ललिता तुम्हारे पास आयगी। मैं खुद उसे लाकर तुम्हारे पास छोड़ जाऊँगा। मेरी कसम, रोओ मत।"

जैसे वह अपनी छोटी-सी लड़की को बहला रहा हो। सिर को

थपथपा रहा है। सो जाओ नन्दिका, मैं खिलौना ला दूंगा। मन चाहे खेलती रहोगी। सोने से तैयार किया हुआ एक सुन्दर साँप का बच्चा, दूध पिलाकर यत्न के साथ उसे पालोगी। गले की माला बनाओगी। लेकिन सावधान, उसे चिढ़ाना मत। उस पर चोट न मारना। फिर वह अपना रूप ले लेगा। डंक मारेगा। सावधान !

वह अब रोयेगी ही नही, मन से न हो, बातों पर विश्वास करके स्वामी राजी हो गये है। सरल मन से वे राजी हो गये है। उनका क्या चारा है। दैव की रस्सी जो खींच रही है, फिर दुख किस लिए, रोना किस लिए। जिनका मन शिशु के समान कोमल और निष्कपट है, नन्दिका की प्रत्येक कथा पर विश्वास करना जिनकी प्रकृति है, उनके मन में वह क्यों दुख देगी ?

बालों को अँगुली से सहलाकर नन्दिका ने कहा, "रोऊँगी नहीं।"

"लेकिन एक शर्त पर।"

वह शर्त क्या है, उसके बारे में नन्दिका ने पूछा भी नहीं और सुनन्द ने जवाब भी नहीं दिया है।

सुनन्द नन्दिका को लाड़ करने लगा। जैसे उसे मन की बातें मालूम होगई हों।

अभया केवल सोचने लगी। घर में शोरगुल। लोग आते हैं, जाते है। लेन-देन चल रहा है। बराद दिया जा रहा है, सामान इकट्ठा किया जारहा है। लड़के की शादी। किसका लड़का ? अभया का ? या नन्दिका का ? नन्दिका के जैसे पाँच लड़के है। और सुनन्द सबसे छोटा, यही उसका आखिरी उत्सव है।

वह सब कुछ करती है और कराती है। घर के आसपास साफ-

सुथरा रखने से शुरू करके गहने बनाने तक। 'पुरोहित, नायक, नाइयों का तत्व लेना। शंख-शहनाई, बाजा-ढोल, फूल-रोशनी और आतिश-बाजी—नन्दिका सबके लिए बराद कर रही है, पहले जिसकी छाया तक बाहर नही पड़ती थी, वह आज गृहिणी बन गई है। वातचक्र के समान घूमती रहती है। सुस्त होकर कही खड़ा होना और जितना बोलना चाहिए उससे अधिक बोलना, वह भूल गई है। आधी रात तक काम।

मन में बिलकुल दुख नही है। कटक से लौटने के बाद उसके मुँह पर जो थकान थी वह दूर हो गई है।

अभया को याद है—हँसते हुए मुँह से कितने आग्रह के साथ वह बोली "माँ, वह राजी हो गये। एक दिन तय करने के लिए मैं दीदी को लिख चुकी हूँ। ललिता मेरी छोटी बहन बनकर आयेगी।"

नन्दिका की हँसी ने उस रोज उनकी देह पर जैसे अग्नि की वर्षा की थी। उसकी बातों ने जैसे उनके कलेजे मे काँटे चुभा दिये थे। काँपते हुए मुँह से अपने आप अविश्वास का भाव निकल पड़ा—"क्या सुनन्द राजी हो गया?"

"मुझ पर अविश्वास मत करो माँ।"

अभया नीचे की तरफ देखने लगी। समझ गई, आठ साल के पहले वह जिसे बहू बनाकर इस घर में लाई थी, उसके सामने वह बहुत छोटी और नगण्य बन गई है, उसके मुँह की ओर देखकर बात करने की हिम्मत अब उसमे नही है। नन्दिका अपना कर्तव्य निबाहती है—पैर धोकर उसका पानी पीने के पहले वह कभी कुछ नही खाती है, दोपहर को पुराण पढ़कर सुनाती है, रात को पैर दबा देती है, फिर भी उसके मुँह की ओर देखकर बात करने की हिम्मत अभया में नहीं है।

वह एक ही बात कुरेद-कुरेद कर मन को घायल बना देती है—नन्दिया राजी हो गया है। वह भी दुनिया में से एक अजीब-सा बन

गया है। मेरे कुल की लक्ष्मी, गोद की सुवर्ण प्रतिमा को दूर हटा देने के लिए वह कैसे राजी हो गया। क्या दुनिया यही है ? कोई किसी का नही है।

यह शादी हरगिज नहीं होगी !

यह बात वह किससे कहेगी। उड़ते हुए कबूतर के समान यह नन्दिका—हर काम में मस्त हो जाती है, सिर के बाल सूखकर उड़ रहे है। बार-बार कपड़े गिर पडते है। पल भर के लिए भी समय नही है, फुरसत मिलती है तो पास दौड़ आती है—

"माॅ, दीदी ने पत्र भेजा है। दिन तय हो गया।"

"देखो माॅ, इन गहनो को देखो, ललिता के हाथ की अँगुलियों का नाप भेजने के लिए दीदी को पत्र लिखा था। बराद देकर कटक से खरीदवा लाई हूँ।"

"माॅ, आभा ने लिखा है कि वह आ न सकेगी।"

सचमुच, नन्दिया राजी हो गया ?

यकीन नही होता है। किसके लिए नन्दिका पागल बन गई ? ना—यह शादी नही होने वाली है। कहाँ मन खोलकर वह अपनी बात कह सकेगी ? अभया सिर्फ सोच रही है।

"क्यों तुम पागल बन गई हो, अपने लिए गड्ढा अपने आप खोद रही हो ? लोग इसे अच्छा नही मानते है दीदी। तुम दुनिया से बाहर का काम कर रही हो। लोग पूछ रहे है, यह शादी किसकी है ?"

"सुमित्रा, उनसे कह दो कि यह नन्दी दीदी की शादी है।"

"आँखों के आँसुओं से तुम्हारी खुशी डूब मरेगी।"

"अगर किसी दिन आँखो से आँसू बहने लगे तो अपने हाथ से ही मैं उनको पोंछूँगी, और किसी को बुलाने नहीं जाऊँगी।"

"भाभी !"

"बड़ी-बड़ी ग्राँखों से मेरी ग्रोर क्यों देख रही हो, कनी !"

"तुम्ही को देख रही हूँ। तुम कैसी हो गई। क्यों—"

"सचमुच ? क्या तुम्हारे भाई ग्राज कटक से ग्राने वाले है ? इतनी रात मे भी ? हाँ-हाँ, जैसे उस रोज ग्राये थे। कनी, क्या ग्राज मेरे बाल नहीं बाँध दोगी ? देखो तो, मै कितनी मैली दीख रही हूँ। क्या बेला के पेड़ में ग्रब फूल नही खिलते ? ग्ररे, ग्राँखो में ग्राज काजल भी नहीं है। पैरों से मेहदी मिट गई है। मेरा ऐसा रूप देखने से उनका मन खराब हो जायगा। कनी, मुझे सजा दो।"

"क्या तुम पगली हो गई हो ?"

"तुम उसी के लिए रो रही हो ? ग्राधी रात मे ग्राँखों से ग्राँसू बहा रही हो ? पैरो में मेहदी लगाने के लिए तुम कितना समय ले लोगी ? सुनो, साइ-कल की घण्टी सुनाई दे रही है। रात के सिर्फ दस बजे है। वे ग्रा रहे है—"

"मैं भाई को मना कर दूँगी।"

"खुद तो उन्होने सोने के गहने खरीदकर भेजे है। कितने सुन्दर गहने, नये डिजायन के।"

"सच ?"

"मैंने तो सिर्फ ललिता का नाप ही भेजा था।"

"तुम्हीं मना कर दो।"

"ग्रच्छा, बस-बस। चन्दन घिस रखा है ?"

"तुम्हीं मना कर दो।"

"रो-रोकर मरने की ग्रपेक्षा क्या हँसते-हँसते मरना बेहतर नही है, कनी ! उन लोगों ने जैसा किया होगा, मैं वैसा ही कर रही हूँ। वे मुझे पैरो से फेंक देते, मरने के पहले भी मर गई है समझकर ग्रपनी मर्जी के ग्रनुसार काम कर जाते। कौन रुकावट डालता ? वे मुझे दूर फेंक नहीं सकते।"

कनी का हाथ रुक गया। बात तो सच ही है।

"आने के लिए कितनी बार खबर भेजी गई, पत्र भी भेजा गया, अब तक तुम नही आये थे । एक बहुत बढ़िया चीज तुम्हारे लिए रखी है । बहुत कीमती ।"

मुग्ध दृष्टि से सुनन्द देखता रहा । सामने खड़ी होकर अप्सरा हँस रही है । बोला, "क्या चीज है, दिखाओ तो—"

"पहले कहो मुझे क्या दोगे ।"

"तुमको तो सभी कुछ दे चुका हूँ । और किसकी जरूरत है ?"

"ललिता का फोटो मिल गया ।"

"फोटो ?"

"शोभा ने भेजा है ।"

सुनन्द गम्भीर हो गया । नौ साल की एक कमजोर, सुन्दर और हँसती हुई एक लडकी सामने आकर खड़ी हो गई । नन्दिका क्यों उसकी खिल्ली उड़ाने जा रही है ? इस मजाक को यही बन्द होने दो । कर्म-क्षेत्र कटक मे भी बन्धुओं मे अफवाह फैल गई है । पता नही उनको खबर कैसे मिली, गुप्त से गुप्त बात भी जहर के समान इस दुनिया मे बहुत प्रखर गति से फैल जाती है ।

अतनु बाबू परिहास कर रहे थे, 'एक गॉव में रहेगी तो एक कटक मे । बार-बार गॉव को जाना नही पड़ेगा ।'

तुहिना ने श्लेष किया, 'मर्द लोग इतने निष्ठुर और बेवकूफ है ! नन्दिका देवी के समान जिनकी एक पत्नी है, वे भी एक दूसरी पत्नी के लिए उतावले हो रहे है । एक न एक रोज ऐसा अवश्य होगा, यह मुझे बहुत दिन से मालूम था, सुनन्द बाबू ।'

'आपने गलत समझा है ।'

'क्या नाराज होगये ? दीदी की बातों को मैंने गलत समझा था । नन्दिका देवी से मुलाकात होने के बाद, उनके साथ बातचीत होने के बाद मैंने समझा कि मेरे समझने में गलती हो गई थी । अब आप दूसरी शादी करेंगे या अनीति की राह पर चलेंगे ?'

काँपते हुए स्वर से सुनन्द ने कहा, 'मेरे बारे मे आपके ख्याल बिलकुल सहानुभूतिशील नही है।'

'मेरे मन मे जैसे खयाल थे, वैसा ही मैने आपसे कहा। आप इसका चाहे जैसा अर्थ लगाएँ।'

'नन्दिका मुझे विवश कर रही है।'

'विवश करने के लिए आपने ही उनको बाध्य किया होगा। यह बेहतर था कि आप अनीति की राह पर चलते—'

'नन्दिका के मन को दुख पहुँचाना मेरी इच्छा नही है।'

'शायद मैंने ही गलत समझा था, गुस्सा न कीजियेगा।'

नन्दिका को निश्चिन्त करने के लिए वह दौड़ आया है।

"देखो तो, यह ललिता का फोटो। अब तक मैने किसी को भी नही दिखाया है। मैने ही माँग लिया था, छिपाकर रखा हुआ था। देखो, क्या सुन्दर नही है? ललिता अब तो आठ-नौ साल की छोटी लड़की नही है।"

टेबल के ऊपर फोटो वैसे ही पड़ा रहा। नन्दिका का हाथ पकडकर सुनन्द उसी की ओर देखने लगा। उसका सुन्दर मुँह धुँधला-सा मालूम हुआ।

"तुम्हारी आँखो मे आँसू क्यो है?"

अपने आँचल से नन्दिका ने सुनन्द की आँखो से आँसू पोछ लिये, स्वामी की आँखों मे आँसू देखने की उसने कभी कल्पना भी न की थी। कभी देखा भी नही था। 'वे क्यों रो रहे है? क्या उसी के लिए? उसी के भविष्य की कल्पना से? अथवा—'

"क्या नही बताओगे तुम क्यो रो रहे हो?"

लम्बी साँस लेकर सुनन्द अपने हाथ से आँसू पोंछने लगा। बोला, "तुम्हारे पागलपन के लिए। तुम तीन आदमियों के जीवन को दुखमय करने जारही हो। किसके ऊपर तुम्हारा इतना अभिमान है, सुनूँ तो!"

मुस्कराती हुई नन्दिका ने कहा, "तुम्हारे ऊपर। क्यों तुमने मुझसे शादी की और तीन आदमियों का जीवन दुखमय बना दिया ?"

"तुमसे शादी करके क्या मैने अपराध किया है ?"

"अपराध किसी ने नही किया। जो होना था वह हो गया। क्या बाहर के लोगों की बात सुनकर मेरे साथ झगड़ा करोगे ? ऐसा नही हो सकता। मै सब ठीक कर चुकी हूँ। तुम निश्चिन्त रहो। इससे किसी का भी जीवन दुखमय नही बनेगा। सब सुखी होंगे। तुम ललिता से शादी करोगे। उसके लिए दिन तय हो चुका है।"

"मै अब किसी से शादी नही करूंगा।"

"और लोग मुझ पर हंसते रहेगे।"

"तुम्हारा उद्धार करने के लिए मै भी तो लोगो के उपहास का पात्र नही बनना चाहता।"

अब नन्दिका के रोने की बारी आई। आँसू से भरी आँखों से सुनन्द के नजदीक आकर बोलने लगी, "देखो, देखो, एक बार ललिता के फोटो की तरफ। मेरे पास आने के लिए वह पैर उठाकर खड़ी है। मैं उसको अपनी बनाना चाहती हूं। क्या उसे नही ला दोगे ? मेरे लिए आपको अगर उपहास या अपमान सहना पडा तो क्या उसके लिए पीछे हट जाओगे ?"

अब उसके भाग्य की आखिरी परीक्षा होगी, वे चुपचाप बैठे है। सोच रहे है। फोटो के ऊपर निगाह है। नथुने काँप रहे है। शायद गुस्सा हो जायँगे, शायद फोटो को लेकर दूर फेक देंगे। अथवा टुकड़े-टुकड़े कर देगे। हाथ काँप रहा है। होंठ काँप रहे है।

अब वे गरज उठेंगे। अवश्य कहेंगे, 'यह कैसी विडम्बना है ? क्या मुझे अपना खिलौना समझा है ? अघटना की घटना बनाने जा रही हो ? लोगों को अपनी खिल्ली उड़ाने दो। सब अपमान तुम्हारे ऊपर भले ही आजायें। शर्म से मुँह छिपाकर घर के कोने में भले ही बैठी रहो। तथापि—'

एँ, क्यों वे कुछ भी उत्तर नही देते ? हार जायँगे ।

मुँह उठाकर क्यों वह नन्दिका की ओर देखते रहे ? लम्बी साँस ली । होठ चाटने लगी ।

अब वे दिल की बात कहेंगे—'इस परीक्षा का अवसान होगा। जिसके लिए मेरी आँखों से आँसू बहे, उसी नन्दिका के अलावा मुझमें किसी के लिए स्थान नही है, ललिता की मुझे जरूरत नही । मुझे किसी की जरूरत नही । केवल नन्दिका को मन मे बिठाकर गोद में लेकर मैं निःसन्तान ही रहना चाहता हूँ ।'

दोनों पैर पकड़कर वह मिट्टी मे लोट जायगी । फूट-फूटकर रो पड़ेगी । मन का दरवाजा खोल देगी, सच बात कह देगी ।

'मैं ललिता को नहीं चाहती। मेरे भीतर पुत्र की कामना नही है । मै निमित्त मात्र हूँ । तुम ही मेरे एक मात्र काम्य हो, तुम, केवल तुम—'

फूट-फूटकर वह रो पड़ी ।

"तुम इतनी व्याकुल क्यो हो ? अच्छा तुम्हारी इच्छा को ही पूर्ण करूँगा । तुम्हारे लिए मै सब उपहास, अपमान और व्यग सह लूँगा । तुम्हारी ललिता को लाकर तुम्हारे पास ही दे जाऊँगा । अब हुआ तो ? अब हँसना चाहिए नन्दिका । ललिता तुम्हारी मन पसन्द है तो मेरे लिए फोटो देखने की जरूरत ही नही । अब हँसो नन्दिका ।"

अपने भाग्य पर अभिमान करके नन्दिका हँसी । हँस-हँसकर पलंग पर लोट गई । सुनन्द देखने लगा । उसको मालूम हुआ, जैसे नन्दिका के शरीर में ललिता का अवतरण होगया है ।

मानो नन्दिका के अपने लड़के की शादी । उड़ते हुए कबूतर के समान कार्य-तत्परता, हँसता हुआ मुँह और सरस बातें सुनकर उससे

कुछ भी बोलने या पूछने की किसी की भी हिम्मत नही हुई। देखने और सुनने की बात तो छोड़ दो, सपनों में न देखी हुई बातें भी सामने घटित हो जाती है। स्वामी की शादी के लिए स्त्री पगली-सी होगई है।

अपने हाथ से सुनन्द को सजाकर उसे वर बना दिया है। लोगों के उपहास को हँसकर टाल दिया है। दूसरी औरतो के साथ जाकर पालकी से ललिता को घर लाई है। अजलि में चावल भर लिये है। शोभा को दूर हटाकर गाँव के सभी लोगों को ललिता का मुँह दिखा चुकी है।

लोगो ने ललिता को देखने के बाद दोनों के चेहरो की आपस मे तुलना की है। मन से गूँज उठा है—रानी कहाँ, और यह चन्द्रकानी कहाँ। बेशर्म आई है नन्दिका के साथ बराबरी करने के लिए। दूसरे लोगों की आँखो को वह भिन्न-भिन्न मालूम होती है। कोई कहता है सुन्दर, कोई मुँह फेर लेता है। लेकिन नन्दिका के सामने ललिता की निन्दा करने की हिम्मत किसी की भी नही हो सकती।

कनी को मालूम होता है जैसे वह स्वप्नो की दुनिया मे विचरण कर रही है। बाहर के लोगो को जो मालूम नहीं है वह उसे मालूम है। उस रात की बातें कानो मे आ रही है—हँस-हँसकर मरना क्या बेहतर नही है कनी ? मुझे वे फेक नही सकेगे।

खुश होकर उसने सब कुछ किया, सब कर रही है। कौन कह सकता है कि ललिता उसकी सौत है। अपने हाथ से सौत को सजाकर उसका हाथ पकड़कर मधु-शैया के घर में छोड़ आना और किस स्त्री से सम्भव हो सकता है ? फिर हँस-हँसकर लौट आती है और कहती है—

"सुनो तो शोभा, बिचारी कितनी बेवकूफ है। मेरे हाथ को छोड़ना नही चाहती है। उस तरफ तुम्हारे भाई खुर्राटे ले रहे हैं।"

"एक बात कहूँ ?"

"एक क्यों, चार कहो।"

"माँ पछता रही है।"

नन्दिका महसूस करने लगी जैसे उसके शरीर से जीवन चला जा रहा है। क्यो, इसी छोटे से प्रश्न को पूछने के लिए उसका मुँह नही खुला। प्रश्न का उत्तर उसे अच्छी तरह मालूम है।

वह समझ गई, सब कुछ करने के बाद भी वह पकड़ी गई है।

"भाभी, किस पर अभिमान करके तुमने यह काम किया है, यह मुझे मालूम हो गया है। तुमने एक बार भी मुझे नही लिखा। माँ बूढ़ी हो गई है, बुद्धि क्षीण हो गई है। किस समय उसने क्या कह दिया था, उस पर अभिमान करके तुमने जो किया उससे माँ केवल छटपटा कर मरेगी। जब उसने अनुताप किया, अपनी भूल को समझा, तब तीर छूट चुका था। लौटाने का उपाय भी नही था। अब उसका मन रात-दिन रो रहा है। क्या इस बात को तुम जैसी बहू समझ नही सकती?"

नन्दिका सब जानती है, सब समझती है। उसके मुँह की ओर सास अब देख भी नही सकती। हाँ-ना के सिवाय दूसरी कुछ बात भी नही करती। उसमे उसका क्या है। सास उसे अपने मन से हटा नहीं सकती या बाँधकर भी नही रख सकती। केवल छटपटाती रहती है।

खुशी के साथ उसने आदेश का पालन किया है।

"मेरा किसी के ऊपर अहसान नही है शोभा, मैने केवल अपना कर्तव्य ही किया है। भगवान् से याचना करती हूँ, मेरे मन को जैसे वह कभी भी कमजोर न बनाय, ऐसे ही हँसी-खुशी मे समय बीत जाय। मेरे लिए जैसे और किसी के मन मे भी दुख न आय।"

"फिर तुम रो क्यो रही हो?"

"सहानुभूति की मार।"

शोभा देखती रही। जाती हुई नन्दिका की अति करुण व्यथा। कुल बात को सुनकर वह समझ गई कि इस सुख के संसार के ऊपर दुख और नैराश्य के बादल छा आये हैं। होठो की हँसी यहाँ चन्द्रलोक के समान शीतल नहीं है, मनोरम भी नहीं है, सिर्फ बिजली की चमक ही है।

परिवार में अब एक ही व्यक्ति है—ललिता। गाँव की औरतें कभी-कभी आती है। नई बहू के साथ बातचीत करके नन्दिका से एक-दो बातें पूछकर फिर चली जाती है।

ललिता ने अब बात करनी शुरू कर दी है। हानि-लाभ, अच्छा-बुरा कोई भी बात पूछने से एक ही छोटा-सा जवाब दे देती है—"दीदी जानती है।"

सचमुच वह दीदी से भी बढ़कर है। कोई भी ननद, माँ या बहन इतना स्नेह और आदर कर नही कर सकती। पहले-पहले लोग कह रहे थे, आहा, बेचारी के माँ-बाप नही हैं, इसीलिए उसका भाई ललिता के समान लड़की को लेकर बाघिन सौत के खोह मे छोडने जा रहा है। लेकिन सौत कहाँ? यह तो सिर्फ बड़ी बहन ही है। हाथ से कुछ काम करने के लिए भी नहीं देती।

"अरी, तू अभी छोटी है। अभी देखना चाहिए, सीखना चाहिए। तुम्हारे करने का समय चला थोडे ही जायगा।"

उसे साथ लिये बिना कभी खाने नहीं बैठती। चावल और सब्जी खुद खिला देती है। हँस-हँसकर बोलती है। खुद बाल बाँध देती है। फूल की माला बाँध देती है। आँखो में काजल और माथे मे सिंदूर भर देती है। खास-खास दिनों मे मस्तक पर चन्दन भी लगा देती है। पैरो पर मेहदी लगाने जाती है तो ललिता यह कहकर हटा लेती है—"छिः—"

गाल पर अंगुली दबाकर नन्दिका कहती है, "क्यों, मुझे नहीं दिखायगी? क्या मैं तेरी बड़ी बहन नही हूँ?"

चुन-चुनकर अच्छी साड़ी पहना देती है।

"अब देखो कैसा लग रहा है। आईने की तरफ देखो।"

लज्जा के साथ वह देखती है, ठीक न देखने के समान। अपने को छोड़कर उसकी दृष्टि नन्दिका पर चली जाती है। तौलकर देखने का

आग्रह होता है। सुनी हुई बातें कानो में बजने लगती है—'रानी कहाँ और यह चन्द्रकानी कहाँ !'

बिखरे हुए बाल, आँखों पर काजल नहीं है। अधमैली सफेद साड़ी। तथापि—दोनो गोरी है, लेकिन नन्दिका के सामने ललिता नीरस-सी लगती है। दोनों सुन्दर हैं, फिर भी मुँह से मुँह मिला देने से भेद मालूम हो जाता है। माथा, भौह, आँखे, नाक, होंठ। भेद कहा नहीं जा सकता। वह अनुभव किया जा सकता है।

ललिता को अजीब-अजीब-सा लगता है। दृष्टि फिराकर वह शर्मिन्दी-सी हो जाती है, मन मे कॉपती हुई कमजोर भावना आकर प्रवेश करती है। नन्दिका ललिता को यह अनुभव करा देना चाहती है, सब कुछ करने से भी नही होगा, ललिता। अपनी आँखो से ही देखो। मैं ही तुम्हें लाई हूँ। तुम मेरी पुतली हो, खिलौना हो। करुणा की पात्र हो।

अरे छि., यह क्या भावना मन मे आती है। गन्दी भावना। गाँव की अपरिचित औरतों की कानाफूसी की बाते।

बचपन में जिस मुँह को देखने से वह अपने को भूल जाती थी, यह तो वही मुँह है, वह सचमुच कितना सुन्दर है, ललिता अब समझती है। कोमल बात। मनोमुग्धकारी हँसी। अपनी पुकार, अपने कानों में ही आ बजती है। भाभी, मुझसे बात नही करोगी ? कसम खाऊँ ?

'सुनो कहती हूँ,—एक राजा की सात रानियाँ थी। सबसे छोटी रानी को राजा सबसे ज्यादा प्यार करते थे। फिर भी रहते वे बड़ी रानी के हाथ में ही थे।'

ललिता नन्दिका के बाल बाँध देती है। पैर में मेंहदी लगा देती है। सब दुर्भावनाओं को पीछे हटाकर फिर सोचती है, 'मेरी दीदी-सी कौन हो सकेगी ? किसी युग में, किसी देश में कहीं एक राजा था, और वही बेवकूफ मंत्री की बातों से परिचालित होता था। वह सपनों की बात है।'

"छि., तू क्या मेरे पैर दबायगी ? कोई मेरे पैर दबाती नहीं। मुझे बुरा लगता है। छोड़ दो। मेरी कसम।"

नन्दिका अपने पैरों से ललिता के हाथ हटा देती है।

"रात कितनी हो गई मालूम है ? जाओ सोओ। कल अशोकाष्टमी है। बहुत काम है।"

बडी भोर से उठकर भी वह देखती है, दूसरा कमरा खुल गया है। दीदी कभी रसोई मे कभी गौशाला और कभी बगीचे मे फूल चुन रही है। कनी बरतन मॉज रही है।

मन-ही-मन शर्म आ जाती है। उन्होंने रोक लिया था, इसके लिए वह अपनी सफाई नही दे सकती। वह तो कटक में है। दस रोज से दर्शन नही हुए है। एक चिट्ठी भी उन्होने नही लिखी।'

डर के मारे सास के कमरे की ओर देखती है। सो रही है। बच गई। सास से उसको सबसे अधिक डर है। इस डर का कारण वह समझ नही सकती। वह मुँह सुखाकर कभी भी उससे कुछ नही बोली है। हर समय आह्लाद के साथ कहती है, 'जाओ माँ, नन्दिका बाट जोह रही होगी।' कभी-कभी कहती है, 'तुम दोनो मेरी लक्ष्मी और सरस्वती हो, मेरी दो आँखें हो।' दूसरो की बातें नही सुनेगी। कान मे आयेगी तो आप से छिपा नही रखेगी।

केवल उपदेश—

दूसरों के घर में झगड़ा होने से बाहर के लोगों को खुशी होती है। झगड़ा मिटाने के लिए जो ढोंग दिखाकर दौड़े आते हैं, वही झगड़े के बीज बो जाते हैं।

सोने का घर चूना हो जाता है—

ललिता सुनती रहती है। सास की बात मन में प्रवेश करती है।

दीदी को हँसमुख देखने से, उनकी सस्नेह कोमल कथा सुनने से मन के सब दुख बिसर जाते हैं।

दीदी आ गई। हँस-हँसकर अब दुनिया की बातें कहने लगेगी।

"मुँह सुखाकर क्यों बैठी हो, ललिता? क्या भाई और भाभी की याद आ रही है? चलो हम उस कमरे में चलें। औरत का जन्म हर समय वैसा ही है। समय बीत जाने से नया संसार और नया जीवन अपना बन जाता है।"

"एक किस्सा सुनाओगी दीदी?"

"लेकिन तुम हामी भरोगी तो?"

हामी बन्द हो जाती है।

ललिता सो गई है, दोपहर का समय। बाहर बारिश जोर से हो रही है। आषाढ़ का महीना, वर्षा और पवन की आवाज। दरवाजा खुला है। फिर भी घर के भीतर थोड़ा-सा अँधेरा है। शाम होने का भ्रम होता है। कनी शायद उस तरफ सास के पास बैठी है।

नन्दिका उठ बैठी।

ललिता की ओर देखती रही। निश्चिन्त, निष्कपट, सोया हुआ मुँह। यही उसकी सौत। उसकी छाती की मणि को, गले की माला को इसी ने ही खींच लिया है। इसीलिए ही उसके जीवन सर्वस्व स्वामी दूर हट गये है।

नन्दिका की आँखों से आँसू बहने लगे।

ललिता ने चिट्ठी लिखी है—ठीक एक छोटी-सी लाड़भरी बच्ची की चिट्ठी। "तुम कैसे हो। हम सब अच्छे हैं। माँ की तबियत बीच में खराब थी, वैद्य को बुलाकर दीदी ने दवाई की व्यवस्था की, अब तबियत ठीक हो गई है।"

चार रोज से बारिश चल रही है। उसी में ही भीगकर दीदी बारहों घंटे काम करती है। बगीचे मे खुद जाकर बीज डालती है। मैं जाती हूँ तो मुझे कहती है—अरी तुम भीगती क्यो हो। कहो तो, इससे क्या वह बीमार नही होंगी ? उनको लिख दो कि वह अब और न भीगे। मैं उनको कैसे रोक सकती हूँ।

दीदी ने अब मांस छोड दिया है। बोलीं कि उनका कुछ प्रण है। तो मैने कहा, तुम मछली नही खाओगी तो मैं भी नही खाऊँगी। वह बोलीं, क्या मेरे साथ झगडने के लिए ही आई हो ? और रो पड़ी।

मेरी दीदी कितनी अच्छी है। एक दीदी क्या इतना प्यार कर सकती है ? मेरी अपनी बहन नही थी, इसलिए इसका अनुभव भी नही था।

हर काम वही करती है। मुझे करने नही देती। मैं हठ करती हूँ तो कहती है, पहले देखना चाहिए, सीखना चाहिए। लेकिन यदि मैं नही करूंगी तो सीखूंगी कैसे ?

उनके पैर पर हाथ देने से ही कह उठती है, छि:, तू यह क्या करती है ? क्या अपने पैर दबाने के लिए मैं तुझे यहाँ लाई हूँ ?

मेरी दीदी के समान कोई दूसरा मनुष्य तुमने कहीं भी देखा नही होगा। तुम खुद आकर उन्हें मना कर जाओ—पानी में भीगकर वह इतना काम नहीं करेगी।"

व्यापार मन्द हो गया है। एक के बाद एक चीज के ऊपर कन्ट्रोल उठा दिया जा रहा है, खुले बाजार के कम्पटीशन मे फायदा करना कितना कष्टकर है आजकल। सुनन्द को अब मालूम हो गया है कि राजीव बहुत होशियार है, इसलिए व्यापार जैसे-तैसे चालू है।

आयकर और बिक्रीकर की अपील का मुकद्दमा अब तक मिट नहीं सका। अगर अपील खारिज हो जायगी तो सर्वनाश।

फिक्र बहुत है, दुर्भावना, भविष्य की योजना। यहाँ वहाँ दौड़ने की

अशान्ति । रोज आधी रात हो जाती है । घर की बातें याद करने के लिए समय ही कहाँ ?

ललिता की चिट्ठी उसे घर की ओर खींच रही है । व्यापार की भँवर से भागकर उन्हे एक बार देख आने के लिए जी करता है । माँ की तबियत ठीक नही थी । नन्दिका क्यों भीग हो रही है ? उसने मांस क्यो छोड़ दिया है ? चिट्ठी भी क्यों नही लिखती ?

कितनी अच्छी लड़की है वह ललिता । अत्यन्त निरीह, सरल और निष्कपट । बचपन में बिलकुल जैसी थी । जैसे लाजवन्ती की लता । देह पर हाथ लगा देने से ही मुरझा जाती है । आँखें मूँद लेती है । सिर ऊपर उठाकर बात नहीं करती है, जैसे एक सतेज और ताजी पुष्पमाला के समान है—सुरभित, सुन्दर, मुस्कुराती हुई, फिर भी आपत्तिहीन । जहाँ झुला दोगे, जैसे झुला दोगे, शिकायत नही, अभिमान भी नहीं ।

चुनकर नन्दिका इस छोटी बहन को घर लाई है । संसार की निगाहों में वह सौत हो नही सकती । ललिता अपने को भूल गई है । बात-बात मे केवल नन्दिका की ही प्रशंसा वह करती है ।

"क्या आज तुम्हारा जन्म दिन है ?"

"अरे, वैसे क्यों घूरकर देख रहे हो ? दीदी ने तो चन्दन की रेखा पहना दी, मैं क्या मना करती ?"

हर समय हर क्षेत्र मे वह नन्दिका की उपस्थिति महसूस करती है । इस छोटी-सी ललिता की देह पर मानो वह लेप के समान रहती है, उसके मन की भावना के साथ घुल-मिलकर एकाकार-सी रहती है, ललिता को पास देखने से वह नन्दिका के पास होने का अनुभव करता है ।

"तुमको स्वर्ग की मेनका के समान किसने सजाया है ?"

"अरे, वैसे क्यों हँस रहे हो ? पुराने गहने उतारकर उन्होंने ही तो नये गहने पहना दिये ।"

"वह कौन ?"

"हाँ, मेरी दीदी।"

किसको उसने लाड़ किया ? ललिता की रक्त मांस से बनी देह का स्पर्श उसे मिला है, लेकिन उसी के भीतर वह नन्दिका की निर्मल स्वर्गसुषमा अनुभव कर रहा है। कभी-कभी सुनन्द की कामना नन्दिका के सान्निध्य को रो पड़ती है। बहुत बहाने के साथ वह नन्दिका के नजदीक जाता है।

नन्दिका के मुँह की ओर देखने से शर्म आती है। कुछ कहना चाहता है, लेकिन भूल जाता है। उसे लगता है जैसे नन्दिका के आधे मुस्कराते हुए मुँह पर पत्नीत्व की कामना उद्दीपन करने वाली और लाज, भय, या सकोच की कोई भी आभा नही है। अति परिचित, अत्यन्त अपने उस मुँह में केवल प्रथम प्रभात की स्निग्ध मधुर मनोहर, उत्तिष्ठित-जाग्रत की प्रेरणादायिनी कोमल आभा झलक उठती है— जो आभा केवल अकुण्ठित चित्त से करुणा और सहानुभूति का वितरण करती है। उसके सामने अपने को वह शिशु के समान देखने लगता है, सामने खड़ी हुई देवी का जैसे वह केवल स्नेह का एक पात्र, केवल एक खिलौना मात्र !

"व्यापार अब मंद हो गया है, नन्दिका।"

"हर समय हर चीज समान नहीं रहती।"

"अगर ज्यादा दिन ऐसा ही रहा तो नुकसान होगा।"

"बंद करके घर आ जाओ। तुम्हारे लिए किस चीज का अभाव है। घर मे बैठकर खेती की देखभाल करेंगे तो संसार अचल नहीं रहेगा।"

"मैं अपने लिए नही सोच रहा हूँ। लेकिन जो लोग मेरे आश्रय पर है, उन्ही के लिए सोच रहा हूँ।"

"जरूर ! आ हा, बेचारा राजीव। ऐसे ही और कुछ रोज चलने दें, शायद समय बदल जाय। ज्यादा रुपया चाहिए ?"

"अब नहीं।"

ललिता बरामदे मे चली जाती है, टेढी नजर से इस ओर देखती है, पलंग के ऊपर आमने-सामने होकर वे और नन्दिका बैठे है। उसने जरूर देखा होगा। क्या मुँह की लाली पर नजर पड गई ? सवेरे की कोमल धूप बादलो के बीच मे से निसृत होकर आँगन में आ पड़ी है। देखो—वह चली जा रही है। सुनन्द को बहुत उल्टा-उल्टा लगता है।

"ललिता, ललिता—"

क्या नन्दिका मन की बात समझ गई ? ललिता दहलीज तक लौट आई है। घूँघट नीचा कर लिया है।

"क्या दीदी—"।

"आओ तो यहाँ—"

वह पास आती है। मुँह की ओर देखकर नन्दिका मुस्कुराने लगती है, कहती है, "तू कितनी भोली है ! बर्तन साफ करते-करते दाहिने गाल को क्यों काला बना दिया है ? शीशे की तरफ देख तो !" ललिता आँखे तरेर कर देखती है। नन्दिका कहने लगती है, "अरे, कपडे मे भी काला लग गया है। लो, चाबी लो। ट्रक से और एक साडी निकालकर पहन लो। मैं जाती हूँ रसोई को।"

नन्दिका चली जाती है।

"चलो, मैं उस काले निशान को पोंछ देता हूँ।"

"जाओ, तुम बडे दुष्ट हो।"

"क्या पकडी जाओगी ?"

"छोड़ो मेरा हाथ। कोई आ जायगा तो ?"

"आने दो। ज्यादा जिद्द करोगी और हाथ खींचती रहोगी तो दूसरे गाल पर भी चूना लगाना पड़ेगा।"

"तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, मेरा हाथ छोड़ दो। देखो, दीदी आ रही है। पहले मुझे एक साडी निकालने दो।"

"तुम्हारी दीदी कभी अपने मुँह पर चूना या काला नही लगाती। अरे, तुम रो क्यो रही हो ? तब तो मै जाता हूँ।"

सुनन्द चला जाता है। औरतो को यह एक बीमारी है। यह तो सब जानते है कि मर्द जात काटते हुए कुत्ते के समान है। सामने टेबल के ऊपर नन्दिका का फोटो। हँस रही है। पिछली बार वह जब कटक गई थी, तब यह फोटो खीचा गया था।

नन्दिका दूर-दूर चली जाती है, और ललिता पास-पास आ रही है। वह सोचता है, दोनों को दोनों हाथ से पकडकर एक साथ अपनी ओर ले आयगा। लेकिन यह कैसे सम्भव है ? कौन मुँह खोलकर पहले इसका प्रस्ताव करेगा ?

सुनन्द की यह हिम्मत नही है। जितनी रात हो, लौटकर सुनन्द देखता है कि नन्दिका जग रही है। पास मे कनी। ललिता सो गई है। खुद खा लेने के बाद आँखो मे नींद सवार हो आती है। नन्दिका के और बहुत से काम बाकी है। इस घर मे दूसरा कोई भी नहीं है।

उस कमरे में ललिता सो रही है। जरा-सी भी असावधानी कर देने मे वह केवल करवट बदल लेती है। साँस लेती है। असावधानी से भरा हुआ यौवन प्रकट हो जाता है। मानो अनजाने मे वह उसके गले मे अपनी कोमल बाहुलताओ को वेष्ठित कर देती है। बाँध लेती है।

नन्दिका को वह स्पप्न मे देखता है।

गम्भीर होकर तुहिना देवी पूछती है, "नन्दिका देवी आजकल कैसी है ? क्या अपनी भूल वे समझ गई ?"

ललिता की चिट्ठी पढ़ने से अवश्य तुहिना देवी को मालूम हो जायगा कि नन्दिका ने भूल नहीं की है। वही अब घर की मालकिन है। और सब उसके आदेश के ही दास हैं। ललिता को वह प्यार करती है।

ललिता की चिट्ठी को तुहिना देवी ने गौर के साथ पढ़ा। चाय के प्याले की तरफ सुनन्द का ध्यान नही था। छबीला या मलय के प्रश्नों का उत्तर वह दे नही सकते थे। तुहिना के तन्मय मुख के भाव परि-वर्तन के ऊपर उनकी आग्रह दृष्टि व्यस्त थी।

उनका हँसता हुआ मुँह गम्भीर हो गया। शाम के समय की उज्ज्वल बिजली की रोशनी ने बता दिया कि पत्र पढ़कर तुहिना खुश नही हुई है। उन्होंने सुनन्द की ओर चिट्ठी बढा दी। लम्बी साँस लेकर बोली, "आप सुख से ही संसार बनायें, केवल यही हमारी कामना है।"

कुछ पूछने के लिए उसने सोचा था, मुँह नही खुल पाया। जेब के भीतर चिट्ठी रखकर उसने चाय के प्याले मे फिर मुँह लगाया। छबीला गोद मे बैठकर जेब से रूमाल खीच रही थी। मलय माँ का दामन खीच रहा था।

"छि, मलय—"

माँ के मना करने पर मलय दामन छोडकर कुर्सी के पीछे आ खड़ा हो गया। समझा नही, उसने क्या अन्याय का काम कर डाला है।

तुहिना बोली, "मैं सोचती हूँ नन्दिका देवी के प्रति आपने जरूर कुछ अन्याय किया है। इसी के लिए अपने ऊपर से उनकी स्पृहा चली गई है।"

"अन्याय ? नहीं, तुहिना देवी, उनको देखने से मन भक्ति से नीचे

हो आता है। लगता है जैसे वह एक देवी की मूर्ति है। आराधना करने के लिए मन चाहता है।"

"लेकिन आप यह क्यो भूल जाते है कि वे आपकी पत्नी है। भक्ति और आराधना पाने के लिए वह आपके घर नहीं आई थी।"

सुनन्द का मुख म्लान हो गया।

"क्या मेरी बात को आपने गलत समझा? एकान्त में कभी आप इस पर विचार करेगे। आपके दोस्त अतनु बाबू अगर मुझे केवल भक्ति दिखाने लगेगे या धूप दीप नैवेद्य देकर आराधना करने लगेगे, तो मैं सोचती हूँ मै पागल हो जाऊँगी या नये कानून का सहारा लेकर उन्हें तलाक दे दूँगी।"

तुहिना हँस उठी।

सुनन्द भी हँसने लगा।

तुहिना बोली, "सघर्ष से बचने के लिए एक पत्नी को देवी की संज्ञा देकर आप हट न जाइये। ऐसा करके आप अन्याय करेंगे। वे भी आपके स्नेह और आदर की अधिकारिणी है।"

"किन्तु—"

"उनमे आप किन्तु के जो कारण देखते है वह सब उनके भलेपन की कैफियत है। अपने कर्तव्य बोध की महिमा है।"

सुनन्द चकित होकर बैठा रहा। तुहिना देवी के ऊपर उसकी दृष्टि लगी थी। वह कितना बेवकूफ है यह स्पष्ट और साफ बात अब तक उसके मन मे आई नही थी, एक रोज भी उसने इस विषय पर सोचा नही था।

"क्या देख रहे है आप?"

"आपको।"

"सचमुच? क्या मैं बिलकुल हिमानी देवी की तरह नही हूँ? अच्छी तरह से देखकर कहिये तो!"

"आपके बाहरी रूप पर मेरी नजर कभी भी नही रहती। आपके मन के भीतर के सौन्दर्य महल मे मैं अपने को खोए रहता हूँ। मुझे माफ कीजियेगा।"

"दीदी का मन बिलकुल जल गया था। उसके लिए उन पर इल्जाम लगाया नही जा सकता। उनके पास क्षमा माँगने की किसी को भी जरूरत नहीं पड़ेगी। अब वे फिर अपने मन के भीतर मन्दिर बना चुकी है। सुनकर आपको खुशी होगी, दीदी शीघ्र ही फिर पुत्रवती होने जा रही है।"

"क्या पत्र लिखा था ?"

"हाँ, वे अब जल्द अपने घर को लौटने वाले है। आपने दूसरी शादी की है, यह खबर मैंने उनके पास दो बार भेजी थी। लेकिन उन्होने इसके बारे मे कुछ भी नही लिखा है।"

"आपने लिखा क्यो ?"

"वे जरूर समझ गई होगी कि इसके लिए जिम्मेदारी उनकी ही है।"

अधिक पूछने की सुनन्द की हिम्मत नही हुई।

नन्दिका को बुखार हो गया है।

सास ने आदेश दे रखा है, छोटी बहू अपनी दीदी को आज दूध और बार्ली खाने को देगी।

"मेरी कसम दीदी, और एक बार पीलो।"

"अच्छा नहीं लगता, बस, इतना ही। तू सोयेगी, जा ललिता। देखो कितने जोर से बारिश हो रही है। आधी रात हो गई है, कनी दीदी को भी आज तुम्हारे कमरे में सोना चाहिए।"

"मैं यही तुम्हारे पास ही सोऊँगी। देखो दीदी, कनी दीदी कैसे बरामदे में बैठकर खुर्राटे मार रही है।"

"आहा, बेचारी मेहनत कर-करके थक गई है, एक बार पुकार से फिर झट उठ पड़ेगी। तू यह क्या कर रही है ललिता ? छि, क्या तू भी मेरे पैर पर हाथ लगायगी ?"

हाथ उठाकर उसने ललिता के मुँह पर हाथ मारा, मन कहने लगा —'क्या यही मेरी सौत है ? नही तो, ये तो मेरी छोटी बहन ही है। इसके ऊपर फिर क्या अभिमान करना ?'

दीवार की ओर देखने लगी। सुनन्द का फोटो हँस रहा है। नन्दिका के फोटो ने मुँह सुखा दिया है, वह नन्दिका अब मर चुकी है, कब से ? कब से—

नन्दिका का हाथ ललिता के मुँह से हट गया।

तुम्हारा हाथ आग के समान गर्म लग रहा है। अब तुम्हारी बात मैं बिलकुल नही मानूँगी। आँखे मूँदकर अब तुमको सोना पड़ेगा। मैं रोशनी कम कर देती हूँ।

नन्दिका ने आँखे मूँदी। आँखों के कोने से दो बूँद आँसू गिर पड़े। ललिता को पैर दबाने दो। उसको जो खुशी, वही करने दो। ललिता को अपनी बनाने के लिए सुनन्द को उसने दूर हटा दिया है। एकान्त मे बहुत बार मन रो उठा है। धीरज टूट गया है। नस-नस में बिजली-सी दौड़ गई है। दिमाग पागल-सा हो गया है। रात आँखों ही आँखों मे बीत गई है।

अरे, छोटी-सी ललिता पैर दबा रही है। कितनी होशियारी से, कितने अच्छे ढग से। कभी भी इतने अच्छे ढग से पैर दबा नही सकती। लेकिन ललिता के कोमल हाथो का यह स्पर्श पसीने से लथपथ गर्म देह मे जैसे एक मुरझा देने वाली उत्तेजना फैला देता है।

अब पसीना आने लगा है, दीदी। मैं पोंछ देती हूँ। आज बुखार

जरूर उतर जायगा। लेकिन फिर तुम बारिश मे भीगकर बगीचे के पौधे लगाने को नही जाग्रोगी, दीदी। देखो तो, कैसे बारिश के समान पसीना निकल रहा है। तौलिया भी भीग गया है।"

ललिता पसीना पोंछ रही है। मन मे तनिक-सा भी संकोच नही है। यह देह भी जैसे उसकी ग्रपनी ही हो।

पहिना हुग्रा कपडा भी भीग गया है। ग्रब बदल देना चाहिए। "दीदी, लो, यह दूसरी साड़ी लो, उठो तो—" हाथ पकड़कर बैठाया। सूखी ग्रच्छी साडी पहना दी।

"ग्रब सो जाग्रो दीदी। मै तुम्हारे पास यही बैठी हूँ, सो जाग्रो।"

"तुम सोने नही जाग्रोगी ?"

"मैं यही सोऊँगी।"

नन्दिका की पीठ पर ललिता का हाथ, काँपती देह को बाहो मे भर लिया है, नीद ग्रा गई है। ग्राहा, निरीह ग्रौर सरल इस लड़की के मन मे हिसा या द्वेष की गुजायश नही है।

उसके सोये हुए मुँह की ग्रोर नन्दिका देखने लगी, माथे पर हाथ फेरने लगी, भौहों को ग्रगुलियों से सहलाने लगी, सोये हुए मुँह के ऊपर लाड़ करने की इच्छा होती है। लाड़ किया।

ललिता ने ग्राँखे खोली। नीद भरी ग्राँखों, ग्रवश कण्ठ से कहा— "नीद नही ग्राती है ? दूध पियोगी दीदी ?" ग्रत्यन्त प्यार के साथ नन्दिका उसके माथे पर लाड करने लगी। ललिता फिर सो गई। ठीक एक बच्चे की तरह हठ करके वह गोद मे चली ग्राती है। नन्दिका उसकी पीठ पर हाथ फेरती है ग्रौर धीरे-धीरे उसे ग्रपने ग्रौर पास ले लेती है।

नन्दिका के तप्त मन की भावना—ललिता उसकी गोद मे। मन मे हिसा-द्वेष कुछ भी नहीं, उसने उसकी सेवा की है। ग्रब थकान से निश्चिन्त होकर सो गई है। क्या इसी बच्ची के लिए उसके मन मे इतनी

ईर्ष्या जाग उठी है ? आज नही, जिस रोज वह इस घर मे पहले आई, तब से। दुनिया को मालूम नही हुआ। सबने नन्दिका की प्रशंसा की। लेकिन वह जानती है, नन्दिका असल मे क्या है।

आँखो के आँसू वह रोक नही सकी, मन का दुख दबा नही सकी, मिलन के मोह ने उसे पागल बना दिया। देह के रक्त मांस मे आग लग गई है। वह सिर्फ छटपटा रही है।

आज सुहागरात है, अपने हाथ से सजाकर वह ललिता को स्वामी के पास छोड आई है, मन हाहाकार कर उठा है, भीतर से जैसे कोई चिल्ला रहा हो—'अरे, यह कौन है ?'

पैर रुक गये। उसने हाथ बढ़ाया, चारो ओर देखने लगा, दुनिया की हँसती हुई हजारो आँखे उसी की तरफ घूर-घूरकर देख रही हैं। हर एक की आँख मे वही एक ही भाव—देखा जायगा। देखा जायगा, वह कितने दिन तक मन सख्त करके रह सकेगी। एक न एक रोज यह घमण्ड चूर हो जायगा, होठ से यह निर्लज्ज हँसी हट जायगी।

दुनिया जानती है कि नन्दिका के होंठ से यह हँसी हटी नही है। मन भी दब नही गया है। ससार को उसने जीत लिया है। अपनी सौत को गोद मे ले लिया है।

रात निस्तब्ध हो गई है। नीद नही आती है। आँसू भी नही। मन उच्चाट हो रहा है, देह काँप रही है। मन के भीतर उन्माद आ गया है, क्या वह पागल हो जायगी ?

दूसरे कमरे में सुनन्द—उसके पास ललिता। अपना किया हुआ कर्म। सुख का वह जीवन और लौटकर नही आयगा। अभिमान करके उसने जहर पी लिया है।

उठ बैठती है, रोशनी तेज कर देती है, खिड़की बन्द कर देती है। अपनी देह की ओर निबिष्ट नजर से देखने लगती है। वसन खुल जाते है। सामने आईना। वह बिलकुल नही बदली। उसको क्या फायदा, चमकते हुए रूप से, भरपूर यौवन के सम्भार से, बहुमूल्य वसन और भूषणो से ? सब को जलकर राख होने दो। सन्तान से उसे क्या काम ? क्या वह उपेक्षिता है ?

उन्होने उसे दूर कर दिया है। कल की ललिता ने उनको बॉध रखा है। मन की बात वे समझ नही सके। देह की आवाज वे सुन नही सके। मुँह की बातो पर विश्वास कर लिया। अब कहॉ है उनका अबाध्य आचरण, बचपन के ढग ?

'छिः छि.—मॉ बुलाने लगेगी। देखो, कनी भी आ रही है, दरवाजा भी खुला पडा है। दोपहर का समय। मेरा ऑचल छोड़ दो।'

'अच्छा तो जाओ।—'

'तुम्हारे मुँह मे लज्जा, शर्म कुछ भी नही है ?'

'तुम्हारे मुँह में है तो दरवाजा बन्द कर दो। नही तो अब खीचा तुम्हारा आँचल।'

'अरे, ठहर जाओ, मेरी कसम —'

सुबह होने पर शादी। बहुत काम के बाद वह थक गई है। तकिये पर सिर रखते ही नीद आ गई। सुनन्द खुर्राटे मार रहा है। नीद टूट गई। सुनन्द लाड़ करता है। ऑखे मूँद ली। यह वयस्क बच्चा बड़ा दुष्ट है। बहुत अबाध्य। वे लौटे जा रहे है, ललिता है इसका कारण। बहुत होनहार बन गये है ! उस कमरे से आवाज आ रही है। चुप-चुप बातें।

डर के मारे सिर से पैर तक कॉप उठती है। वह रोशनी बुझा देती है। धीरे-धीरे पलंग पर लौट आती है। छाती धडक रही है, अपने निकट वह आप ही चोर बन गई है।

बिस्तर पर वह पड़ी रहती है, जैसे पिण्ड मे प्राण ही नहीं। जोर से साँस लेने की भी हिम्मत नही होती। आँसू से बिस्तरा भीग जाता है।

निशा गरज रही है, पता नही रात कितनी हो गई होगी, आँखों के आँसुओं ने उसके तमाम धीरज को निचोड लिया है। नन्दिका बाहर आई है, पैर दुबक-दुबककर। दूसरे कमरे मे रोशनी, खिड़की के काँच मे नजर आ रही है। सुनन्द की गोद मे ललिता। बेफिक्र सो रही है।

नन्दिका जैसे मूर्च्छित हो जायगी, देह का भार सहने के लिए जैसे काँपते हुए दो पैरो मे बिलकुल शक्ति नही है। रेलिंग पर सिर झपकी लेने लगा। काँपता हुआ हाथ गिर पड़ा। खिड़की के दरवाजे पर लगा, दरवाजा खुल गया।

आवाज से ललिता की नीद टूट गई। सिर उठाकर वह देखने लगी।

ललिता ने देख लिया है। वह उठ बैठी है, चौंककर देख रही है। नन्दिका की देह मे जीवन नही है। ललिता उठकर आ रही है। नन्दिका जा नही सकती है। उसको पहले पूछना चाहिए। वह इस घर में केवल कुछ रोज पहले आई है। वह क्या सोचेगी?

"ललिता!"

"दीदी?"

"आओ तो—"

दरवाजा खोलकर धीरे-धीरे बाहर आई, सर पर घूँघट। हाथ पकड़ कर नन्दिका उसे आँगन में ले गई। चन्द्रमा की रोशनी फीकी-सी है। तुलसी के चबूतरे के नीचे खुद बैठी और ललिता को भी बिठा दिया। सिर सहलाकर प्यार के साथ कहा, "बच्ची, तुममें बिलकुल बुद्धि नही है। घर में भाई बिरादर भरे हुए है। कौन कब उठकर बाहर आयगा, ठिकाना नही। तुमने रोशनी बुझा क्यों नहीं दी थी? नही तो खिड़की बन्द कर लेनी चाहिए थी।"

शर्म के मारे मानो ललिता डर-सी गई।

कोमल गाल पर प्यार की थपकी देकर नन्दिका ने कहा, "अब जाओ।"

उसने सोचा था कि वह आत्मरक्षा कर सकी। रोना ही सार हुआ।

ललिता और कभी भूल नही करती, घर में अँधेरा कर देती है। छिप-छिपकर दुबक-दुबककर नन्दिका देखती है। आतुर और डरता हुआ भाव। अँधेरे की गोद मे वह एक के पास दूसरे को अनुमान कर लेती है। मन के भीतर चिता जलने लगती है। जिसे लाकर उसने स्वामी के पास भेंट दी है, उसे खींचकर बाहर ले आने के लिए दिल कहता है। कही से तनिक-सी भी आवाज सुनते ही डर के मारे अपने पलग के पास दौड़ आती है। स्वप्न देखती है कि वह ललिता का गला दबोचकर उसे मार रही है।

ललिता पास सो रही है।

नन्दिका उठ बैठी, तमाम देह पर उत्ताप, खुले हुए बाल चारो तरफ फैले हुए है। दिमाग में पागलपन आया है। इसी ने उसके जीवन-सर्वस्व को हरण कर लिया है। आज वह गला दबोचकर उसे मार देगी। अब वह सह नही सकेगी।

दोनों हाथ उठाकर ललिता के गले के पास ले गयी। हाथ काँप रहे है।

"दीदी—"

ललिता की नींद टूट गई। वह उठ बैठी।

"एँ, तुम ऐसे काँपती क्यों हो ? शायद बुखार का ताप बढ़ गया है, मेरी कसम, तुम सो जाओ, तुम्हारे माथे पर मैं पानी की पट्टी देती हूँ।"

बुखार कम हो गया। एक सौ डिग्री। थर्मामीटर को टेबल पर रख ललिता पास आई।

"लो, मिश्री का यह शर्बत पीलो। तुम इतनी रो क्यों रही हो ?"

"ललिता !"

"कहो--"

"मेरा गला तुम दबोच सकोगी ?"

"तुम यह क्या कह रही हो ?"

"बहुत कष्ट होता है।"

"सिर दबा दूँ।"

"और सहा नहीं जाता—"

"तो रहने दो। मैं रोशनी कम किये देती हूँ। तुम सो जाओ।"

"अच्छा कम कर दो।"

ललिता ने टार्च को तकिये के पास रखा। रोशनी बुझाकर नज़दीक आई। नन्दिका के दो पैर गोद में लेकर सहलाने लगी। खुश होकर बोली, "अब बुखार उतर रहा है।"

हाथ बढ़ाकर नन्दिका ने ललिता को पकड़ लिया। बोली, "रहने दे, मुझे नींद आ रही है, तू भी सो जा।"

नन्दिका के दोनों हाथ ललिता की देह को गोद में खींच ले गये। छाती पर मुँह रखकर ललिता ने अपना शीतल हाथ नन्दिका की पीठ पर लाद दिया। नन्दिका का गरम हाथ ललिता की पीठ सहला रहा है।

"सो जाओ।"

"तुम रो क्यों रही हो ?"

"और क्यों रोऊँगी ? बुखार कम हो गया है। आँखों के आँसुओं में पागलपन भी नीचे बह गया है, मेरी ललिता मेरी गोद में सो रही है।"

जिसकी छाती मे उसने अपना मुँह छिपाया है, जिसके हृदय का स्पन्दन कानो मे बज रहा है, वह उसकी कौन है ? माँ, बहन, या ननद का प्यार क्या है वह नही जानती, भाभी का जुल्म ही उसके जीवन का एकमात्र सम्बल था। और यह ? जिसने कि उसके ऊपर सबका प्यार उँडेल दिया है ?

सौत !

उस भीषण शब्द की जो जीवन्त प्रतिमा है, उसी की छाती मे एक छोटे-से बच्चे की तरह ललिता ने मुँह छिपाया। मुझे यही सौत ही चाहिए। उनके हाथ के कोमल स्पर्श मेरे सर्वाङ्ग पर धीरे-धीरे दुनिया के सब स्नेह और सराग अमृत का लेप कर रहे है।

ललिता की थकी हुई आँखो पर नीद उतर आई।

सौत ?

कहाँ है वह ? यह छोटी-सी बच्ची----सरल, निष्कपट और निरीह—जिसे लाकर उसने स्वामी देवता को उपहार दिया है, जिसे गोद मे लेकर वह महसूस करती है जैसे उसे सब कुछ मिल गया हो।

नींद टूट गई, पलकें खोली नही जाती। बहुत कमजोर-सा लग रहा है। बारिश की अविराम आवाज कानों में आकर टकराती है। मेढक के झुण्ड टर्रा रहे है। लगता है जैसे सर के पास बैठकर माथा सहलाते-सहलाते स्वामी सो गये है, और पैर के पास ललिता।

बिस्तरे के ऊपर अब एक महीना बीत गया है। टाइफाइड का बुखार। बुखार उतरने के लिए इक्कीस रोज लगे। तब से नौ-दस रोज बीत गये है, फिर भी कमजोरी नही गई। बहुत गुस्सा आ रहा है। उठ भागने की इच्छा हो रही है। लेकिन उठने की शक्ति नही है। ललिता

की सेवा की याद आने से अचम्भा-सा होता है। केवल उसी के कारण वह बच गई। ललिता के कहने से ही कनी सब करती थी। फिर भी ललिता छोड़कर कही भी नही जाती थी। छूत की बीमारी है, इसीलिए इतना पास न आने के लिए कोई-कोई मना भी कर देते हैं। लेकिन वह नही मानती है। जब मास आकर वहाँ पहुँच जाती है, तब उन्हें भगा देती है, कहती है—"मैं हूँ, तुम जा सकती हो।"

कटक से डाक्टर लेकर वे कितनी बार आये है। एक-दो रोज ठहर कर फिर कटक जाते है, दवाई, फल और डाक्टर लाने के लिए। बहुत रुपये खर्च होगये।

उसकी मरने की इच्छा थी। बच गई। मरना ही बेहतर होता। अकेला छटपटाता हुआ जीवन अच्छा नही लगता। वही बात उसने स्वामी से कह भी दी थी।

उन्होने जवाब दिया, "अब डरने का कोई कारण नही है। बुखार कब से उतर गया है। कमजोरी ही बाकी है। रोज-रोज फल का रस पीने से कुछ दिनों मे कमजोरी दूर हो जायगी।"

"तुमने क्या कहा नन्दिका? हमारा यह संसार फिर किसके लिए? देखो तो, तुम्हारी यह बात सुनकर ललिता का मुँह कैसा सूख गया है। ऐसी बातें फिर कभी मत करना।"

सिर के सूखे हुए बालो को अगुलियो से सहलाते-सहलाते उन्होंने उसके कमजोर और बीमार मुँह को चूम लिया।

देह झमझमाने लगी, मन ने कहा, 'कमजोर हाथों को उनके गले मे वह डाल देगी, उनका अमृत चुम्बन और होठो का स्पर्श मुँह पर हमेशा के लिए रख लेगी।'

ललिता ने एक हाथ पकडा है, सहला रही थी, क्या ललिता का हाथ काँप रहा है? नही तो उसका अपना। ललिता ने मुँह सुखाया है। स्वामी ने सर ऊँचा किया। नन्दिका जैसे स्वर्गभूमि से नीचे गिर पड़ी।

क्या ललिता की आँखें छलछला आईं ? द्वेष—? सौत के प्रति ? इतनी स्वार्थपरता ? क्या सह नही सकती ? वह कैसे सह रही है ? छाती को पत्थर कर रखा है।

स्वामी की कोमल बातें कानों मे आई, "अरी, ललिता, रो रही है ! पगली, तुम्हारी नन्दिका दीदी तो अच्छी हो गई।"

ललिता की आँखो से आँसू बहने लगे।

नन्दिका मानो उसके मन की बात समझ गई। काँपते हुए कण्ठ से विषादसिक्त अभिमान-भरी पुकार आई, "ललिता—"

"दीदी—"

ललिता ने नन्दिका को देखकर मुँह नीचा कर लिया। अपने कम-जोर हाथों को उठाकर नन्दिका ने उसका गला पकड़ा, माथे का स्पर्श हुआ। दोनों आँखो के आँसू मिलकर एकाकार होगये।

दोनो की छाती का स्पन्दन दो अकथनीय बातें कहने लगा—'दीदी, इतनी मेहनत और सेवा के साथ क्या इसीलिए मैंने तुम्हें बचाया था ?'

'तू सह नही सकी ललिता ? इतनी स्वार्थपरता ? तूने सोचा था कि मै मर जाऊँगी और तेरे नाम से संसार मे और स्वामी के मन मे श्रम, सेवा, और अच्छेपन का नगाड़ा बजेगा।'

दोनों अलग-अलग होगई। एक-दूसरे की आँखो से आँसू पोंछने लगी।

नन्दिका ने कहा, "मैं मरूँगी नही ललिता।"

जवाब मिला, "उस बात को मुँह में मत लाना दीदी।"

दोनों ने सुनन्द की ओर देखा, सहास्य तन्मय भाव था।

वह सोच रहा था, कितना भाग्यवान है वह। दोनों ने दोनों को स्नेहपाश के निबिड़ बन्धन मे बाँध रखा है। एक ही साथ, अब दोनों को लाड़ करना चाहिए।

दोनों अलग-अलग हो गई हैं। पहले वह किसे लाड़ करेगा ?

ललिता का काँपता हुआ यौवन-उद्भासित स्वास्थ्य-परिपूर्ण मुँह उसका आह्वान कर रहा है—'पहले मुझे, मैं नया हूँ, आग्रही हूँ, उद्विग्न हूँ।'

'पहले मुझे,' नन्दिका का सूखा मुँह बोल उठता है, 'मैं रुग्ण हूँ, दुर्बल हूँ, उपवासी हूँ।'

नन्दिका की आवृत्त देह पर सुनन्द की दृष्टि विचरण कर रही है। समस्त देह प्रश्नों से भर उठती है, पूछ रही है, 'क्या नहीं देखा था, क्या पहचाना भी नही था, यह देह हमेशा रुग्ण नहीं थी, कमजोर नहीं थी। अपने मन से पूछो।'

सुनन्द किसी को भी लाड़ नहीं कर सका।

रात एक पहर तक दोनों पास थे। कितनी खुशी से बातें हो रही थीं। स्वामी ने अपने हाथ से दूध और बार्ली पिलाया था। ललिता ने अनार का रस पिलाया था।

सास ने आकर पूछा, "मेरी माँ कैसी है।"

ललिता ही ने जवाब दिया, "दीदी आज बहुत अच्छी हैं। केवल खाने के समय मुँह बिचका देती हैं। उठकर घूमने के लिए बहुत चाहती हैं, लेकिन डाक्टर ने मना किया है—"

सुनन्द ने कहा, "अब थोड़ा घूमना-फिरना भी चाहिए।"

अभया ने कहा, "थोड़ी और ताकत आने दो।"

पास बैठकर माथा सहलाकर सास उठकर चली गई।

सुनन्द ने ललिता से कहा, "अब तुम भी सोओ, जाओ। बहुत दिन न सोने से अगर तुम भी बीमार पड़ जाओगी तो—"

ललिता ने प्रतिवाद किया, "मेरी आदत पड़ गई है। तुम्हीं सोओ, जाओ। एक दिन-रात जगने से आपका नुकसान होता है।"

नन्दिका बोली, "तुम दोनों सोओगे—जाओ। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। अब मैं सो जाऊँगी। कनी यहीं रहेगी।"

वह सोगई। उसके पास से कोई नहीं गया।

उसने आँखें खोलीं। दिया जल रहा है, पास में स्वामी नहीं है, ललिता भी नही है। नीचे आँचल बिछाकर कनी मो रही है। खुली हुई खिडकी के रास्ते से धीमी-धीमी अभिमान भरी बाते आरही है।

"देखो रात कितनी होगई। एक बजा है, बुलाऊँ दीदी को?"

"बुलाओ।"

"बहुत नीद आरही है।"

"यहीं सो जाओ।"

"अरे, मै जाती हूँ दीदी के पास, इसी ममय मैं रोज उन्हें फल का रस दिया करती हूँ—"

"कनी दे देगी।"

"वह कभी नही देती है।"

"आज दे देगी।"

"तो मैं उसको बुलाकर उठा दूँ।"

"वह अपने आप उठ जायगी।"

—दोनों की हँसी। दोनों चुप होगये।

नन्दिका उठ बैठी। विचलित होकर चारों ओर देखने लगी। सचमुच रात का एक बज गया है? बारिश फिर भी हो रही है। खुली हुई खिड़की से ठण्डी हवा घर के भीतर आती है। कनी सो गई है। उस घर से भी आवाज आ नही रही है, सोगये है। फिर भी, मानो दोनों की चुप-चुप बाते कानो पर आती हैं। हँसी भी।

आँखों से आँसू बहने लगे। मन कह उठा, अब जीने की कोई जरूरत नही। अब मरना ही चाहिए। स्वामी ने उसका वर्जन किया है। ललिता ने उन्हें बाँध रखा है। इस जीवन में और क्या प्रयोजन। वह बीमार होगई है। देह और मुँह से रौनक चली गई है। आँखों में न काजल है, न पैरों में मेंहदी। बाल बिखरे हुए है। मैला साधारण कपड़ा पहना हुआ है। अब वह आठ साल पीछे लौट नही सकेगी। ललिता

की बराबरी में नहीं आ सकेगी। जब तक जीवन है, तब तक केवल अवहेलना ही मिलेगी।

पलंग से नन्दिका नीचे आई। सिर चक्कर खा रहा है। आँखों के सामने सब चक्कर खा रहे है। मन फिर कह रहा है, अपना सोना पीतल बन गया है, आज तू शादी के बाद वेदी के समान है। बिना शराब का गड्ढ़। तुझे कोई पूछेगा नही, ढूँढेगा नही या चाहेगा नहीं। स्वामी का स्नेह केवल उनके कर्तव्य-बोध का रूपान्तर-मात्र है। और ललिता, कृतज्ञता की परचारिका।

सिर के बिखरे हुए बालों को खीचकर पगली-सी होकर वह दरवाजे के पास गई। साँकल खोली। सिर चक्कर खाने लगा। दरवाजे के ऊपर मुँह रखा। सोचा, इस बारिश में भीगना चाहिए। बुखार को वह लौटा लाएगी। दवा-दारू बिलकुल नही छुएगी। मरेगी। दुनिया में उसका कोई भी नही।

दरवाजा खुल गया। आवाज आई। उस कमरे मे बातचीत होने लगी, "क्या सो गये ?"

"—ऊँ"

"क्या दीदी फिर उठ गई है ?"

"उठने दो। कनी तो है न। सो जाओ।"

"ऊँ-हूँ, कनी उठती तो जरूर आवाज आती। मै जाकर देखती हूँ।"

"भाभी !"

"कनी उठ गई। सो जाओ अब।"

"ओह, मुझे छोड दो।"

"भाभी ! अरे लड़खड़ाती हुई क्यो दरवाजे के पास जा रही हो ? एँ, तुम भीग रही हो ? भीतर लौट आओ—आओ।"

"मुझे छोड़ दो कनी। मुझे छोड़ दो—"

"क्या पागल होगई ?"

दरवाजा खोलकर ललिता दौड़ आई। कनी नन्दिका को भीतर ले चुकी थी। बारिश में वह बिलकुल भीग गई है। ललिता चिल्लाकर कह उठी, "तुमने यह क्या किया दीदी ? कनी, तुम भी क्यों सोगई ?"

ठीक ठीक ललिता सामने खड़ी है। क्या वह गला दबोचकर उसे मार देगी ? हाँ-हाँ वैसा ही करना चाहिए।

"मैंने भूल की दीदी। मुझे मालूम नही था कि कनी इतना सोती है। तुमको मेरी कसम, यह साड़ी लो, पहनो।"

क्या हुआ ? ललिता का गला वह दबोच नही सकी। अपने हाथों से उसने उसको पोंछ दिया। सूखी साडी पहना दी। बिस्तरे पर सुला-कर चादर ढक दी। बाल सहला दिये। फलो का रस भी पिला दिया। पास बैठकर फिर पूछने लगी, "तुम क्यों बाहर गई थीं दीदी ? कनी को क्यों नहीं बुलाया ? मुझे क्यों नहीं बुलाया ?"

नन्दिका ललिता के सामने अपने को एक छोटा-सा बच्चा जैसा अनुभव करने लगी, बोली, "पता नही था।"

"मेरी भूल होगई। खुद तुम्हारे पास बैठे रहेंगे, इसलिए मुझे भेज दिया। फिर उनको नीद आई और कनी को यहाँ बिठाकर वे सोने को चले गये।"

ललिता की आँखों में आँसू भर आये।

नन्दिका ने कुछ भी जवाब नही दिया। अपने दोनों हाथों से नन्दिका के दोनों हाथ पकड़कर वह उसके अनुतप्त मुँह की ओर देखने लगी। किसके ऊपर उसका राग, रोष और अभिमान ? छोटी-सी ललिता का क्या कसूर। उसका मन बहुत सरल है, सेवा करने के लिए हमेशा व्याकुलता। केवल उसी की नहीं, सास की भी सेवा कर रही है। सबको आराम दे रही है। घर के सब काम वही करती है। कहीं कुछ भी गलती नहीं है। गाँव की स्त्रियाँ उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं। इस घर की वह गृहिणी बन गई है।

"कनी तुम सोग्रो, जाग्रो। मैं हूँ। दूसरे कमरे का दरवाजा बन्द कर लो, तुम्हारे भाई सो रहे है। ठण्ड लग सकती है।"

आँखें मलकर सुनन्द आया। बोला, "तुम्हारी बातचीत सुनकर नींद टूट गई। फिर क्या हुआ ?"

ललिता बोली, "कुछ नहीं हुआ। तुम सोग्रो, जाग्रो।"

"तुम भी सोग्रोगी, जाग्रो ललिता।"

पास आकर सुनन्द ने नन्दिका के सिर पर हाथ रखा। नन्दिका ने करवट बदली। कुछ बोली नहीं।

"फिर क्या हुआ नन्दिका ?"

ललिता ने जवाब दिया, "कुछ नहीं। तुम जाग्रो। कनी तुम भी जाग्रो। दीदी को थोड़ा सोने दो। मुझे भी बहुत नीद आ रही है।"

ललिता के अनुरोध मे आदेश की व्यजना थी।

तोड़ने की हिम्मत किसी की भी नही है। पलग से उतर कर उसने दरवाजा बन्द किया। दिया बढ़ाकर नन्दिका के पास गई और सो गई।

"ललिता !"

"तुम सो जाग्रो अब दीदी। पानी में फिर भीगी हो। नही सोने से अगर बुखार लौटेगा तो बहुत खराब होगा।"

ललिता का छोटा-सा अनुरोध टालने के लिए उसकी हिम्मत नही हुई। उसके कोमल हाथो ने नन्दिका को फिर अपने भुजपाश मे ले लिया। मन में जितने भाव उठ रहे थे, ललिता का व्यवहार देखकर सबने सिर झुका दिया। वह इस घर की कर्त्री है, नन्दिका नहीं है।

नन्दिका पहले आई थी, लेकिन पीछे पड़ गई है।

कटक लौट आने के बाद अब एक महीना बीत गया है। व्यापार के झमेले मे समय निकलते देर न लगी। गॉव को जाने के लिए कभी-कभी इच्छा होती है। आँखें मूँदकर गॉव की ओर देखने से भावना के सामने दो नारी पास-पास खड़ी हो जाती है। एक का हँसता हुआ प्रफुल्ल मुँह, भरा हुआ स्वास्थ्य, चचल, तरगित और परिपूर्ण यौवन। वह है ललिता। जैसे वह दूर से बोल रही है, 'आओ, मैं रास्ता जोह रही हूँ।'

दूसरी है—नन्दिका। शरीर कमजोर होगया है। आँख की ज्योति मलिन होगई है। सिर के लम्बे केश टूटकर छोटे हो गये है। इतना सुन्दर रूप अब क्या हो गया है। होठो पर हँसी नही है। दृष्टि पर आग्रह या उद्विग्नता भी नहीं है। चेहरे से वह कहती हुई-सी लगती है, 'आओ या न आओ, लेकिन तुम कुशल से रहो।'

नन्दिका में वह एक दूर हट जाने का-सा ढंग देख आया था। नजदीक जाने मे उसका हँसता हुआ मुख गम्भीर हो जाता था। एक प्रश्न को तीन बार पूछने के बाद वह कदाचित् एक ही शब्द मे उसका जवाब देती थी। उसकी भगिमा जैसे कहती थी, 'मुझे क्यों तंग कर रहे हो ? मै बीमार हूँ, ललिता आ रही है, उसे पूछो। सलाह चाहते हो ? ललिता की भी बुद्धि है, वह देख सकती है। रुपये की जरूरत है ? ललिता को मैने चाबी दे रखी है।' यह अभिमान किसलिए ? अपने मन के भीतर उसे इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। लेकिन अपना उत्तर आप सुनने के लिए उसे शर्म आती है। लेकिन, इस जटिलता को किसने पैदा किया ? नन्दिका। हाँ, नन्दिका। उसका कोई भी कसूर नहीं। ललिता आई है। वह भी युवती है। अन्य किसी युवक से शादी करके जो पाने की आशा वह कर सकती थी, उसे उतना ही देने लिए के सुनन्द कोशिश कर रहा है।

नन्दिका का यह दुख मानना अन्याय है, अभिमान करना असंगत। उसके लिए यह राग-द्वेष शोभा नही देता।

सुनन्द चौंक उठता है। 'क्या नन्दिका के मन मे सौत का जहर घुस गया है ? आहा, बेचारी ललिता एक शिशु के समान सरल है। छल या कपट कुछ भी उसे छू तक नही गया। अपना जीवन न्यौछावर करके उसने नन्दिका की सेवा की है, और मरण के द्वार से उसे लौटाया है। तथापि नन्दिका के मन मे इतनी ईर्ष्या ? यह क्यो हुआ ?'

ललिता की चिट्ठी—"दीदी अच्छी हो गई है। धीरे-धीरे तन्दुरुस्त हो रही है, लेकिन उनको देखकर उदासी-सी लगती है। ज्यादा बात नही करती है। पास जाने से बहाने दिखाकर दूर चली जाती है। तुम्हारे पास चिट्ठी लिखने को जब मैने उनसे कहा, तब वह बोलीं, 'तुम तो लिख रही हो, मैं अधिक क्या लिखूँगी।' किसी कारण से क्या वह तुमसे नाराज हो गई है ? मेरी दीदी की तरह अच्छी कोई नहीं है, मेरे अनजाने मे तुमने उन्हें किसी बात पर जरूर विरक्त किया है। मेरे पास जरूर लिखना—"

तुहिना की चेतावनी याद आ जाती है। कभी-कभी मन मे होता है एक बार जाकर पूछ आये। क्या पूछेगा खुद तय कर नहीं पाता। क्या ललिता की चिट्ठी दिखाकर कहेगा कि नन्दिका बीमारी के बाद इतना बदल गई है, वीत स्पृह होगई है ? क्या कह सकेगा, जब वह रोग-शैय्या पर दूसरे कमरे मे छटपटा रही थी, ठीक उसी समय उसने ललिता को हाथ पकड़कर रोक लिया था ?

नन्दिका ने जरूर सुन लिया होगा।

ललिता की इस सरल चिट्ठी से तुहिना क्या अर्थ निकालेगी ? शायद चेतावनी देकर कहेगी, अब तूफान और बारिश शुरू होने वाली है। और नन्दिका ही शुरू करेगी।

'नही-नही, विनीत लता के समान मैं सिर नीचा करूँगी। तुम्हारी दुनिया मेरी छाती के ऊपर से होकर चली जायगी। मेरे पत्ते सूख गये हैं या मुरझा गये है। मेरे पल्लवों के सब पुष्प गिर गये है या

मलिन होगये हैं। मैंने फल नही पाया। मेरा जीवन व्यर्थ होगया है, तुम रसिक पुरुष हो। आशावादी हो। पुष्पवती तरुणी लता तुम्हारी तरफ आशा भरी दृष्टि से देख रही है। उसे ही अपना लो, उसके ही पुष्प को आहरण करो। गूँज उठो। मजरी पुलकित हो उठेगी, फलवती हो उठेगी'—

कौन कह रहा है ?

नन्दिका का बड़ा किया हुआ फोटो।

अनुगत राजीव के हाथो पर व्यापार का दायित्व सौपकर वह गॉव को आया। मॉ के पास। दोनो पैर पकडकर दण्डवत् प्रणाम किया। इतने रोज के बाद वह मॉ के मुँह की ओर अच्छी तरह देखने लगा। दोपहर का समय। चार रोज पहले स्नान पूर्णिमा बीती है, बहुत गर्मी है। पहना हुआ कुर्ता पसीने से भीग गया है।

अपने आँचल से अभया ने सुनन्द का मुँह पोंछ दिया। कॉपते हुए स्वर से बुलाने लगी, "अरी कनी, एक लोटा पानी ले आओ तो। यहॉ से पखा कौन ले गया—बहुएँ भी कहॉ चली गई ? मेरा लडका अब क्या खायगा कनी ?"

"माँ, तुम परेशान मत होओ।"

माँ की ओर सुनन्द देखने लगा। वही भी दिनों-दिन कमजोर होती जा रही है। बाल सफेद होगये हैं। वे भी एक मुट्ठी भर।

सुनन्द का मन रो उठा। व्याकुल होकर जैसे तड़फ उठी—'मेरी माँ अच्छी नहीं है, कोई भी उसकी सेवा नही करती। घर में दो बहुएँ। फिर भी किसी के सामने अपना मन खोलकर वह कुछ नही कहती।'

पँखे के साथ कनी दौड़ आई। मॉ के पास सुनन्द पलंग पर बैठा

हुआ था। बहुत तरह की बातें करता था—कटक का अकेला जीवन, मन्द व्यापार, असह्य गर्मी। अब अभया गौर के साथ सुन रही थी।

कनी से कहा, "बहुएँ कहाँ गई ? जाओ बुला लाओ।"

सुनन्द अब खायगा क्या ?

सुनन्द कहता ही रहा। जैसे बहुओ की उसे कोई भी जरूरत नही। भूख नहीं। खाने का आग्रह भी नहीं। कुर्ता निकालकर पलंग पर रख दिया है। खुला बदन। माँ देख रही है। सुनन्द कहता जाता है—"नन्दिका चिट्ठी नही लिखती। ललिता कभी-कभी घर की हालत लिखती है। अपने बारे मे लिखना भूल जाती है।"

कनी ने कहा, "बड़ी भाभी बगीचे में है। मकई, भिण्डी और मिर्च के पेड उन्होने अपने हाथो से लगाये है। अब गोड़ने गई है। शायद तालाब से घड़े मे पानी लाकर पेडो मे दे रही होंगी। मना करने पर भी नही सुनती है। जाती हूँ, बुला दूँगी।

"छोटी भाभी सो रही है। दोपहर को वह कभी नही सोती है, लेकिन आज क्यो नीद आगई है। जाऊँ, उठा दूँ।"

सुनन्द पीछे की तरफ बगीचे मे गया। नन्दिका का पता नहीं। बगीचे मे घना-सा जंगल। घने पत्तों के उस तरफ कहीं वह गोडती होगी या मेड बना रही होगी। सुनन्द तालाब के उस तरफ गया। कलमी सपेटे के पेड़ घने पत्तों से बहुत सुन्दर दीख रहे हैं। तारों के समान अगणित फल लगे है। कलमी आम, बेर, और दूसरे फलों के पेड़ भी प्रतिस्पर्धा के साथ बढ रहे है।

पत्तों की फाँक से सफेद साड़ी फड़फडाती नजर आती है। नन्दिका खड़ी है। उस तरफ के केले के बगीचे की ओर देख रही है।

सुनन्द पास गया। कोई आता है समझकर नन्दिका ने लौटकर देखा। अपरिचित पर अन्य पुरुष को देखने की तरह चौंक उठी। माथे ऊपर से घूंघट उठा लिया। होठों के ऊपर एक व्यथा से भरी मुस्कुराहट खींच लाई।

सुनन्द देखता रहा—नन्दिका की तन्दुरुस्ती फिर भी नही लौटी। अब भी कमजोर है। मुख मलिन है। आँखो के नीचे काले दाग है, हाथ और शरीर मे थोड़े से गहने है। अपने प्रति एक लापरवाही का भाव।

मन तड़फ रहा है—नन्दिका को वह लाड करेगा, सविनय कहेगा, सब कसूर मेरा है, नन्दिका। तुम सबसे पहले हो। यह संसार तुम्हारा है, सब ही तुम्हारे आदेश के दास है।

पीछे की ओर मुड़कर सुनन्द ने देखा। पीछे का दरवाजा वह खुला छोड़ आया है। ललिता शायद आ रही होगी।

नन्दिका जैसे मन की बात समझ गई। बोली, "तुम कब आये ? मुँह सूख गया है। क्या अब तक हाथ-पैर भी नही धोये है ? क्या खाओगे ? आओ--"

नन्दिका सामने से जाने लगी।

क्या नन्दिका बोल रही है ? आवाज तो उसकी-सी मालूम नही पडती। जैसे और दूसरी कोई नन्दिका के भीतर प्रवेश करके कहेगी, केवल इसी के लिए कह रही है। बोला, "नन्दिका—"

लौटकर वह देखने लगी।

"रुकोगी नही ?"

"क्या, कहो—"

सुनन्द पास आया। काँपते हुए स्वर से कहा, "मुझसे रूठ गई हो क्या ? मैने क्या अपराध किया है ?"

उसने नन्दिका का हाथ पकडा। उसका हाथ काँप रहा था। होठ भी काँप रहे थे। उसने आँखें नीचे की थी।

"क्या रूठ गई हो ?"

"कहो, क्या कहना है। छोड़ दो, ललिता आयगी।"

"आने दो। क्या मेरे मुँह की तरफ नही देखोगी ? इतना अभिमान?"

नन्दिका की आँखों मे आँसू बहने लगे। सुनन्द के मुँह की ओर वह देखने लगी। देख नही सकी। हाथ छुड़ाकर कहा, "मैं रूठ क्यो जाऊँगी? अभिमान किसलिए करूँगी? तुम यह क्या कह रहे हो? मैने किसका क्या बिगाड़ा है? देखो, ललिता आ रही है। आओ।"

हाँ, ललिता। सुनन्द देखने लगा। वह अस्त-व्यस्त-सी होकर आ रही है, हँस-हँस सिर से कपडा गिर रहा है। चेहरा बदल गया है। मोटी हो गई है। मुँह भी सुन्दर दीखने लगा है।

"तुम फिर बगीचे मे चली आई? मैने सोचा कि तुम सो गई होंगी। एक किताब पढते-पढते नीद आगई थी। कान पकड़कर कहती हूँ कि अब कभी किताब नही पढ़ूँगी। देखूँगी तुम बगीचे मे कैसे आ सकोगी। हाल ही मे तो बीमारी से उठी हो।"

नन्दिका हँसने लगी। बोली, "और कभी नही आऊँगी।"

"तुम कैसे आदमी हो! एक बार चिट्ठी भी नही लिखी। दीदी, मैं जाती हूँ, चूल्हे पर चावल चढा दूँगी—"

"रहने दो। चावल खाने की इच्छा नही। नाश्ते से ही काम चल जायगा। बहुत भूख लगी है।"

"अच्छा वैसा ही करूँगी। मैं जाती हूँ, नारियल खुरचूँगी। तुम आते रहो। माँ बहुत व्यस्त है।"

मुँह मोडकर ललिता दौड़ती चली गई। जैसे उसके पैर आज मिट्टी में ही नही लगते।

मुग्ध आखों से सुनन्द उसकी ओर देखता रहा।

नन्दिका भी देखती रही—मन ने कहा, 'नन्दिका का मरण हो जाय। ललिता सुखी रहे, निश्चिन्त रहे।'

जैसे आज प्रश्न भरी आँखों से सब उसकी ओर देख रहे है। इसके लिए उस कनी को ही दोष देना चाहिए। बाधा देने के लिए या मना करने मे भी उसे शर्म अनुभव हुई। नही, डर-सा लगा। ऐसा न हो कि मन की बाते दूसरों को मालूम हो जायँ। उसी के लिए यह विडम्बना।

कनी ने उसको सजा दिया है। यत्न के साथ बाल बाँध दिये हैं। पैरो मे मेहदी का रंजन किया है। जूड़े पर चम्पा की कलियों की माला पहना दी है। अपनी मनपसन्द के अनुसार उसने एक अच्छी साड़ी पहनी है। देह पर गहने सजाये है। आँखों मे काजल। माथे पर कुकुम की बिंदी।

उसी कनी ने ललिता को भी सजा दिया है। उसके लिए पात्रान्तर करने का कोई सवाल ही नही है। ललिता के जूड़े में बेला की माला। खुद नन्दिका ने उसे कुकुम की बिन्दी लगा दी है। आँखों मे बारीक काजल। चुन-चुनकर एक कीमती साडी और चमकते हुए गहने। मुस्कुराते हुए मन ने कहा है, मेरे लिए इन्तजार मत करना ललिता। मेरा यह भेष केवल तुम्हारे ही लिए। दुनिया कुछ सोचे या न सोचे, वे तो जरूर सोच लेते कि नन्दिका ने अभिमान किया है, मन के भीतर सौत भावना का जहर भर दिया है। उसी के लिए नन्दिका का यह बीत स्पृह भाव।

लेकिन ललिता का मुस्कराता हुआ चेहरा जैसे पूछ उठता है, 'आज ऐसा क्यो है ? कितनी सुन्दर दीख रही है दीदी ! सचमुच वर्षा काल का बादल से घिरा हुआ यह आकाश कितना सुन्दर दीख रहा है ! त्रयोदशी का चन्द्रमा उठ रहा है।' ललिता देख नही सकती है। क्या उसके भीतर प्रतिहिंसा की आग जल रही है ? उसी के लिए वह दूर-दूर रहती है, रसोई घर मे।

नौकर-चाकर भी चकित हो देख रहे हैं। उनके सामने चले

जाने मे भी संकोच होता है। वे क्या सोचते होंगे। गाँव की औरतें आज शाम को घूमने आई थी, अभी लौटी है। मुँह पर खिलती हुई हँसी। दिल्लगी की बातें। पूछती हुई आँखें। उन लोगों को भी कैसे खबर मिल गई।

धीरे-धीरे सुमित्रा ने कानो मे कहा, "तुमने सुना बडी दीदी, सूना दीदी को कुछ होने वाला है। शादी के बाद तेरह साल हो गये, बहुत प्रकार की दवा दारू से कुछ नही हुआ था। ज्योतिषी ने भी मना किया था। डाक्टर और कविराज लोग निराश होकर चले गये थे। अब सबकी बात झूठ साबित हुई। चार महीने बाद हमारी सूना दीदी की गोद में बच्चा खेलने लगेगा।"

"तू क्या कह रही है ?"

"आँखे फूट जायँगी, सच कह रही हूँ।"

"मेरी ललिता भी माँ बनने वाली है।"

"सचमुच ? कब दीदी ?"

"अरी, अब नही, जब भगवान् की इच्छा होगी।"

"हाँ-हाँ, भगवान की इच्छा से ही सब-कुछ होता है। उबले हुए धान मे भी अंकुर आ जाता है, नदी मे बाढ आ जाती है। गूँगा हरिया भी बात करने लगता है, और अन्धा महना आँखे खोलकर देखने लगता है। और भी उदाहरण दूँ ?"

"नहीं चाहिए, रहने दो।"

आँखें हँसी थी। मन रोया था। छाती थर-थर काँप रही थी। अपने हाथ से सुमित्रा की गोद के बच्चे को गोद मे लेकर उसके कोमल गाल के ऊपर नन्दिका ने चूम लिया था।

फिर कहा, "क्या यह कोई दूसरा है ? एक ही खून का तो है।"

"बिलकुल उसके बाप के ही मुँह के समान।"

"हाँ।"

बच्चे को नन्दिका ने सुमित्रा की गोद मे रख दिया । उठकर बोली, "अब जाना चाहिए । ललिता रसोई मे हरकत करती रहेगी । हमेशा सब कुछ करने के लिए वह आकुल हो उठती है । गाली देने से वह कभी नही आयगी, जाती हूँ ।"

"मालिक ?"

नन्दिका ने जवाब नहीं दिया ।

ललिता रसोई में थी । पास मे कनी । ललिता का मुँह लाल हो गया । देह से पसीना बह रहा है । वह खाना पका रही है । आग धधकती हुई जल रही है ।

"ललिता—"

ललिता पीछे की ओर देखने लगी । उसकी दृष्टि मे 'क्यों आई हो' जैसा प्रश्न । कढाई से भुनती हुई मछली की गन्ध आ रही है । ललिता मछली भून रही थी । दूसरे चूल्हे के ऊपर सब्जी का भगोना । आवाज के साथ उबल रही है ।

"क्या दीदी ?"

"आग के पास बैठ-बैठकर तू क्या हो गई है । तू उठ जा—"

"खत्म तो हो गया है । सब्जी उतार लूँगी । मछली मे राई का पानी दे दूँगी तो काम खत्म हो जायगा । तुम क्यो आई हो ? आग के पास बैठने से फिर उसी रोज की तरह अचेत हो जाओगी । तुम जाओ, माँ के पास बातचीत करती रहो । उनको नीद आ जाने के बाद कोई फिर उनको उठाता है तो वह बहुत बिगड़ जाती है ।"

"अच्छा ठीक, इतनी रात तक ये कहाँ गये हैं ?"

"गाँव को । घर में उनका मन नही लगता, पता नही क्यों ।"

"हमेशा वे वैसे ही है । पहले गाँव का और दूसरों का मामला सुधारकर उसके बाद घर का । आते ही होंगे ।"

नन्दिका अभया के पास आई । सोचा, 'ललिता ने सब काम को

अपने ऊपर ले लिया है। सुस्ती बिलकुल नही है, अनिच्छा नही है। वह पक्की गृहिणी बन गई है।'

सास भी पुलकित और तन्मय आँखो से देखने लगी। पीठ सहला कर प्यार के साथ बोली, "मुझे तो कल जैसा मालूम होता है माँ, तू ऐसे ही घर में आई थी। नन्दिया कहाँ गया? उसका बचपन कब तक रहेगा?"

सास की आँखों मे भर-भर आते हुए आँसू, उनकी दृष्टि मानो सहानुभूति के साथ शासन कर रही है। --यह बुद्धि तुझे किसने दी है? उसके ऊपर तूने अभिमान किया है? ठीक चोरी से अभिमान करके जैसे मिट्टी के टूटे हुए बर्तन में खाने की तरह। क्या मुझ पर भी अभिमान किया है? तुम्हारे मुँह की बात मैंने सुनी थी, लेकिन मन की बात नहीं। मेरी ओर देखो तो। तुम्हारे सोच मे ही दिनों-दिन मैं क्षीण होती जा रही हूँ। तुम्हारा सूखा हुआ मुँह देख-देखकर मेरा प्राण निकल जायगा। इस दुनिया मे मैं छटपटा रही हूँ, उस दुनिया मे भी छटपटाती रहूँगी। मुझे नाती की कोई भी जरूरत नही। मुझे तुम जैसी एक बहू ही चाहिए।

"भागवत पढकर सुनाऊँ माँ?"

"आज रहने दो। नन्दिया की आवाज आ रही है। वह आ गया है। कुछ ढूंढ़ता रहेगा। तू जा।"

ललिता का काम भी खत्म हो गया है।

पीठ से हाथ उठा लिया। नन्दिका के मुँह की ओर देखने लगी। सूखी हुई लकडी समान आँखों के कोटरों से आँसू बहने लगे। छटपटाती हुई आत्मा करुणा के साथ रो उठी। अति विनय से सिर झुकाकर

निवेदन किया। और कब तक मेरी यह सूखी देह और सिकुड़े हुए चमड़े पर आग की लकड़ी से मारती रहोगी। ललिता ही तेरी आग की लकड़ी।

नन्दिका समझ गई। —सास अब अपने किये हुए काम के ताप को सह नहीं सकती। तुरन्त ही मन मे दुख भर गया है। आदमी के अति पुरातन पशुत्व की प्रतिहिंसा दाँत निकालकर भौकने लगी। नन्दिका फिर एक बार अभया की आँखो की ओर देखने लगी। आँसू बह रहे थे, वह कह रहे थे, मुझे मत मारो, मैं मर ही गया। पशुपन ने सिर नीचा किया है। मनुष्यता रोती हुई आँखों की आड़ से पूछने लगी, "मैं क्या करूँ, मुझे सलाह दो।"

"नन्दिया बुला रहा है। तुम जाओ बहू।"

नन्दिका उठी। बाहर आकर आँखों से आँसू पोंछ लिये। बाहर कुन्द के फूल के समान चाँदनी की लहरे खेल रही है। नीले आकाश के कोने मे से हँसता हुआ चाँद दुनिया की ओर देख रहा है। तरंगित शीतल पवन घडी-घडी बह उठता है और घड़ी-घड़ी स्थिर हो जाता है। मानो वह आँख मिचौनी का खेल खेल रहा है। दुष्ट पवन कुतकुती लगा रहा है। देह और मन उल्लसित हो उठते हैं। शरीर पर से कपड़े खीच लेता है।

कानों पर कहता है—'उस तरफ नन्दिया बुला रहा है।'

उसी के सोने के कमरे में।

ललिता के हाथ पकड़े वे खड़े हुए है।

"अरे, छोडो मुझे, दीदी आ जायगी।"

"बिलकुल पसीने से नहा गई हो।"

"रसोई खत्म होगई, क्या खाना नहीं खाओगे ? अब कपड़े पहनो। मैं जाती हूँ जगह ठीक करने के लिए।"

"तुम्हारी दीदी।"

"मैं घर में हूँ फिर भी क्या उनको आग के पास बैठकर काम करना चाहिए ? वे माँ के पास है। मैं बुलाए देती हूँ। छोड़ो।"

"नन्दिका क्या रसोई मे बिलकुल नही आती है ?"

"हाल ही तो बीमारी से उठी है। आग के पास बैठने से सिर घूमने लगता है। उम्र भी हो गई है। रसोई में चूल्हे के पास मैं उन्हें क्यों बैठने दूँगी ? दीदी मुझसे बडी है। जैसे बताएँगी, मैं वैसा ही करती रहूँगी।"

चौंककर नन्दिका फौरन खडी हो गई। देह काँप उठी, कानों में आवाज आई—उम्र होगई है। दीदी मुझसे बडी है। तो यह वेश-भूषा किसलिए ? लौट जायगी ? लेकिन कहाँ ? स्वामी दूर चले गये हैं। फिर भी हाथ के पास भी है। सास की आँखों में आँसू। उसके अपने मन मे जलन। कनी का प्राण भरा आग्रह। चाँद की हँसी, पवन का उल्लास, क्या सब व्यर्थ ही जायगा ?

उम्र होगई है ? सचमुच ?

हँस-हँसकर धीरे-धीरे वह घर के भीतर आई। पसीने से भीगे हुए ललिता के मुँह के ऊपर से सुनन्द का आग्रही मुँह अलग होता जा रहा था। नन्दिका का हँसता हुआ मुँह आँखों में पड़ गया। ललिता का हाथ छोड़कर वह हट गया। मुँह लाल हो गया, जैसे उसने कुछ अपराध किया हो।

ललिता ने मुड़कर देखा। दीदी का हँसता हुआ मुँह उसकी नजर में आया। तब उन्होंने सब देख ही लिया है, सुन भी लिया है। शर्म के मारे मुँह पर गुलाब का रंग अवतीर्ण हो गया। अब मुँह छिपाने के लिए जगह कहाँ है ? नन्दिका दरवाजे के पास खड़ी देख रही है।

नन्दिका उसके मन की बात समझ गई, सामने आई और उसका हाथ

पकड़कर प्यार के साथ बोली, "आग के पास बैठकर तू पसीने से भीग गई है, जाओ पोंछ लो। मै जाती हूँ, खाना परोस दूँगी।"

ललिता बोली, "तुम फिर क्यों गर्मी में जाओगी? मैं जाती हूँ, पहले माँ को खाना दूँगी।"

चील के समान ललिता बाहर छूट गई। नन्दिका ने देखा स्वामी पलंग के ऊपर बैठ रहे हैं, पैरों को नीचे की ओर झुला रहे हैं। आग्रह के साथ देख रहे है। हँस-हँसकर वह पास आई। भौंह उठाकर विनती के साथ बोली, "इतनी देर कहाँ घूम रहे थे? मुँह काला हो गया है। कुर्ता उतार लो। क्या भूख नही लगती?"

जवाब मिलने के पहले ही वह कुर्ते के बटन खोलने लगी। सुनन्द तन्मय होकर देख रहा था। आज नन्दिका मे यह कैसा परिवर्तन! यही तो उसकी प्राणप्रतिमा नन्दिका। जैसी थी आज भी वैसी ही है। उम्र एक भी दिन नहीं बढ़ी है। वैसा ही सुन्दर मुँह। कुछ सौपती हुई आँखें। चम्पा फूल की महक।

कुर्ता और बनियान लेकर नन्दिका रैक पर रखती है। असावधान देह के कपड़े पीठ के आधे हिस्से तक उठ गये है, नीचे हरे रंग का ब्लाउज। बड़े आईने के भीतर हँसता हुआ मुँह नजर आ रहा है। आँखें नीचे उतर आई। यह देह उसकी अत्यन्त परिचित है—जिसका शोभा-सम्भार केवल सुनन्द की ही सम्पत्ति है—जैसे आज इस देह को वह पहली बार ही देख रहा हो। नन्दिका निमंत्रित कर रही है।

तुहिना की याद आ रही है। उनकी आवाज कानों में बज रही है। नन्दिका उसकी पहली पत्नी है।

"मेरे पास बैठो।"

"कहो, क्या कहोगे।"

हाथ पकड़कर नन्दिका को उसने पास बिठाया।

"क्या मुझसे नाराज हो गई हो?"

"अरे, तुम यह क्या कह रहे हो! तुमसे नाराज होऊँगी तो जिऊँगी किसके लिए? अब जवाब दो कि मुझसे ऐसी बातें कभी भी न पूछोगे।"

नन्दिका ने सुनन्द का हाथ पकड़ लिया। आँखों में आँसू भर आये। सुनन्द के आशापूरित आग्रही और मुस्कुराते हुए मुँह की ओर वह देखने लगी। सुनन्द भी एक क्षण के लिए नन्दिका की आँसू भरी आँखों की ओर मुग्ध दृष्टि से देखता रहा। जैसे निमंत्रण दे रही हों। दोनों हाथों से उसने नन्दिका के मुँह को ऊपर उठाया। यही उसकी नन्दिका है। उम्र कुछ अधिक नही हुई है। आज भी वह उसकी आँखों मे ठीक बच्ची-सी है—नौ साल पहले की नई बहू के समान। वह बिलकुल वैसी ही लग रही है।

सुनन्द ने नन्दिका को प्यार किया। दोनों की देह मे सिहरन दौड़ गई। कामना की पुलक होने लगी।

चकित होकर ललिता देख रही थी। काँपती हुई वह दरवाजे के पास से पीछे लौट गई।

आज सुनन्द के आनन्द की सीमा नही रही। देह का ढाँचा दूर फेंककर उसकी पुलकित आत्मा आज बाहर आ गई है। सिर के ऊपर के हँसते हुए चाँद के साथ नीले आकाश के सफेद बादलों के बीच में कभी मुँह दिखा रही है, फिर कभी छिप जाती है, अथवा मन्द पवन के साथ लीन होकर पत्तों के बीच में आँख-मिचौनी खेल रही है। घर के सामने की बाड़ पर तुरई की लता फैली हुई है, नक्षत्र के समान फूल खिल रहे है। मधुर महक आ रही है।

वह सुखी है। जिसकी नन्दिका और ललिता के समान दो पत्नियाँ

हैं उसको और क्या भावना ? धन्य हो तुहिना देवी ! उन्होंने समय पर चेतावनी दी थी। अब कटक लौटकर उनसे वह सब बातें साफ-साफ कह देगा।

बाहर आते समय सुनन्द ने रसोई की ओर देखा था। नन्दिका और ललिता एक ही थाली में खाने बैठी हैं। कनी परोस रही है। न जाने क्यों, दोनों हँस-हँसकर लोट-पोट हो रही है। यह हँसी किस बात की है। यह सुनने के लिए सुनन्द व्यग्र हो उठा। वह चार कदम आगे बढ़ गया। हँसी बंद हो गई थी। देखा नन्दिका भात का कौर ललिता के मुँह मे दे रही है। नहीं—उनकी खुशी और आनन्द मे वह बाधा नहीं देगा। वह बाहर चला आया।

दो घटे बीत गये हैं। घर का नौकर बैठा-बैठा ऊँघ रहा है। खुर्राटे मार रहा है। कुत्ता भी उसी के पास सो गया है। बहुत देर हो गई है। अब वह अन्दर जायगा। आँखों मे नींद आने वाली है।

"गंधिया, ए गंधिया !"

"जी हजूर।"

गंधिया झट से उठ बैठा। कुत्ते ने भी सिर उठाया। सुनन्द घर के अन्दर गया। घर की दूसरी तरफ सूना हो गया है। माँ के कमरे का दरवाजा बद हो गया है। वह सो गई है। पास के कमरे में कनी रहती है। वह भी सो गई है। रसोईघर भी बद। रास्ते के कमरे का दरवाजा खुला। भीतर के कमरे से रोशनी नजर आ रही है। अरे, वे दोनों अब तक जग रही हैं।

मन की खुशी से सुनन्द आँगन में आया। कमर तक ऊँचे चबूतरे पर तुलसी का घना पेड़। इस तरफ खड़े होने से उस तरफ का कुछ भी नज़र नहीं आता। सुनन्द चबूतरे के पास खड़ा होकर देखने लगा।

दोनो कमरों के दरवाजे खुले हैं। एक में नन्दिका। दूसरे में ललिता। आज दोनों उसका इन्तजार कर रही हैं। दोनों कमरों में

टेबल पर रोशनी जल रही है। गौर के साथ दोनों क्या-क्या पढ़ रही हैं। सुनन्द की दृष्टि इधर से उधर दौड़ने लगी। छाती थर-थर काँप उठी। पैर अटक गये। चबूतरे का सहारा लेकर वह अवाक्-सा देखता रहा। इस घर मे नन्दिका। रोशनी से झटक रही है। सुन्दर मुँह। सिर पर कपड़ा नहीं है। तन्मय होकर कुछ पढ़ रही है। दृष्टि फिराकर वह बाहर की ओर देखने लगी। उसकी दृष्टि जैसे किसी की खोज कर रही हो। किसकी, यह सुनन्द को मालूम है। नन्दिका का उपवासी आग्रह आज उसे ही ढूँढ़ रहा है। अतीत की अभिज्ञता रो रही है। दृष्टि के यान पर बैठकर उसकी आकुल अधीर छटपटाती हुई आत्मा चली आ रही है।

सुनन्द एक तरफ हट आया। ललिता पर नजर जा टिकी। यौवन से काँपता हुआ उसका तन्द्रा-विह्वल मुख जैसे शून्य के पथ पर सुनन्द की छाती की ओर बढ़ा आरहा है। वहीं उसका स्थान है। और देर किसलिए ? आहा, सरल और निरीह ललिता ! पढते-पढ़ते वह ऊँघ रही है। दोनों हाथ ऊपर उठाकर अँगड़ाई ले रही है। टेढ़ी नजर से बाहर देख रही है। आलस्य की दृष्टि पूछने लगती है— वे कहाँ गये ?

सुनन्द की चेतना जाती रही। निर्णय पर पहुँचने के लिए वह आसमान की तरफ देखने लगा। चन्द्रमा उपहास कर रहा था। बादलों के आँचल के नीचे कभी वह छिप जाता था और कभी निकल आता था। वह दौड़ रहा है। उसे कोई रोक नही सकता। आकाश के बादल, नक्षत्र, तारे उसको बुद्धि नहीं दे सके। पीछे की तरफ से हवा पीट रही है। कह रही है, 'तुम आदमी हो, पत्थर तो नहीं हो। फिर खड़े क्यों रह गये ? आगे बढ़ो। बुद्धिमान पुरुषसिंह, तुम आगे बढ़ो।'

शरीर पर पसीना आगया। काश वह अपने शरीर को दो हिस्सों में बाँट सकता ! अथवा नन्दिका और ललिता को एक साथ मिलाकर

एक ही मूर्ति का निर्माण कर सकता ! कुछ भी सम्भव नही है। अब वह क्या करेगा ? इस महान् परीक्षा से कैसे निकल सकेगा ? किसे हताश करेगा ? उसका क्लान्त, कमजोर और अस्थिर मन चक्कर खाती हुई हवा मे सूखे पत्ते के समान घूमने लगा।

कुर्सी हटाने की आवाज कानो मे आई। जैसे गुस्से से ललिता उठकर खड़ी हो गई। देह से वसन गिर पड़े है। दोनो हाथ उठाकर अँगड़ाई ले रही है। आँखें निराश होकर चाँदनी से भरे आँगन मे किसी को खोजने लगी है। रोशनी कम कर दी। पलंग के ऊपर लेट गई। हिलते हुए पलंग से आवाज आई। ललिता सोने का उपक्रम करने लगी।

नन्दिका ! वह भी उठ पडी अत्यन्त सन्तर्पण से। उसने कुर्सी नही हटाई। बाहर की ओर बार-बार देखने लगी। मुँह से हँसी झलकने लगी। उसने भी रोशनी बुझाई। कमरे मे अँधेरा कर दिया। बाहर निकल आई। आँगन को चली आई—बिलकुल चबूतरे के पास।

विमूढ़ होकर सुनन्द चन्द्रमा की ओर देखने लगा— इस दुनिया मे क्या घटनाएँ घट रही है, जैसे उसको उनके बारे मे कुछ भी मालूम नही था।

नन्दिका ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया।

सुनन्द चौंक-सा उठा। चिल्लाने की इच्छा हुई। लेकिन मुँह नहीं खोला। अपने को वह अपराधी-सा समझने लगा। नन्दिका उसके काँपते हुए हाथ को पकड़कर खीच ले जा रही है। बस, इतने ही इशारे के लिए वह बैठा रहा था। यही अच्छा है। अपने आप वह कहीं नहीं गया। नन्दिका उसे ले जारही है। निमंत्रण दे रही है। अपना अधिकार उसने समझ लिया है।

नन्दिका के कमरे के सामने—नन्दिका ने सुनन्द का हाथ छोड़ा। एक मुहूर्त के लिए खडी हुई। धुँधली रोशनी मे खड़े हुए स्वामी के मुँह की ओर देखने लगी। कानों मे अपने मन की अभिलषित पुकार गूँज उठी, 'अरी, दूसरी जैसी खडी-खडी क्या देख रही हो ? नन्दिका, तुम अन्दर चलो।' देह की अतीत अनुभूतियाँ आज फिर जग रही है। हाथो पर जैसे सुनन्द के हाथ का स्पर्श लग जाता है, मुँह पर सुनन्द के होठों का स्पर्श। दो बाहुओं का निबिड़ आत्म-विस्मृत बन्धन। आशा से पूर्ण आत्मा का आह्वान—आओ नन्दिका !

पत्थर की मूर्ति के समान सुनन्द खड़ा है। जैसे विचलित हो गया है। ललिता के कमरे से आँगन पर थोडी-थोडी रोशनी आरही है। उसी रोशनी में आँखें समा गई हैं। अपना कर्तव्य वह नही निश्चित कर पाता। सोच रहा है, 'नन्दिका ने क्यो उसका हाथ छोड दिया। क्यो वह उसे अपने कमरे मे खीचकर न ले गई।' पलग पर दुग्धफेन के समान शैय्या। कमरे के अन्दर से चम्पा फूल की महक आ रही है। क्या नन्दिका भी सोच रही है कि ललिता अब तक सोई नही, जग रही है। इन्तजार कर रही है।

नन्दिका अपने किये हुए कर्म का नतीजा देख रही है। जैसे उसने स्वामी के मन की भावना अनुभव की है। एक क्षण पहले ही कानों मे किसी ने कहा है, 'वह जग रही है। क्या सोचेगी ?'

नन्दिका की देह और मन मे आग लग गई। वह जलने लगी। जलकर काली लकड़ी बन गई। आँखें मूँदी और आँखे खोलीं। एक क्षण मे ही वह नई बन गई।

सोच-सोचकर सास मर जाय, उसमे उसका क्या ? उसने तो खुद ही जहर पिया है। दूसरो का क्या कसूर है ? स्वामी को छटपटाकर मारने में क्या फायदा मिलेगा ? वह अपना कर्तव्य स्वयं निश्चित नही कर पाते। उनके लिए नन्दिका को ही कर्तव्य का रास्ता दिखाना पड़ेगा।

व्यग्र होकर उसने सुनन्द का हाथ पकडा । सचमुच किसका हाथ कॉप रहा था, दोनो मे से किसी को भी पता नही लगा । काँपते हुए कण्ठ से नन्दिका बोली, "इतनी देर तक बाहर ठंड मे घूम रहे हो, बीमार न हो जाओगे क्या ?"

सुनन्द के मुँह से निकल गया, "कितनी सुन्दर चॉदनी है !"

सुनन्द का हाथ खीचकर नन्दिका उसे ललिता के कमरे के पास ले गई और अभिमान भरे कॉपते हुए स्वर से कहा, "रात बहुत हो गई है। तुम्हारे लिए वह जगी हुई है । दिन भर का काम । तबियत खराब नही होगी ?"

ललिता के कमरे के सामने पहुँचकर नन्दिका ने पुकारा, "ललिता, ललिता ! क्या तू सो गई है ?"

ललिता झट से उठ बैठी । सिर के ऊपर कपडा करके उसने कहा, "क्या है दीदी ? अरी, तुम अब तक जाग रही हो ? नई-नई देह, क्या मुझे फिर सताने की इच्छा है ?"

"इन्हे देखो तो । ठंड मे बैठकर आधी रात तक चॉदनी रात देख रहे है । तुम अकेली—बीच का दरवाजा बंद करूँगी ।"

सुनन्द बोला, "व्यापार के बारे मे सोच रहा था, कुछ गड़बड़ हो गई है ।" उसने हँसने की कोशिश की ।

"वह सब कटक मे ही सोचा करो । तू जा सो जा ।" विजय की हँसी हँसकर नन्दिका दोनों की ओर देखने लगी । हवा की तरह झट से दूसरी तरफ चली गई । जाकर सशब्द दरवाजा बंद कर दिया । दरवाजे के सहारे एक क्षण के लिए खड़ी होगई ।

निष्ठुर, कठोर सूखे तख्ते पर माथा झुक गया । सिर घूमने लगा । जैसे वह वहीं गिर पड़ेगी । आवाज आई । सिर उठाकर उसने देखा । ललिता ने दरवाजा बंद किया है । रोशनी दिखाई नहीं पड़ती । जैसे

चाँदनी उसका उपहास कर रही है। रह-रहकर हवा व्यग कर रही है। देह के कपड़े को इतस्तत कर रही है, निर्जनता से मन मे भय पैदा होता है।

लड़खडाती हुई नन्दिका कमरे के भीतर आई। दरवाजा बंद किया। जैसे किसी ने उसको शून्य की तरफ उठाकर फिर पलग पर फेक दिया हो। सिर टेककर छोटे बच्चे की तरह वह फूट-फूटकर रोने लगी। दुनिया मे आज वह कितनी अकेली है! कोई भी सहायक नही है। आँसू के पारावार मे अब सारा जीवन तैरने लगेगा। डूबता रहेगा। अशान्ति और असन्तोष के बोझ से वह डूब जायगी।

वह डूबेगी। उसकी भटकी हुई बडिमाँ आँसुओं के पारावार के तल मे पड़कर सड़ती रहेगी।

बन्द की हुई खिडकी का दरवाजा थोड़ा-सा खोलकर ललिता ने भीतर की तरफ देखा, चौक उठी। नन्दिका दीदी सिर टेककर नीचे सोरही है। माथे के नीचे हाथ। समय बहुत होगया है। धूप कबसे आगई है। आसमान मे बादल है, इसलिए कुछ मालूम नही होता। हमेशा जो सबसे पहले उठकर दूसरों को उठाती थी आज अब तक उसकी नीद ही नही टूटी है। और नीचे ठण्डे फर्श पर सोरही है।

बुलाकर उठाने के लिए इच्छा हुई। फिर सोचा, 'नही, नहीं उठाऊँगी। अपने आप उठने दो। आसमान के चाँद और बाड़ के तुरई के फूल को देखते-देखते कल रात को स्वामी ने इतनी देर कर दी थी कि रात के दो बज गये। ऐसा न हो कि ललिता डर जाय, इसलिए दीदी भी जग रही थी, अब उन्हें सोने दो।'

उसकी आँखें भी थकी हुई मालूम होती हैं। दुनिया भर की बात-

चीत । आदि भी नही, अन्त भी नही । हामी न भरने से चीटी काट देते है । सोने नही देते । कब नीद आई, ललिता को मालूम नही है ! वह भी आज देर से उठी । सुनन्द बड़ी भोर मे ही उठकर कही चला गया है। दरवाजा खुला पडा है । क्या रात को उनको भी नीद नही आई थी ? कहाँ चले गये ?'

न जाने क्या सोचकर बुलाने लगी, "दीदी !"

एक बार सुनकर ही नन्दिका की नीद खुल गई। कच्ची नीद । उसने देखा—खिड़की के उस तरफ ललिता का हँसता हुआ मुँह । सब याद आ गया ।—रात की उत्तेजना। रात का दुख। छटपटाते हुए मन का उद्वेग, तप्त भावना की निष्पत्ति । ललिता उपहास करने के लिए आई है । मुँह खोलकर शायद वह कहने आई है—किसकी जीत हुई, दीदी ! वे किसके लिए है, समझ गई न ?

नन्दिका ने फिर आँखे मूँद ली ।

"दीदी !"

नन्दिका उठ बैठी । दरवाजा खोलने की भी शक्ति उसमे नही थी । सिर भारी-भारी लग रहा था । शरीर काँप रहा था । कितनी-कितनी भावनाओ ने उसके मन को अस्त-व्यस्त कर दिया था । जैसे वह पागल हो गई थी । सब कुछ तो उसकी कमजोरी का ही कसूर है । दिखाने के लिए ही रात उसने जो भलेपन का अभिनय किया था, यह उसी की सजा है । अब किसे दोप दे सकती है ?

आसमान मे शुक्र तारा दीखने लगा। पौ फट रही है। थकान के मारे वह नीचे सो गई थी। नीद आई या नही उसे पता नही था। जिसके लिए उसका दुख बढ़ाया अब वही आकर उसको जगा रही है ।

"दीदी, दरवाजा खोलो ।"

मानो शेर मामा ही बुला रहा है—दरवाजा खोलो, नही तो

छत से अन्दर आ जाऊँगा। नन्दिका उठ खडी हुई। साँकल खोली। लडखडाती हुई पलग पर बैठ गई।

ललिता कमरे के अन्दर आई। नन्दिका की ओर देखकर वह चौंक उठी। दीदी ऐसी क्यो लग रही है? एक ही रात मे जैसे उनकी उम्र एक युग बढ गई हो! मलिन मुख। गड्ढे मे घुमी हुई आँखें। निस्तेज पुतलियाँ। नेत्र का काजल नीचे की ओर बह आया है। माथे का कुकुम बिगड गया है। जूडे की चम्पा कलियाँ नीचे गिर गई है। गले का हार पलग पर खुला पडा है।

क्यो-क्यो का उद्वेग मन मे आया। मुँह नही खुला। मन का दुख दबाकर हिचकिचाते हुए उसने पूछा, "तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों हो गया है दीदी?"

नन्दिका के मलिन होठों पर हँसी दौड गई।

"हाल ही मे बीमारी से उठी हो, फिर भी जमीन पर सो गई।"

"यह शरीर बहुत पुराना है ललिता! बूढी के शरीर के चमडे को कुछ नही लगता। कल रात को बहुत ही गर्मी थी।"

"देर हो गई। नहाने के लिए जाओ।"

जवाब न देकर नन्दिका लडखडाती हुई बाहर निकली। घर के अन्दर से ललिता ने मुडकर देखा। उस तरफ से कनी आ रही है। नन्दिका को देखकर वह भी कुछ देर के लिए चकित-सी हो गई। फिर भी उसके मुँह पर हँसी आई। बोली, "भाभी, तालाब मे नहाओगी या कुएँ के पास?" बाहर का दरवाजा खोलकर नन्दिका कुँए की तरफ चली गई।

•

छोटा-सा बगीचा, चबूतरे के पास चम्पा, बकुल और अशोक के पेड़। दो झाड़ी बेला। तीन-चार पेड़ गुलाब के—किस्म-किस्म के रंग

के। इसके अलावा और भी बहुत किस्म के फूलों के पेड़। बकुल का पेड बहुत सुन्दर दीख रहा है। कुँए के पास से छोटे बगीचे से बड़े बगीचे को जाने के लिए रास्ता है।

पूर्व की तरफ की खिडकी से ललिता देखने लगी, खिडकी से यह छोटा बगीचा सुन्दर नजर आता है। यह बगीचा कनी के लिए जीवन जैसा है। नन्दिका और ललिता भी पेडो की हिफाजत करती है।

ललिता देखने लगी—नन्दिका दीदी दिखाई नही पडती। कुआँ और चबूतरा भी घर से नही दिखाई देते।

ललिता के मन का स्नेह आज चुक-सा गया। सात रोज के पहले भाभी की एक चिट्ठी आई थी। एकबार उसे सरसरी निगाह से देखकर उसने तकिये के नीचे रख दिया था। आज सवेरे निकालकर फिर एक बार अच्छी तरह पढा। छाती धड़क उठी। वे बहुत दुख मे है। चिट्ठी को कमर मे खौसकर वह नन्दिका को दिखाने के लिए लाई थी। स्वामी को दिखाने में उसे सकोच हुआ। लेकिन नन्दिका दीदी से उसे कुछ भी संकोच नही था। वे सबका दुख समझती हैं, सबके प्रति हमदर्दी रखती है।

लेकिन आज उनके मुँह की ओर देखने से ही डर-सा लगा। 'बूढ़ी के चमड़े को कुछ भी नही लगता है।' बूढ़ी का चमड़ा! नन्दिका की ये बातें कानों में गूँज जाती हैं। उसी मुँह से फिर वे लाड़ करने आती हैं? वह कहाँ गई? कबसे गई?

ललिता की आँखों में एक अनजाना संदेह भर गया। घर के भीतर नजर दौडाई। मन मे अस्थिरता-सी आई। जैसे वह कुछ चोरी करने के लिए घर मे घुस गई हो। बार-बार बाहर की ओर देखने लगी। अपने ऊपर उसे लज्जा अनुभव हुई।

अपने विवेक का अच्छापन कानों मे पुकारने लगा। वह तुम्हारी दीदी है, उनकी तबियत ठीक नही है। अभिमान करना उचित नहीं

होगा। क्षण भर में ही मन से सब तरह के संदेह हट गये। बिस्तरा उठाकर ठीक करने लगी, खुले पडे हुए हार को टेबल पर रखा।

घर मे झाडू लगा दी। 'अरे, तिपाई के नीचे चाबी का गुच्छा पड़ा है। दीदी बहुत असावधान है। ऐसे ही जहाँ तहाँ चाबी फेंक देती है।' उसने कमरा बन्द दिया और झाड़ू हाथ में लेकर बीच के कमरे मे चली गई। घर मे अँधेरा था।

यही कमरा सबसे बड़ा है। आँगन की ओर दो, और बगीचे की ओर दो खिड़कियाँ इसमे हैं। दोनों तरफ दोनो कमरों का दरवाजा है।

यही है भण्डार का कमरा। दोनों दीवारों के पास बैंच के ऊपर छोटे बडे ट्रंक और सूटकेस रखे गये है। तरह-तरह की नई-पुरानी साडियाँ, समीज, ब्लाउज, कमीज और कुर्त्ता। किसी मे सोने-चाँदी के गहने तो किसी में बरतन। अब तक सब ट्रकों को उसने देखा भी नहीं था।

दीवार के एक कोने मे बडा लोहे का बक्सा। कितनी बार उसने इसी बक्स को पहले खोला भी है। उसमे रुपये रखे हुए है। छोटे-छोटे टीन के बक्सों मे कीमती गहने। उनकी कीमत लगाने की भी उसकी शक्ति नही थी।

ललिता ने लम्बी साँस ली। भाभी की दुख पूर्ण चिट्ठी जैसे उसको खोंचने लगी। क्या देख रही हो? क्या इतनी जल्दी सब भूल गई हो? तुम्हारी शादी मे तो दो एकड़ जमीन केवल तीन सौ रुपये में गिरवी रखी गई थी, मेरे तमाम गहने केवल दो सौ रुपये मे। तुम सब जानती हो। अब हम भूखे मर रहे हैं।

कमर से चाबी निकाली। केवल कितने रुपये। एक चटाई धान मे से अगर कौवा एक चोंच ले जाता है तो उसमें क्या कम हो जाता है? पाँच सौ रुपये के जो गहने और साड़ियाँ वह घर से लाई थी, वे इसी ट्रक में पड़े है। इस घर मे आते ही नन्दिका ने उन्हें उतारकर नये गहने पहना दिये थे।

ललिता के हाथ में चाबी का गुच्छा काँप उठा। वह चोरी करेगी ? छि. ! इस घर मे उसका क्या अधिकार है ? वह तो नन्दिका की नौकरानी बनकर इस घर मे आई है, या खिलौना बनकर। खिलौने को सजाने की तरह नन्दिका उसे सजा देगी। खुद लेकर स्वामी के पास छोड़ आयगी। फिर, स्वामी भी अबाध्य होने से उनका हाथ पकडकर ललिता के घर मे छोड आयेंगे। सब ही उनके हाथ के खिलौने है।

ललिता जल्दी-जल्दी कमरा बुहारने लगी। इस कमरे मे नौकर-चाकरो का प्रवेश मना था। कनी भी कभी यहाँ नही आती थी। नन्दिका ही इस कमरे को सजाती और बुहारती है। कभी-कभी उसके कहने से ललिता भी उन कामों को कर देती है। आज वह अपने आप कर रही है।

काँच के दरवाजे लगी हुई चार अलमारियाँ, चार भाइयों के समान दीवार के पास खडी हुई है। उनमे तरह-तरह के खिलौने है। ललिता देखती रही।

दरवाजे मे ताला लगा है। दूसरे कमरे मे ललिता रहती है। यह ताला किसके लिए लगाया हुआ है ? ललिता सोचने लगी—केवल उसी के लिए। इतना अविश्वास ? इस घर की वह कौन है ? खाना, पीना, पहनना और मीठी बाते सुनने के अलावा और किसी पर उसका अधिकार नही है। वह इस बात को कभी सहन नही करेगी, जरूर ताला खोल देगी।

चाबी का गुच्छा हाथ मे लेकर एक के बाद एक चाबी ताले से मिलाने लगी। ताला नही खुला। इस ताले की चाबी शायद नन्दिका ने कहीं छिपा रखी होगी। इतना अविश्वास ? उनका सब प्यार और स्नेह केवल दिखावटी ही है।

ललिता की आँखो से आँसू गिरने लगे।

भीगे कपडे पहने हुए नन्दिका कमरे के भीतर आई।

ललिता जल्दी से हट गई। आँखों के आँसू पोछने का समय भी उसे नही मिला।

पल-भर के लिए नन्दिका उसकी आँखो को देखने लगी। जैसे उसके मन की बातें वह समझ गई। ललिता का हाथ पकड़कर बोली, "तुम रो रही हो, क्यों—"

"अपनी चाबी तुम यहाँ छोड गई थी दीदी। लो।"

नन्दिका की नाक घृणा से सिकुड गई। ललिता का हाथ छोड़कर वह कहने लगी, "मेरी चाबी ! फिर क्या ? इतना बड़ा बोझा ढोने के लिए मेरी अब उमर नही है, ताकत भी नही है। आज से चाबी अपने पास ही रखो।"

ललिता की आँखो मे डर समा गया, "तुम यह क्या कह रही हो दीदी ?"

"ठीक कह रही हूँ। इसके लिए मेरे मन मे जरा भी दुख नही है। ये बोझ और किसके लिए ? तुम्हारे लिए – तुम्हारे गर्भ से मेरा जो लड़का एक रोज आयगा उसी के लिए। अब तू चाबी अपने पास रख। खुद कारोबार कर। मै निश्चिन्त हो जाऊँगी, जाल मे मुक्त हो जाऊँगी।"

नन्दिका दरवाजे की ओर देखने लगी। साँकल पर ताला उलटा हुआ पडा था। समझ गई और बोली, "तुझ पर अविश्वास करके मैंने ताला नही लगाया। अपने ऊपर ही अविश्वास करके मैंने ताला लगाया है। ताले की चाबी एक बहुत गुप्त स्थान में रखी हुई है। कहाँ, देखना चाहती हो।"

उत्तेजित होकर नन्दिका ने ललिता के हाथ से चाबी का गुच्छा ले लिया। अलमारी खोलकर टिन के बक्से से छोटी-सी चाबी निकाली। ट्रंक खोलकर उसमे रखे हुए सूटकेस को उसी छोटी चाबी से खोल दिया। सूटकेस के भीतर बड़े ताले की चाबी थी।

"अब यह ताला खुल जायगा, देख ।"

ताला खोलकर उसने दरवाजा खोल दिया । ललिता का कमरा । इस तरफ नन्दिका का । आँसू बहाते हुए उसने ललिता का हाथ पकड़-कर कहा, "तुम्हारे ऊपर नहीं, मेरे अपने ऊपर ही मेरा अविश्वास है । तू उस बात को समझ न सकेगी । तुझे समझाकर कहने के लिए मुझ मे धैर्य भी नही है । लो यह ताला और चाबी । इस कमरे के दरवाजे पर ताला लगा दे ।"

नन्दिका अपने कमरे के भीतर आई । रैक के ऊपर से एक सूखी साड़ी खीच ली । दूसरी तरफ के कमरे की साँकल लगा दी ।

चकित होकर ललिता खड़ी रही । उसको लगा जैसे उसने एक अक्षम्य अपराध कर डाला है । आतुर होकर दरवाजे के ऊपर धक्का मारकर वह चिल्लाने लगी, "दीदी, दीदी, दीदी—"

कोई जवाब नही मिला । पागल-सी होकर वह बरामदे की तरफ से घुस आई और देखा नन्दिका कपड़ा पहनकर कघी से बाल काढ़ रही है । दोनों आँखों से आँसू बहे जा रहे हैं ।

नीचे झुककर उसने नन्दिका का पैर पकड़ा और फूट-फूटकर रो उठी ।

कंघी रखकर नन्दिका ने उसको ऊपर उठाया । पलंग पर पास बिठाकर उसने ललिता की आँखों से आँसू पोंछ दिये । फिर कोमल भाव से कहा, "तुम्हारी आँखों में मैं कभी भी आँसू नही देखूंगी, इसलिए की हुई मेरी सब तपस्या आज व्यर्थ हो गई है । तुम्हारे मन में छिपे हुए सदेह ने आज तुम्हें रुलाया है । मुझसे तुम्हारा विश्वास टूट गया है, सोचते ही मेरा दिल फट जाता है । इसी के लिए तू क्या मुझे मौत के द्वार से लौटा लाई थी ?"

"मुझे माफ करो दीदी। मन की बात मैं तुमसे कह नहीं सकी। कहने का समय तुमने नही दिया। दरवाजे पर इतना बड़ा ताला न लगा होता तो मेरी दीदी कभी जमीन पर सोकर रोई न होती। मैं इसे कभी भी करने नहीं देती।"

ललिता उठकर गई। बीच के दरवाजे की साँकल खोली। नजदीक आई और फिर पास बैठी। बोली, "यह दरवाजा अब से खुला ही रहेगा दीदी, मेरे मन मे तुमने जिस संदेह का आरोप किया है, उसी सन्देह को साकार होने दो। तुम्हारे पैर पड़ती हूँ।"

नन्दिका ने ललिता को अपनी छाती से लगा लिया, और पीठ सहलाते हुए कहा, "छि. तू यह क्या कह रही है, तू मेरी छोटी बहन है, तू क्या मेरी सौत बनेगी ?"

"दीदी, मुझे हँसाने के लिए तुम केवल रोती रहोगी, मैं यह नहीं सह सकती। अपनी आँखों के आँसुओ में से मुझे भी हिस्सा दो। वरना मैं तुम्हारी सौत बनूँगी, लेकिन अबाध्य कभी नहीं बनूँगी। तुमसे पहले, तुम्हारे पैरो की सेवा करना मेरा कर्तव्य है। मुझे मेरा कर्तव्य करने दो।"

"ललिता, मेरे मुँह की तरफ देखो तो।"

ललिता ने सिर उठाया। उसकी आँखों में आँसू थे। यही बच्ची मेरी सौत बनना चाह रही है? असम्भव। दुनिया में हलचल मच जायगी। नहीं, नहीं। नन्दिका ने दोनों हाथों से उसका सिर ऊपर उठाया, लाड़ करने के लिए। आँसू-भरी आँखों से कहने लगी, "तुम्हारी बात होने दो, ललिता। इस दरवाजे को खुला रहने दो। यह ताला मेरी कमजोरी का पहरा दे रहा था। अब इसको जाने दो। जीवित रहने तक तुम्हारी दीदी, दीदी ही रहेगी। सौत कभी नहीं बनेगी। अपनी दीदी की आँखों में भविष्य मे कभी भी तुम आँसू नही देखने पाओगी।"

ललिता हँसने लगी। चाबी का गुच्छा नन्दिका के हाथ की ओर

"अब यह ताला खुल जायगा, देख।"

ताला खोलकर उसने दरवाजा खोल दिया। ललिता का कमरा। इस तरफ नन्दिका का। आँसू बहाते हुए उसने ललिता का हाथ पकड़कर कहा, "तुम्हारे ऊपर नहीं, मेरे अपने ऊपर ही मेरा अविश्वास है। तू उस बात को समझ न सकेगी। तुझे समझाकर कहने के लिए मुझ में धैर्य भी नही है। लो यह ताला और चाबी। इस कमरे के दरवाजे पर ताला लगा दे।"

नन्दिका अपने कमरे के भीतर आई। रैक के ऊपर से एक सूखी साड़ी खीच ली। दूसरी तरफ के कमरे की साँकल लगा दी।

चकित होकर ललिता खड़ी रही। उसको लगा जैसे उसने एक अक्षम्य अपराध कर डाला है। आतुर होकर दरवाजे के ऊपर धक्का मारकर वह चिल्लाने लगी, "दीदी, दीदी, दीदी—"

कोई जवाब नही मिला। पागल-सी होकर वह बरामदे की तरफ से घुस आई और देखा नन्दिका कपड़ा पहनकर कघी से बाल काढ़ रही है। दोनों आँखों से आँसू बहे जा रहे है।

नीचे झुककर उसने नन्दिका का पैर पकडा और फूट-फूटकर रो उठी।

कंघी रखकर नन्दिका ने उसको ऊपर उठाया। पलंग पर पास बिठाकर उसने ललिता की आँखों से आँसू पोंछ दिये। फिर कोमल भाव से कहा, "तुम्हारी आँखों में मैं कभी भी आँसू नही देखूंगी, इसलिए की हुई मेरी सब तपस्या आज व्यर्थ हो गई है। तुम्हारे मन में छिपे हुए सदेह ने आज तुम्हें रुलाया है। मुझसे तुम्हारा विश्वास टूट गया है, सोचते ही मेरा दिल फट जाता है। इसी के लिए तू क्या मुझे मौत के द्वार से लौटा लाई थी?"

"मुझे माफ करो दीदी। मन की बात मैं तुमसे कह नहीं सकी। कहने का समय तुमने नहीं दिया। दरवाजे पर इतना बड़ा ताला न लगा होता तो मेरी दीदी कभी जमीन पर सोकर रोई न होती। मैं इसे कभी भी करने नहीं देती।"

ललिता उठकर गई। बीच के दरवाजे की साँकल खोली। नजदीक आई और फिर पास बैठी। बोली, "यह दरवाजा अब से खुला ही रहेगा दीदी, मेरे मन मे तुमने जिस संदेह का आरोप किया है, उसी सन्देह को साकार होने दो। तुम्हारे पैर पड़ती हूँ।"

नन्दिका ने ललिता को अपनी छाती से लगा लिया, और पीठ सहलाते हुए कहा, "छि. तू यह क्या कह रही है, तू मेरी छोटी बहन है, तू क्या मेरी सौत बनेगी ?"

"दीदी, मुझे हँसाने के लिए तुम केवल रोती रहोगी, मैं यह नहीं सह सकती। अपनी आँखों के आँसुओं मे से मुझे भी हिस्सा दो। वरना मैं तुम्हारी सौत बनूँगी, लेकिन अबाध्य कभी नहीं बनूँगी। तुमसे पहले, तुम्हारे पैरों की सेवा करना मेरा कर्तव्य है। मुझे मेरा कर्तव्य करने दो।"

"ललिता, मेरे मुँह की तरफ देखो तो।"

ललिता ने सिर उठाया। उसकी आँखों मे आँसू थे। यही बच्ची मेरी सौत बनना चाह रही है ? असम्भव। दुनिया में हलचल मच जायगी। नहीं, नही। नन्दिका ने दोनों हाथों से उसका सिर ऊपर उठाया, लाड़ करने के लिए। आँसू-भरी आँखो से कहने लगी, "तुम्हारी बात होने दो, ललिता। इस दरवाजे को खुला रहने दो। यह ताला मेरी कमजोरी का पहरा दे रहा था। अब इसको जाने दो। जीवित रहने तक तुम्हारी दीदी, दीदी ही रहेगी। सौत कभी नहीं बनेगी। अपनी दीदी की आँखों में भविष्य में कभी भी तुम आँसू नहीं देखने पाओगी।"

ललिता हँसने लगी। चाबी का गुच्छा नन्दिका के हाथ की ओर

बढाते हुए उसने कहा, "लो दीदी, तुम्हारे रहते हुए मैं क्यो इसका बोझा वहन करूँ ?"

नन्दिका ने चाबी ले ली और बोली, "तुम्हारी खेलने की उमर अभी बीती नही, मेरे रहते हुए तू क्यो इस बोझे को ढोने जायगी। तुम्हारे लिए मैंने सब कुछ इकट्ठा कर रखा है। अलमारी मे पुतलियाँ सजा रखी है। पुतली लेकर खेलने के लिए मेरी इच्छा नही होती है। रक्त मांस की पुतली बनाकर तुम मेरी गोद मे दोगी ललिता। उसके भविष्य के लिए मैं यह बोझा ढो रही हूँ।"

ललिता नीचे की ओर देखने लगी।

"वे कहाँ गये है ?"

"कौन जाने।"

"उनके लिए नाश्ता तैयार कर रखा है न ?"

"अब करूँगी।"

"चलो दोनो करेगे। आज उनसे बात नही करेगे। बडे सवेरे उठकर घर से कही भाग जाने का मजा चख लेगे। नही ?"

हँस-हँसकर ललिता ने हामी भरी।

सुनन्द कुछ समझ नही सका। आज किसी के मुँह से भी बात नही निकलती। दोनों केवल हँस रही है। एक-दूसरे के मुँह की ओर देखकर जैसे आँखों से बातें कर रही है। जब सुनन्द कुछ पूछता है, ललिता नन्दिका के मुँह की ओर देखती है—'तुम कह दो।' हँस-हँसकर नन्दिका जवाब देती है—'तुम कहो।' दोनो चुप।

कुछ भी समझे बिना सुनन्द हँस रहा है। आज दोनों ने शायद

शपथ ली है कि बात नही करेगे। सुनन्द का सवेरे का खाना खत्म हुआ। टेबल पर कॉच का गिलास रखकर वह बाहर गया और हाथ धोने लगा। तौलिये से हाथ पोछकर फिर कमरे के भीतर आया। ललिता टेबल साफ कर रही थी। नन्दिका रैक पर कपडे रख रही है।

सुनन्द कुर्सी पर बैठा। दस बजने वाले है। आसमान बादलो से ढका है। लगता है जैसे अभी ही सवेरा हुआ है। बीच के कमरे मे होकर नन्दिका और ललिता उस कमरे मे आई। सुनन्द ने देखा, बीच के कमरे का दरवाजा दोनो तरफ से खुला है। किसने खोला और क्यो खोला, यह अनुमान वह नही कर पाया।

बोला, "नन्दिका "

"ललिता, तुम जाओ। मैं रसोई मे जा रही हूँ।"

"ललिता----"

"तुम जाओ। आज मैं खाना पकाऊँगी।"

"सुनो---"

नन्दिका ने कहा, "चलो दोनों जायेंगे। चलो—"

ललिता का हाथ पकडकर नन्दिका ललिता के कमरे में आई। दोनो सामने खड़ी हो गई। सुनन्द की दृष्टि एक से दूसरी के ऊपर फिरने लगी। दोनो गम्भीर थी। मानो जैसे दृष्टि से नाप रहे हों—दोनों में से अधिक सुन्दर कौन है। ललिता हँसने लगी। शर्मिन्दा होकर नन्दिका के कन्धे के ऊपर सिर झुका दिया। बोली, "वे क्या देख रहे हैं?"

नन्दिका ने कहा, "खुद पूछो न —"

"नही, तुम पूछो।"

"बीच के कमरे का ताला किसने खोला है?"

"कहो दीदी कि मैने खोला है।"

"तुम कहो कि मैंने खोला है।"

"अब समझ गया।"

दोनों हँस पड़ीं। दोनों की हँसी सुनन्द के मन को गुदगुदाने लगी। हँसी दबाकर सुनन्द ने गम्भीर होकर कहा—

"आज मैं कटक जाऊँगा। दोपहर के बाद बारिश हो सकती है। इसलिए सवेरे-सवेरे ही चला जाऊँगा।"

"दीदी, कल इस समय तक तो वे आये भी नहीं थे। हाँ, दिन के हिसाब से अब दूसरा रोज चल रहा है। रात के हिसाब से पहला।"

"सुनो, एक जरूरी काम छोड आया था। अभी याद आया है। जाना ही पड़ेगा।"

"अरी ललिता, गुड़ के कमरे मे चीटियाँ लग गई होंगी। साफ करने के लिए राजीव डरता रहेगा। फिर भी, गाँव आने के पहले अगर वह जरूरी काम याद आ जाता तो धूप मे इतनी दूर आने की तकलीफ करने की जरूरत नही पडती।"

"दीदी, शायद किसी को वचन देकर आये होगे।"

"हाँ-हाँ, व्यापारी है न? वचन देते है, और गला भी देते है। इसलिए घर पर मन नही लगता। चाँद को देखते-देखते आधी रात हो जाती है।"

सुनन्द भी हँसने लगा। नन्दिका और ललिता एक-दूसरे को देख कर हँस रही है। उसकी तरफ देख रही है। उसे लगा जैसे दुनिया आज बिलकुल बदल गई हो। पहले से सलाह करके दोनों आज उसके साथ परि-हास कर रही हैं। दोनों में यह ढंग वह आज पहली बार देख रहा है।

सोचकर सुनन्द ने मुँह गम्भीर किया। उठ खड़ा हुआ। पलंग के ऊपर से बनियान लेकर पहनी। कुर्ते को हाथ में लेकर बड़े आईने के सामने खड़ा हुआ। अपनी परछाई की तरफ देखकर कहने लगा, 'सुनो, वे है दो। मैं अकेला ही था। अब से हम दो बनेंगे। जोड़े का घोड़ा बराबर नहीं है। सुनो, मेरे 'का', सुनन्द से आज कोई बात नही करती है। अब वह कटक जा रहा है। तुम उनसे खबर दे देना।'

"दीदी, आओ हम भी उसी ढंग से चार बन जायँगी।"

नन्दिका का हाथ पकड़कर ललिता सुनन्द के पीछे खड़ी हुई। इस तरफ नन्दिका उस तरफ ललिता। दोनो के बीच और दोनो के आगे सुनन्द खड़ा है। तीनो के शरीर की हँसती हुई परछाई। तीनों शरीर पास-पास खड़े होकर आईने के भीतर एक हो गये हैं। और, उसी एक ही शरीर के सिर तीन है।

चाहे गृहस्थ मर जाय, लेकिन सौत को विधवा होना चाहिए। वही पुराने जमाने से यह प्रवाद है, लोगों के मुँह पर। यह अनुभूति सच हो या झूठ हो, किसी आदमी की दो पत्नी है, यह सुनने से ही मन मे कौतूहल जग उठता है। तलाश करके जानने की इच्छा होती है।

राग-रोष। फेंकना और तोड़ना। वाक्युद्ध। चप्पल पकड़ना। डलिया की तरह मुँह। दूसरे का मजा देखने का आग्रह, लेकिन सहानुभूति का दिखावा। पीठ के पीछे खिल्ली उड़ाना। आज लक्ष्मी की प्रशंसा है, कल उसकी निन्दा और सरस्वती की प्रशंसा। पल भर के बाद फिर सरस्वती होती है बातूनी और कोढ़ी। फिर कभी-कभी कितनी सुन्दर दीखती हैं दोनो, जैसे लक्ष्मी और सरस्वती।

नन्दिका यह जानती है। ललिता भी जानती है। गाँव की औरतों का परिहास भी कानों मे आया है।

कानों में आया है—बिचारा नरसिंह अपने घर के बारे में सोच-सोचकर पत्थर बन गया है, वह क्या करेगा? बिलकुल एक जैसी साड़ी और एक जैसे गहने लाया है, दोनों को एक साथ ही पहनाने जा रहा है। लेकिन किस हाथ से वह किसको देगा? पहले किसके मुँह की ओर देखेगा? पहले किससे बात करेगा? बीच के कमरे मे चार-

पाई डालेगा या दोनों के बीच मे बिस्तरा बिछायगा, लेकिन दाहिनी तरफ कौन और बाई तरफ कौन ?

गॉव की मंथराएँ तदंत करने लग जाती है। हताश होकर सुनन्द के घर से लौट आती है। उस घर मे सौत नही है। नन्दिका इतनी निर्लज्ज है, छोटी सौत को गोद मे बिठाकर खाना खिलाती है, जैसे सात साल की लड़की !

और सुनोगे ?—ललिता का सिर काढ़ देती है, माथे पर सिन्दूर, आँखों मे काजल, पैरो में मेहदी लगाकर अपने हाथ से साड़ी पहना देती है। लाड करती है। आधी रात को साथ लेकर गृहस्थ के पास छोड़ आती है।

ठहरो-ठहरो, एक रोज जरूर मालूम हो जायगा। यह अभिनय खत्म हो जायगा और तमाशा शुरू हो जायगा। दुश्मन हँसने लगेंगे। नन्दिका ने ही तो सब किया है। मन्थरा के मन के उद्वेग को उसने मुँह की हँसी से कुचल दिया है। फिर भी वह क्यो रोती है ? पागल के समान अँधेरे मे अपने को सजा दिया है। मौत को पास बुला लिया है। आँखों से आँसू बहाए है। रात जगकर मिट्टी के ऊपर उदास पड़ी रही।

लोग जो कहते है वह झूठ नही है, उसने ही यह जटिलता पैदा की है। फिर भी उसकी अपनी कल्पना ने ही चिनगारी के समान उसके छटपटाते हुए पत्नीत्व को जलाया है। रात को वह सौत बनी है। दिन को माँ, भाभी, और बडी बहन बनी है।

दर्पण मे तीन हँसती हुई मूर्तियों की परछाइयों के पीछे कमरे के खुले हुए दरवाजे की छाया पड़ी है, नन्दिका के छटपटाते हुए भूखे कामना-राक्षस के भयंकर मुँह के समान। जैसे वह इस घर के सब व्यक्तियों के सुख, आनन्द और शान्ति को ग्रस लेगा।

नन्दिका की छाती धड़कने लगी, जो काम तुमने किया, उसको

ललिता कैसे समझेगी । वह बेचारी कुछ नही जानती । परछाई के भीतर का मलिन मुँह सबकी नज़र मे पड गया । एक क्षण में ही ललिता के मुँह पर बादल छा गये ।

इस घर मे आये हुए एक साल हो गया है । अब तक उसने सौत को नही देखा है । नन्दिका को देखने से, उसका आदर स्नेह और भी बढा है । उसकी बाते सुनने से वह यह महसूस करती है जैसे वह नन्दिका की लड़की, ननद या छोटी बहन हो । कभी-कभी उसकी गोद में भी सोगई है, कन्धे पर मुँह रखकर अभिमान भी किया है। घाव ठीक किया ही है । पैर दबाया है, सेवा की है । सजाया भी है ।

फिर भी मन मे यह ईर्ष्या जग उठी है—नन्दिका इस घर की मालकिन है । और वह है केवल परिचारिका । अपने भीतर की सन्देह की आग मे वह जलने लगी है । 'क्यो वे उस कमरे मे इतनी बातचीत कर रहे है ? इतनी बातचीत ?'

नन्दिका की पुकार आई है—ललिता । सन्देह दूर हट गया है, फिर दौड़-दौडकर लौट आने के लिए । रुग्ण मुँह से उन्होने कितना लाड़ किया है । सन्देह करने के लिए अवकाश भी कहाँ है ?

जब लड़की बाप के घर में रहती है—कभी-कभी स्वप्न के कुहरे में तैरने लगती है । लेकिन सास के घर मे कुहरे की जगह सरोवर देखती है —निर्मल, नील, तरग-चंचल, शीतल जल । उसमें वह केवल स्नान नही करती, कुमुद और कमल की हँसी उसकी आँखों में पुलक जगा देती है । उसे पीकर उसका मन तृप्त हो जाता है । फिर मन रोने लगता है ।

जानती हुई भी वह नही जानती है नन्दिका के हँसते हुए आग्रह के

पीछे तप्त मरुभूमि का हाहाकार छिपा हुआ है। वह है दीदी, लेकिन दीदी भी नारी है। युवती है। प्रेम के जिस सरोवर के किनारे खड़ी होकर उसने ललिता को भेज दिया है उसकी सजल और व्याकुल आँखें उसी सरोवर के सलिल की तरफ देख रही है।

नन्दिका उसकी दीदी नहीं है, संसार के अर्थ में उसकी सौत भी नही है। वह उसकी संगिनी है। हाथ पर हाथ रखकर दोनों अब एक साथ चलने लगेंगी। नन्दिका की रक्त मास की देह के नीचे वह अपने को भी अनुभव करने लगेगी। अब तो बीच का दरवाजा खुल गया है, छिपी हुई ईर्ष्या और सन्देह का दरवाजा खुल गया है। कौनसा कमरा नन्दिका का और कौनसा ललिता का? कौनसे स्वामी उसके और कौनसे नन्दिका के?

ललिता की परछाई हँस उठी। नन्दिका की भी। सुनन्द का 'का' मुग्ध होकर देख रहा है।

नन्दिका बोली "ललिता, उनसे बात न करेगी, लेकिन उनके 'का' से बात करने में क्या दोष है?"

ललिता ने कहा, "बहुत अच्छा। सुनो जी 'का', उनको कटक जाने दो, तुम ठहर जाओ।"

मुँह फिराकर सुनन्द ने दोनों के हाथ पकड़े। हँस-हँसकर कहने लगा, "मेरा कटक जाना बन्द हो गया। 'का' रहेगा तो मुझे भी रहना पड़ेगा। लेकिन सुनूँ तो तुम दोनों को आज क्या हो गया है। मुँह सूखे-सूखे मालूम पड़ रहे है। सूखे मुँह के ऊपर हँसी छूट रही है। यह अभिमान किसलिए?"

"ललिता जवाब देगी।"

"नहीं, नन्दिका जवाब देगी।"

"यह क्या ? वह तुम्हारी दीदी है न ?"

"अब वह बात नहीं चलेगी। अब आज से वैसा पुकारना बन्द हो गया। दीदी बनकर वह मुझे सता रही है। इसीलिए आज बीच का दरवाजा खुल गया। वह मेरी साथिन है।"

नन्दिका चौक उठी। "तू यह क्या कह रही है, ललिता ! जानती नहीं मैं तुमसे आठ साल बड़ी हूँ। मैं तुम्हारी दीदी हूँ।"

"नहीं, नहीं—आज से दोनों की उम्र एक हो गई है। तुम मेरी 'सा' हो। और मैं बनूँगी तुम्हारी 'का'।"

"पागल हो गई हो ?"

"नही तो !"

"क्या मेरी सौत बनने की इच्छा है ?"

"ऊँ हूँ। 'का'।"

"छि., लोग हँसेगे।"

"क्या मैं उसके लिए रोऊँगी ?"

"तुम्हारी आँखों के आँसू मैं सह नही सकूँगी।"

"और तुम्हारी आँखों के आँसू मै कैसे सहूँगी ?"

सुनन्द तन्मय होकर देख रहा था। बोला, "मैं उसका समाधान किये देता हूँ।" नन्दिका के कान के पास चूमकर कहा, "आज से तुम 'सा' बनीं।" मुँह फिराकर ललिता को लाड़ किया। बोला, "और तुम उनकी 'का' बनी। मैं जाता हूँ, माँ से कह दूँगा।"

"क्या शर्म नही लगेगी ?" नन्दिका ने पूछा।

"क्या शर्म नहीं है ?" ललिता पूछने लगी। दोनों प्रश्नों के जवाब सुनन्द ने सिर हिलाकर दिये। वह माँ के पास जाने लगा।

सामने तुहिना की तस्वीर। तुहिना की बातें कानों में गूँज उठती है। जो करने की हिम्मत उसकी अब तक नहीं हुई थी, आज वह हो

गया है। 'सा' या 'का' किसने किया है उसे मालूम नही है। उसे लगता है जैसे उसकी मर्त्य कुटी मे स्वर्ग की सुषमा उतर आई है। दोनो उसकी साथिन है, जीवन की सगिनी है। दोनों के हाथ पकड़कर वह जीवन के पथ पर अब चलने लगेगा। दोनो उसकी 'सा' और 'का'—'सा-का'। दोनों उसकी दो सखियाँ है—दो आँखे।"

"**घर**-घर मे भीड़ लगी है, औरतों मे चर्चा चल रही है—'वे बेहया है, केवल दिखा रही है, अपने भलेपन को जाहिर कर रही है। अरे वाह रे—एक 'सा', और फिर एक 'का'। नमक हाँडी को खा जाता है। मन के भीतर ईर्ष्या खाए जा रही है। ठहर जाओ, एक दिन जरूर देखोगे, फिर वे लोग झगडकर बाहर निकलेगे। लक्ष्मी और सरस्वती भी सह नही सकी। इनकी तो बिसात क्या है।"

ललिता ने कहा, "कनी दीदी क्या कह रही है तुमने सुना ?"

नन्दिका बोली, "उनका कुछ भी कसूर नही है। संसार मे जो होता है, वे लोग वही कह रहे है। उनकी आँखों के सामने हजार किसम की तस्वीरें अब खड़ी हो गई होंगी। हमारा सम्बन्ध, हमारा चलन उनको जरूर नया-सा मालूम होता होगा। उनकी बातों को हॅसकर उड़ा नहीं देना चाहिए। धीरज के साथ सुनना चाहिए और विचार करना चाहिए, जिससे कि उन्हें तालियाँ बजाने का मौका नही मिले, उसके लिए हमें होशियार रहना चाहिए।"

नन्दिका ललिता का सिर बाँध रही है। दिन की बेला को छिपा रही है। आज पूर्णिमा है। आसमान पर मेघ की फौज आगे बढ़ रही है। आज दिन-भर स्वामी के साथ किसी की भी ज्यादा मुलाकात नही हुई है। सवेरे से ही वे खेत की ओर चले गये थे। करीब दोपहर के

समय घर लौटे। झट से खाना खाकर फिर बाहर चले गये। गाँव में आज सभा है। समुदायिक खेती होने वाली है। भूदान यज्ञ के बारे में विचार हो रहा है। वे वही है। कब घर लौटेंगे पता नही।

ललिता की बात नन्दिका के मन में चुभ गई। उसने जवाब नहीं दिया। लम्बी साँस ली। पिछली रात की अनुभूतियों की स्मृति उसे विचलित करने लगी।

वे कहाँ गये, घर मे किसने अँधेरा किया। आँखें खोलने से खिडकी के उस तरफ की रोशनी नजर आती है। जैसे छाती के भीतर साँस अटक रही हो। जो बिलकुल सच है, उस पर विश्वास करने के लिए मन बिलकुल राजी नही होता। भोलापन हो या एक क्षण की उत्तेजना हो जिसकी उसने खुद सृष्टि की है, अब उसका मन उसे सह नही सकता।

कान देकर सुन रही है। रात आज बिलकुल नीरव नही है, झीगुर की अविराम आवाज कानो मे आरही है। सिर चक्कर खा जाता है। ललिता उठ बैठी, पलंग हिल गया। आवाज हुई। भय से वह अस्थिर हो उठी, जैसे बाहर जाने का भी उसका कोई अधिकार नहीं है, जैसे उसने चोरी की हो। उन लोगो की निश्चिन्त नीद टूट जायगी। नन्दिका पूछ बैठेगी, 'कौन है ?' वह उसका क्या जवाब देगी ?

बैठी हुई नन्दिका ने तकिये के ऊपर सिर रखा। याद आई, उसने खुद कहा था—'सुनो, मेरी 'सा' ने मिट्टी मे सोकर रो-रोकर रात बिताई थी। उसके अकेली रहने से उसके बीमार और कमजोर मन में बहुत दुख होता है। तुम वहाँ जाओ, नही तो मैं उसके पास सोने जाऊँगी। वह मुझे किस्सा सुनाती रहेगी।'

'मुझे बहुत नीद आ रही है। तमाम दिन यहाँ-वहाँ होकर मैं थक गया हूँ। किस्सा सुनने के लिए मेरा आग्रह नही है। मैं यही सो जाता हूँ, तुम जाओ अपनी 'सा' के पास सोओ और किस्सा सुनती रहो।'

'सा' रसोई घर में है। सब कुछ सजाकर ताला लगाकर आते-आते अब उसको एक घण्टा लग जायगा। आओ तुम सोओ। आओ।'

जैसे एक आवारा लडके का हाथ पकडकर माँ उसे पाठशाला को ले जाती है, सुनन्द का हाथ पकड़कर वैसे ही ललिता उसे दूसरे कमरे में ले गई। एक अस्वाभाविक वीरता का प्रदर्शन करके वह अपने कमरे में लौट आई। दरवाजा बन्द किया, और रोशनी बुझा दी। पलंग पर पड़कर केवल काँपने लगी। उसने क्या किया है? अच्छा या बुरा? अपने-आप को तसल्ली देने लगी—'वह तो कोई दूसरी नही है। वह मेरी है, क्यों मैं इतनी स्वार्थपर बनूँगी?'

सोचते-सोचते थकी हुई आँखों मे नीद आगई। स्वप्न देखने लगी—कितना भयंकर है वह स्वप्न। नींद टूट गई। हाथ से टटोलने लगी। जिसे टटोल रही थी, वे नहीं थे।

धीरे-धीरे पलंग से नीचे उतर आई। खिड़की के पास गई और बाहर की ओर देखने लगी। चाँद नीचे आगया था। बादलों के साथ आँख-मिचौनी खेल रहा था। ईर्ष्या, स्वार्थपरता, भय, निराशा और अभिमान की आड़ में चंचल, अधीर, अनिश्चित और डोलते हुए मन की आँख-मिचौनी के समान। रोशनी और छाया। आशा भरी हरियाली प्रकृति देख रही है। अलस अंग के इशारे से रोशनी को या बादलों को आमंत्रण दे रही है।

ललिता देखने लगी। आँखों से अनजाने में ही आँसू गिर गये। मुँह फिराया। बीच के कमरे का दरवाजा बिलकुल खुला पड़ा है। यंत्र-चालित के समान वह लड़खड़ाती जाने लगी। छाती काँप रही थी। कैसा अन्याय करने के लिए अब वह आगे बढ़े रही है। हाथ मुट्ठी बाँध रहा था। नन्दिका के गले की तलाश कर रहा था। जिस नन्दिका का इलाज करने के लिए जीवन न्यौछावर करके उसने सेवा की थी, आज

उसी का जीवन वह लेने जा रही है। वह उसकी 'सा' नही है, सौत है, दुश्मन है, दुखों का कारण है।

अलमारी पर हाथ लग गया। आवाज हुई। डर के मारे उसी अलमारी के सहारे खड़ी होगई। पैर काँप रहे हैं, छाती धड़क रही है। सिर चक्कर खा रहा है। जैसे जान चली जाने वाली है। शायद साँस की आवाज उन लोगों के कानों तक पहुँच रही होगी। रह-रहकर ललिता साँस ले रही है। पैर आगे नहीं बढ़ते, मन के भीतर से कोई इशारा कर रहा है, लौट जाओ। कोई पुकार रहा है, छिः छिः, 'सा'—

उस घर का दरवाजा बन्द है? हाथ आगे बढ़ रहा है। अनुभव हो रहा है कि बन्द नही है। हाथ से और थोड़ा खोल दिया। मानो वह मूर्च्छित हो जायगी। पलंग पर साफ सफेद रंग की मच्छरदानी। घर अँधेरा है। समताल साँस की आवाज से मालूम हो रहा है कि दोनों अब निश्चिन्त सो रहे है। चम्पा फूल की महक आ रही है।

वह भी जरूर जायगी।

देहलीज के पार होकर भीतर जाने की शक्ति नहीं होती। अलमारी के भीतर से पुतलियाँ स्थिर दृष्टि से देख रही है। जैसे वे भी ललिता का मतलब समझ गई हों। छिपकली की टिक-टिक की आवाज पूछ रही है, उस तरफ कहाँ जा रही हो? पुतलियाँ भी पुकार उठेंगी, उस तरफ कहाँ जा रही हो?

करवट बदलने का संकेत—लम्बी साँस।

अब वह उठ पड़ेगी। पूछेगी—'कौन? 'का'? क्या बात है? अरी, तू काँपती क्यों है? एँ रोती भी है? सह नहीं सकती? मुझे मालूम था कि तुम्हारी हिम्मत टूट पड़ेगी। भलेपन की आड़ से अभिमान और ईर्ष्या निकल पड़ेगी। मुझे मालूम था कि तू सह नहीं सकेगी। मैं भी सह नहीं सकी थी। अपनी दृढ़ता के ऊपर मेरी आस्था नहीं थी।

अपने ऊपर अविश्वास करके बीच का दरवाजा मैने बन्द कर रखा था। मेरा प्रहरी वही ताला। और उसकी चाबी मैने कहाँ-कहाँ छिपा रखी थी।'

ललिता निश्चल। कौन बाते कर रहा है ?

नन्दिका की साँस।

'मैं कर सकूँगी लिलता, मैं तेरी 'मा' नही हूँ, तू भी मेरी 'का' नहीं है। मैं तेरी सौत भी नही हूँ। दीदी, दीदी यहाँ आ जाओ। मैं जाती हूँ। उस कमरे का दरवाजा बन्द रहेगा। फिर ताला लगेगा। फिर मैं जमीन पर लोट जाऊँगी। रोने लगूँगी। उसमे तुम्हारा क्या ? तू आजा।'

'तू आजा'—

पगली-सी ललिता लौट आई। अपने तकिये पर मुँह रखकर अपना दुख दबाकर कहा, 'नही, नही, मैं तुम जैसी कमजोर नही हूँ। दरवाजे पर ताला नहीं लगेगा। मेरे मुँह पर ताला लगेगा।'

दोनों के मुँह पर ताला लगा है, मुँह खोलने से दोनो के मुँह से जो भाषा निकलती है उसमे परस्पर के प्रति केवल स्नेह, सहानुभूति और व्याकुलता भरी रहती है। सुनकर लोग अचम्भित हो जाते हैं। एक-दूसरी के बिना एक क्षण रह नहीं सकतीं। दूसरी को खिलाने के पहले एक खाने नहीं जाती। जैसे खीर और नीर की प्रीति है। इस कलियुग मे उसकी मिसाल नहीं, सतयुग में भी सम्भव नही हुआ था।

सुनन्द कब से कटक चला गया है। बहुत काम रहने के कारण वह घर नही आ सका था। अब दशहरा नज़दीक आगया है। इस बीच वह जितनी भी बार आया था, दो-तीन रोज से अधिक नही रह सका।

किसी एक के प्रति उसने पक्षपात नही किया है। दोनों ही उसकी पत्नी हैं। दोनो समान है। एक के मुँह से दूसरी की प्रशसा। माँ के मुँह से वह दोनो की प्रशसा सुनता है।

माँ दिनो दिन अचल होती जा रही हैं, उम्र ज्यादा नहीं हुई, फिर भी सिर के बाल सफेद हो गये है, दाँत गिर पड़े है। आँखों पर पर्दा पड गया है। हाथ-पैर काँप उठते हैं। चलते वक्त लगता है जैसे गिर पडेगी। दोनो बहुओ और कनी के सहारे आती-जाती है, ललिता की सेवा मे वे खुश होगई है। केवल एक साल की बहू लेकिन नन्दिका से भी अनेक दृष्टि से ज्यादा। उसकी माँ नही थी, उसने यह सब कहाँ से सीखा है ? अच्छे कुटुम्ब की और अच्छे गाँव की लडकी।

नन्दिका उससे ज्यादा। माया नही है, आत्मा पर भेद भी नहीं है। उसे वह गोद में लेकर सोती है, उसके पैर दबा देती है। बडी और छोटी की बिलकुल भावना नही है। अपना पराया भेद भी नही है। आदमी के हाथ चिट्ठी भेजकर उसने ललिता के भाई को बुलवाया था। वे यहाँ सात रोज ठहरे। जाते वक्त कहकर गये, "मौसी, कौन नन्दिका और कौन ललिता, यह मुझे पता भी नहीं लगा, दोनों मेरी बहनें है, दोनों को ही मैं दशहरे पर उनकी भाभी के पास ले जाऊँगा।"

"वे तुम्हारी बहनें हैं, ले जाना चाहोगे तो कौन मना करेगा ?"

वजनदार लिफाफे को खोलकर भाभी चकित होकर देखती रही। बिलकुल छोटी-सी चिट्ठी—ललिता मेरे प्राणों से अधिक है। घर की हालत याद करके अगर वह रोती रहेगी तो मेरी आँखें भी कैसे न रोयेंगी। इतने में भी बन्धक रखे हुए गहने और जमीन वापिस नही मिली, तो और कितना चाहिए जरूर लिखना। नही तो हम दशहरे पर बिलकुल नही आयेंगी।

'एक हजार रुपये। काफी से भी अधिक।'

'उतने में ही हो जायगा।'

"अरी 'सा'—

"क्या ? रो रही हो ? मेरी भाभी ने मेरे पास चिट्ठी लिखी है। लेकिन वह तुम्हारे पास कैसे आई ?"

"मेरी चिट्ठी भी तुमने पढ़ी है ?"

"बिलकुल। लेकिन मुझसे क्यों छिपा रखी थी ?"

ललिता चुप हो गई।

नन्दिका बोली, "तुम्हारे भीतर इतना कपट भरा हुआ है ? चाबी लेकर बक्सा खोलकर तुमने रुपये क्यों भेज नहीं दिये ? वे लोग दुख में रहेंगे, और हमारी पेटी मे रुपये रखे रहेंगे ?"

"तुमने उनसे पूछा था ?"

"उनसे क्यों पूछूं ? पूछने से उनके मन मे दुख होता। उन्होंने यह सम्पत्ति मुझे दी है और मैने तुम्हारे लिए ही इसको जमा कर रखा है।"

ललिता ने लम्बी साँस ली।

"तुम समझ नही सकोगी 'का', तुम्हारे गर्भ की एक सन्तान देखने से मेरी आँखें पवित्र हो जायँगी। मेरी सचित की हुई सब सम्पत्ति उसकी ही होगी, उसी के लिए तुम यह सब अपने पास रखोगी। मेरे और अधिक दिन बाकी नही है।"

ललिता विचलित-सी हो गई। आँखों मे आँसू पोंछकर कहा, "तुम यह सब क्या कह रही हो ?"

"मुझे वैसा ही लगता है, शरीर अच्छा नहीं लगता, छाती काँप रही है। कभी-कभी सिर घूम जाता है। कभी-कभी आँखों के सामने अँधेरा-सा मालूम होता है, रात को स्वप्न देखती हूँ—मेरी शादी हो रही है। ससुराल जाते समय सब मेरे लिए रो रहे है। मैं पालकी पर जा बैठती हूँ। और मुझे लेकर वे लोग कहीं भाग जाते हैं। ये लो, सिर घूमने लगा है।

ललिता के कंधे पर नन्दिका ने अपना सिर रखा। आँखें मूंद लीं;

ललिता उसे जकड़ने लगी। दोपहर बीत चुका है। बाहर कड़ी धूप। घर में कोई भी नही, कनी भी कहीं चली गई है, अब वह किसे बुलायगी ? नन्दिका ने आँखे खोलीं, सिर ऊँचा किया, बोली, "क्या किसी का डर है ? कभी-कभी ऐसा होता ही है, और अपने आप अच्छा भी हो जाता है।"

"तुम सो जाओ तो दीदी।"

नन्दिका सो गई।

"तुम्हारी तबीयत इतनी बिगड़ गई, यह बात तो तुमने कभी नहीं कही थी। वैद्य को बुलाऊँ ?"

"नहीं।"

"मैं उनके पास चिट्ठी लिखती हूँ, कटक से साथ मे डाक्टर ले आयें, देर हो जायगी तो आफत आ सकती है। मैं इतना मना करती हूँ, फिर भी तू चूल्हे के पास जाती है।"

"तुझे मेरी कसम, उन्हें कोई भी बात मत लिखना, डाक्टर वैद्य की मुझे जरूरत नहीं। बीमारी का इलाज होना है तो अपने आप हो जायगा। नहीं तो जो होना होगा जरूर होगा। यह बीमारी मेरी तीन साल से है। किसी से नहीं कहा, बीच-बीच में ऐसा हो जाता है, फिर अपने आप अच्छा हो जाता है। केवल कनी को मालूम है।"

ललिता नन्दिका का सिर सहला रही है, हँसते हुए मुँह से नन्दिका देख रही है। सोच रही है, सब झूठ है। ऐसा बहुत बार होता है। कनी छिप-छिपकर देवताओं की मनौती करने जाती है, भोग लगाती है, कहना नही मानती, देवी का सिन्दूर नन्दिका के कण्ठ में लगा देती है, मुँह में तुलसी देती है, सारी रात तुलसी के चबूतरे पर प्रार्थना करती है।

उपवास करती है। आँखों से आँसू बहाती है, सोचती है, यह अपराध उसी का है, नन्दिका को वह इसलिए लाई है। फल नही फलेगा तो कसूर उसका ही है, फूल की माला लेकर देवताओ के पास दौड़ती है। नन्दिका कभी-कभी उसे जो पैसा देती है, जब वह नन्दिका के लिए इकट्ठा कर लेती है, देवता को भोग लगाकर बाललीला कर देती है। गाँव की औरतें कहने लगती है—मधुशैय्या की रात को जो कनी को देखकर चले गये थे, इस बूढेपन में फिर वह जरूर आयेगे, हाथ पकड़कर ले जायेंगे।

सुमित्रा जब हँसती है या बात करती है, तब समस्त शरीर मे करती है। वह बोली, "बाहर से विधाता ने किसी को सुन्दर और किसी को असुन्दर बनाया है, लेकिन सबके भीतर को उसने बिलकुल एक ही तरह का बनाया है। कनी की इच्छा हुई, वह मधुशैय्या की रात को याद करके बाललीला कराये। लेकिन इसलिए लोग हँसे क्यों?"

नन्दिका ने कहा, "लोगों को दूसरों की चर्चा करने में खुशी होती है। कहने दो उनकी जैसी इच्छा।"

'कनी किसी देवता के पास गई होगी।' नन्दिका सोच रही है, 'अगर वह सच होगा तो ललिता को एक दिन जरूर मालूम हो जायगा। उसके मन में सुनकर क्या विचार आयेगे? क्या वह सुखी हो सकेगी?'

अगर सच है, तो कितनी विडम्बना की बात होगी। डाक्टर ने मना किया था—'फल नहीं फलेगा।' चुप-चुप मुनन्द से कहा था, 'फल आयगा तो उसी गर्भ में ही मूख जायगा। अगर रह जायगा तो चीरकर निकालना पड़ेगा।' नन्दिका ने सुना था—'पेट को काटना पड़ेगा, छटपटाते हुए मरना पड़ेगा।' इस बार भी कनी दीदी का स्वप्न झूठ साबित होगा। बीमारी हुई है। लेकर ही छोड़ेगी।

ललिता के मन में भावना छटपटा रही है। सुमित्रा ने कहा, बड़ी दीदी को कुछ होने वाला है, कौन जाने, शायद सिर्फ बीमारी ही है।

बहुत बार ऐसी बीमारी उनको होती रहती है, फिर अपने आप अच्छा भी हो जाती है।

लेकिन बीमारी नहीं होगी तो ! वह खुश होगा या दुख करेगा ? अगर वह दीदी, भाभी, ननद या सहेली होती तो ललिता कितनी खुश हो जाती। उसकी भाभी भी कितनी दफा माँ हो चुकी है। चिल्लाती है—मर गई ! जमीन पर छोटा बच्चा रोने लगता है। गोद में लेने के लिए ललिता छटपटाती रहती है। कैसे सात रातें बीतेंगी, ललिता उसे गोद मे ले सकेगी।

अगर 'सा' का लड़का होगा, क्या एक ही लड़के की देख-भाल नहीं कर सकेगी ? औरतें कहती है, यमराज को सात लड़के देना भी अच्छा है, लेकिन सौत को एक भी नहीं। क्यों कहती है ? नन्दिका उसे नही देगी। तो वह क्यों इस घर मे आई है ? कौन उसे लाया है ?

मन रो उठा। मुँह नहीं खोला। मुँह पर हँसी छाई हुई थी। वह नन्दिका के माथे को सहलाती थी। क्या अपने मन की भावना नजर से बाहर आ जायगी ? आँखो की बात तो आँख समझ ही लेती है।

'सा' ऐसी दृष्टि से क्यों देख रही है ? उठकर भाग जाने की इच्छा होती है। पैर नही बढ़ता, वह और ऐसा देख नही सकेगी।

मुँह मोड़कर ललिता नन्दिका के पैर दबाने लगी। आँखें भीग आई। अब आँसू बहने लगेंगे। इस घर में उसका सुख समाप्त हो रहा है। अब वह केवल एक 'का' होकर रहेगी—जिसकी कोई भी हस्ती नहीं है। छाया से भी हीन। छाया की भी तो शक्ल है। अवस्थिति है। लेकिन 'का'—केवल एक अदृश्य परत्व। सिर्फ दूसरे में उसका अवतरण होता है। दूसरे का जीवन, मनोभावना, चलन और अनुभूति, उस पर सबका आरोप किया जाता है।

"तुम रो रही हो ?" उठकर नन्दिका कहने लगी। उसके पैर पर

ललिता के गरम आँसुओं का स्पर्श हुआ। सिर उठाकर फिर पूछने लगी, "तू क्यो रो रही है ?"

"तुमने ऐसी डरावनी बातें मुझसे क्यों कही ?"

"न कहने से भी वैसा ही होने वाला है। मेरी मौत होने वाली है, मेरी भी यही इच्छा है। और कष्ट पाने की बिलकुल इच्छा नही है।"

नन्दिका का आलिगन करके ललिता चिल्लाने लगी, "उस बात को तू मुँह मे मत ला। नही तो मैं रो पड़ूँगी। तुमसे बात भी नही करूँगी।"

नन्दिका को उलटी-सी होने लगी। ललिता की खुली हुई पीठ के ऊपर कै की धारा बह आई।

दशहरा नजदीक आ गया। अब सुनन्द का व्यापार अच्छा चलने लगा है। मन्दी घट गई है। कन्ट्रोल उठ जाने के बाद सैकड़ो दुकाने बन्द हो गई है; आसानी से लाभ लेने का प्रश्न ही नही। प्रतियोगिता का बाजार है, व्यापार की असल परीक्षा शुरू हुई है। सामने दृष्टि रखकर बहुत होशियारी के साथ आगे बढ़ना पड़ता है। धैर्य। हँस-हँसकर बाते। अच्छा व्यवहार। साधुता। किसी को दिया हुआ वचन अवश्य निभाना चाहिए। सुनन्द के यही उपाय है।

इसी नीति के अनुसार राजीवलोचन सब ठीक कर लेता है। दोनों को सख्त मेहनत करनी पड़ती है। एक बाहर की खबरें देखता है तो दूसरा भीतर की। बेचने वालों के ऊपर कड़ी नजर रखनी पड़ती है। कितने ही वफादार होने से भी वे चूहे के समान है। कब क्या कर बैठेंगे, कोई ठिकाना नहीं। थोड़ा-सा असावधान होने से नुकसान या बदनामी। दोनों ही व्यापार के दुश्मन हैं।

घर की खबर लेने के लिए समय नहीं है। चिट्ठी लिखने का भी

समय नही है । रोज का काम खत्म करते-करते ग्राधी रात हो जाती है । फिर भी ग्रॉखो में नीद नही ग्राती । रामलाल को जवाब दिया गया है, सरसों के तेल के लिए कल तीन हजार रुपया देना पड़ेगा। इनकम टैक्स की ग्रपील की सुनवाई ग्रभी तक नहीं हुई है। पॉच फुटकर व्यापारियों के पास डेढ हजार बाकी पड़ा है। परिशोध करने का नाम भी नही लेते है। वकील से नोटिस दिलाना पड़ेगा।

ग्रखबार मे ग्रक्सर रोज निकलता है—दिन मे भी भीषण डकैती। रात की बात तो छोड़ दो। नीद टूट जाती है। घर मे ग्रधेरा है। हाथ के पास स्विच। फिर रोशनी जलने लगी। रात का एक बजा है। सब ठीक है। दोनों तरफ के दरवाजे बन्द है। कुछ भी भय नही है।

दोतल्ले पर खिड़की के पास कोई नही ग्रा सकेगा, लोहे के बक्से पर दो ताले लगे हुए है। चाबी तकिये के नीचे है। हॉ, है तो। दीवार के पास छोटी-सी टेबल पर टेलीफोन, हाथ पहुँच सकता है। भय कुछ भी नही है। ग्रब वह चैन से सो सकेगा। स्विच ऊपर किया। रोशनी बुझ गई। ना—ग्राज ललिता को वह पत्र नही लिख सकेगा।

ललिता की चिट्ठी—सब ठीक है, लेकिन 'मा' की तबीयत ठीक नही है। सिर घूम रहा है, उल्टी ग्रा रही है, बहुत कमजोर हो गई है। किसी के सहारे बिना पलग से उठकर बाहर नही जा सकती। सब कहते हैं कि उसको कुछ होने वाला है। लेकिन वह खुद कहती है, 'नहीं तो, यह मेरी एक बीमारी है, बीच-बीच में ऐसा ही होता था, ग्रब की बार ग्रधिक हो गया है। ग्रब जी नही सकूँगी।' उनकी बात सुनकर डर लगता है, शायद वह मुझसे छिपा रही है। डाक्टर से पूछकर तुम सच बात लिखो।

चिट्ठी का जवाब लिखने के लिए उसे समय नहीं मिला था। इसी बीच फिर दूसरी चिट्ठी ग्रा गई—'मा' की तबीयत कुछ बेहतर है। एक बात मुझे लिखनी ही पड़ेगी। मेरा कोई कसूर हो तो तुम ही कहो। माँ

क्यों मुझ पर बिगडती रहती है ? । 'मा' के पास आधी रात तक बैठी थी । उसके कहने से दूसरे कमरे मे सोने के लिए आई, सवेरे उठने मे थोड़ी-सी देर होगई । कनी दीदी ने जगाया नही । सवेरे से ही 'मा' रसोई मे चली गई । जाने के लिए तो मैंने मना किया था । वही उनको उल्टी आई । विवश होकर बरामदे से वह नीचे गिर पड़ी । पास मे कोई नही था । माँ खुद दौड आई । उनकी आवाज सुनकर मे भी आ गई । कनी भी आई ।

कसूर मेरा हुआ । मै क्यो पहले से नही उठी थी । 'मा' क्यों रसोई मे गई । माँ ने जितनी गालियाँ मुझे दी मै तुम्हारे पास लिख नही सकती हूँ । अच्छा ही है कि मैं गरीब घर की लडकी हूँ । मेरे भाई और भाभी भिखमगे है । लेकिन क्या मैं अपने आप तुम्हारे घर आई थी ? मेहनत करने से ही तो मुझे खाने को और पहनने को मिलता है । फिर भी उतने मे तकलीफ होती है तो मुझे मेरे घर छोड़ आओ । लोगों को सुनाकर मुझे क्यो वे गालियाँ देती रहेगी ।

सुनन्द को नीद नही आती है । बार-बार पढने के बाद ललिता की चिट्ठी कण्ठस्थ-सी हो गई है । परिस्थिति बहुत जटिल है । एक तरफ ब्रह्म-हत्या और दूसरी तरफ गो-हत्या । माँ से कुछ कहना असम्भव है । ललिता को भी सांत्वना दी नही जा सकती । उसी के लिए वह चिट्ठी का जवाब नही दे सका है । घर भी नही जा सकता है । घर मे अशान्ति पैदा हो गई है । उसका समाधान कैसे होगा ? नन्दिका ने क्यों सच बात नही कही ? क्यो इस बात को इतनी दूर बढ़ा दिया ?

क्या किसी कारण से वह ललिता से विमुख हो गई है ? दोनों मे तो घनिष्ठ सम्बन्ध था । अब क्या हो गया ?

बहुत बातों की याद आ रही है—

" 'का' मुझसे कहानी सुनने के लिए जग रही है। तुम यही सो जाओ। मै उसके पास जाती हूँ। मेरा हाथ छोड़ दो।"

"मै भी कहानी सुनूँगा।"

"तो चलो उसके पास। दोनों पुरानी कहानियाँ सुनोगे।"

नन्दिका रोशनी तेज कर देती है। मच्छरदानी नही डाली गई है। ललिता सो गई है। मुँह पर मच्छर बैठे है।

"आ हा, सारे दिन मेहनत करके बेचारी थककर सो गई है। नही उठाऊँगी। वह कल कहानी सुनेगी। इतनी रात तक तुम रोज-रोज कहाँ बाते करते हो? रात बहुत हो गई है।"

ललिता के मुँह से नन्दिका मच्छरो को भगा देती है। मच्छरदानी डाल देती है। "अरे, रोशनी क्यों बुझा दी? अच्छा, सो जाओ।"

अँधेरे मे वह नन्दिका के पीछे-पीछे आता है। नन्दिका मच्छरदानी के अन्दर चली गई। धीरे-धीरे उसे उठाकर सुनन्द कहता है, "मुझे नीद नही आती है। मै कहानी सुनूँगा। तुम कहते जाओ। तुम्हारी 'का' निश्चिन्त होकर सो रही है।"

"छोटी-सी कहानी सुनाऊँगी।"

"हाँ बिलकुल छोटी-सी।"

"घने जगल के भीतर—"

'वैसी कहानी मैं नही सुनूँगा।"

"और कैसी कहानी?"

"तुम्हे मालूम नही है। मैं कहता हूँ।"

"कहो।"

"ऊँचे-ऊँचे दो पहाड़ों के बीच—"

"हूँ—"

"एक दर्रा—"

"अरे—"

"तो मै कह नही सकूँगा।"

"मुझे भी नींद आ रही है।"

अँधेरा ही कहानी सुनाता है।

उसी अँधेरे के दुर्भेद्य पर्दे की आड मे ललिता की आँखों से आँसू बहने लगते है। जान चले जाने की तरह लग रहा है। छाती से दुःख उमड़ उठता है। मुँह मे कपड़े भरकर वह पड़ी रहती है।

उसने सोने का बहाना किया था। नन्दिका को नही मालूम था। सुनन्द को भी नही। मालूम न होने दीजिये। दोनों उसके दुश्मन है। वह अब किसी से भी बात नही करेगी।

लेकिन इस घर मे रहेगी कैसे? क्या आत्महत्या करेगी?

सवेरे की रोशनी मे सुनन्द को ललिता का हँसता हुआ मुँह नजर आता है।

वह कह रही है, "कहाँ जा रहे हो? जल्दी लौटना। कही बात-चीत करते-करते देरी मत करना, पहले नाश्ता खाकर फिर जाओगे।"

"अरी 'सा'—"

"ऐसी निगाह मे क्यों देख रही हो?"

"बिल्ली को ढूँढ़ रही हूं।

"दुष्ट।"

सुनन्द पीछे की ओर देखता है। ललिता ने नन्दिका का हाथ पकड़ा हुआ है।

अपने तौलिये को इस कन्धे से उस कन्धे पर रखकर वह बाहर चला जाता है।

मन कहता है, मेरी ललिता कितनी अच्छी है? नन्दिका भी।

आँखों मे नीद नही आती । व्यापार की चिन्ता दूर हट गई है । बाहर और भीतर अँधेरा है । घडी की टिक-टिक और अपनी साँस की आवाज कानो पर आ रही है । रात के बारह बजे है ।

आज उसने जल्दी खा लिया है । ललिता और नन्दिका का काम खत्म नहीं हुआ है । वे रसोई मे है । दोनों कमरों में पलग पर दूध के समान सफेद बिस्तरा बिछा हुआ है । कनी ने फूलो की माला भी झुला रखी है । बिस्तरे के ऊपर भी फूल बिखेर दिये है । नन्दिका की श्रद्धा चम्पा से और ललिता की बेला से । कनी ने दोनों की श्रद्धा को एक साथ मिला दिया है । अपने प्यार से दोनों को बाँध लिया है । उसी के लिए दोनों तरह के फूलो से उसने मालाएँ बनाई है ।

खडा-खड़ा सुनन्द देखने लगा । यह ललिता का कमरा है । उसके मन के भीतर दोनों एक ही आसन पर बैठी है । फिर यह विभेद क्यों ? अपने को वह दो हिस्से बनाकर दो मूर्तियाँ बना नही सकेगा, दोनो मूर्तियों को मिलाकर एक मूर्ति बनाने की शक्ति दुनिया में किसी की भी नही है । सबसे अच्छा है कि वह बीच के कमरे में एक तीसरा पलंग बिछाये । इस कमरे में नन्दिका और उस कमरे मे ललिता—दोनों नथुनों की दो साँस की तरह ।

ललिता इस तरफ आ रही है । बहुत प्रसन्न दीख रही है । शायद दोनों सहेलियो के बीच कुछ हँसी की बात हो रही थी ।

उसने कहा, "इस कमरे से उस कमरे को क्यों टहल रही हो ? जाओ सोओ ।"

"कहाँ ?"

"अच्छा, मुश्किल उसी बात की है ?"

"तुम बता दो ।"

"जहाँ तुम्हारी खुशी ।"

सुनन्द ने ललिता का हाथ पकड़ा । लाड़ किया । कहा, "मेरा मन

केवल इस कमरे से उस कमरे मे और उस कमरे से इस कमरे मे घूमने को हो रहा है।"

"नीद नहीं आती ? तो जाओ बाहर घूम आओ। टार्च भी साथ ले जाओ। आज आकाश में चाँद नही है। लेकिन नक्षत्र भरे हुए है। एक-एक करके सबकी ओर देखोगे। तब आँखो मे नीद आयगी। ऊँघते-ऊँघते घर लौटोगे। जहाँ इच्छा हो सो जाना। साइकिल से कटक से आये हो। एक मोटरगाड़ी क्यों नही खरीद लेते ?"

"खेतो मे मोटरगाडी नही चल सकती।"

"हवाई जहाज ?"

"वह हमारे आँगन मे नही उतर सकेगा।"

"तो बैलगाडी ?"

"हाँ, उसी को ही खरीदना पड़ेगा। कटक से यहाँ आने तक के लिए एक रोज लगेगा। डोलते-डोलते यहाँ पहुँचने तक तमाम शरीर दर्द करने लगेगा।"

"तुम्हारी साइकिल सबसे अच्छी है।"

"लेकिन थकान बहुत लगती है। नीद आती है।"

"आओ।"

हाथ पकड़कर ललिता ने सुनन्द को खीच लिया। दोनों जाकर नन्दिका के पलग पर बैठ गये। "मै मच्छरदानी डाले देती हूँ। भले आदमी के समान सो जाओ। 'सा' गई है माँ के पैर दबाने। नौकर-चाकरों को खिलाकर रसोई बन्द करना आज मेरा काम है। 'सा' एक बढ़िया कहानी कह रही थी, आधी हुई है। वह मेरे पास सोयेगी। कहानी कहेगी।"

"मै भी सुनूंगा।"

"कल सुन लेना। थक गये हो। आज सो जाओ। रात को जागने से तबियत बिगड़ सकती है।"

ललिता ने मच्छरदानी डाल दी। बरामदे का दरवाजा बन्द किया।

रोशनी बुझाकर बीच के कमरे में होकर अपने कमरे में चली गई। सुनन्द निश्चिन्त होकर सो गया।

निशा गरज रही थी। इस घर मे अँधेरा छाया हुआ है। कौन उसके पैर दबा रही है ? नन्दिका। थके हुए शरीर के लिए नन्दिका का पैर दबाना बहुत अच्छा लगता है। ललिता भी ठीक ऐसे ही पैर दबाती है।

कहानी कहना समाप्त करके नन्दिका कब से आ चुकी है। उस कमरे मे भी अँधेरा दीख रहा है। ललिता सो गई है। निशा गरज रही है। सुनन्द की थकी हुई आँखो की पलके बन्द हो आई।

शरीर पर कोमल स्पर्श। नीद टूट जाती है। नन्दिका सो गई थी।

सोई हुई साथी को आग्रही हाथ ने समेट लिया।

सवेरे की ताजी और शीत भरी रोशनी ने सुनन्द की आँखों में कपूर का चूरा डाल दिया। मिट-मिटकर उसने पलके खोली। नन्दिका पास नहीं थी। करवट बदलकर देखा, दरवाजा खोलकर ललिता बाहर चली जा रही है।

वह उठकर बैठा। मच्छरदानी उठाई। यह तो नन्दिका का कमरा है। फिर वह कहाँ गई ?

दूसरे कमरे मे आया। धीरे-धीरे मच्छरदानी उठाई। नन्दिका सो रही थी।.ललिता नही।

अच्छा, ये सब नन्दिका की करामात है। मजाक कर रही है।

धीरे-धीरे उठकर सुनन्द भी उसी के पास सो गया। खुर्राटे मारने लगा। सरक-सरककर नजदीक आने लगा।

सुनन्द निश्चल होकर सोता रहा। आँखों की पलकें थोड़ी-सी खोली और देखने लगा।

नन्दिका की नीद खुल गई थी। वह उठकर बैठी थी। चकित होकर देख रही थी। नीचे उतर आई। मच्छरदानी उठाई। शायद सब समझ गई। हँसा क्यों ? सिर नीचा किया।

सुनन्द ने ग्राँखों की पलकों को जबरदस्ती बन्द रखने की कोशिश की।

शरीर में बिजली की चमक पैदा करके जिसने उसका मुँह चूमा, उसको दोनों बाहुग्रों से ग्रालिगन करने के लिए ग्राकुल हाथों को बढाते-बढाते वह बिजली-सी वहाँ से चली गई।

उसके पीछे मुग्ध दृष्टि भी दौडने लगी।

मधुर स्मृति।

सुख ग्रौर ग्रानन्द के समार में ग्रशान्ति का तूफान क्यों बहेगा ? नन्दिका के सन्तान होने वाली है। डाक्टर भोई ने कहा था कि इसमें बहुत ग्राफत है। ग्रगर बच्चा कभी गर्भ में होगा तो पेट चीरे बिना वह बाहर नहीं ग्रा सकेगा। ग्रौर पेट चीरना बडी ग्राफत की चीज है। बड़े-बडे डाक्टरों ने कह दिया है कि ग्राशका करने का कोई भी कारण नहीं है।

नन्दिका के गर्भ में एक लड़का पैदा होगा—इस वंश में वह दिया होकर जलेगा। ठीक नन्दिका की तरह सुन्दर। दोनों माँ की सन्तान। इस गोद मे उस गोद होकर वह खेलता रहेगा। माँ की मनोकामना पूरी हो जायेगी। उसके लिए वह बहुत उद्विग्न हैं। नन्दिका की चिन्ता मे वह व्याकुल है।

समझा देने से ललिता जरूर समझ लेगी। माँ बूढी हो गई है। उनकी बातों पर ग्रभिमान करना उचित नही है। सुनन्द ने राजीव को पास बुलाया। बोला, "कुछ रोज के लिए ग्रब मैं गाँव में रहूँगा। उस समय तक तुम्हें व्यापार की देखभाल करनी पडेगी।"

"मैं सब ही चला सकूँगा।"

"मोदी के रुपये के बारे में कुछ सोच रहे हो ना ?"

"मुकदमे की तारीख के बारे मे भी। आप नहीं रहेंगे तो वह वकील भी अच्छा काम नही करेगा। अगर अपील मंजूर नही हुई तो केवल इसी सेल टैक्स के लिए ही व्यापार ठप्प हो जायगा। मुकदमे की तारीख में सिर्फ पाँच रोज और बाकी है। उसके बाद घर को जाने से चिन्ता का कोई कारण नही रहेगा।"

घर में थोडी-सी अशान्ति पैदा हो गई है।

राजीव लोचन को वह मालूम था। सुमित्रा ने लिखा है।

राजीव लोचन ने कहा, "संसार में ऐसी बहुत अशान्तियाँ आती रहती है। उसके लिए धीरज चाहिए। चुप रहकर सब बातों को हँसी मे उडा देना अच्छा है। अगर किसी एक का पक्ष लेकर मुँह से एक शब्द निकल जायगा, तो घर और बाहर आग लग जायगी। दो-चार रोज के बाद आप घर आ जायेगे तो सबसे अच्छा होगा।"

उमर से छोटा होने से भी राजीव की बात सुनन्द कभी भी अन्यथा नही करता। सब बातों को सोच-समझकर वह मुँह खोलता है।

बात बदलकर सुनन्द ने कहा, "तुम रुपये के बारे मे मत सोचो। अब सात रोज के लिए हम कही से भी पाँच हजार रुपये उधार ले आयेगे, नही तो घर से लायेगे। आजकल अतनु बाबू भी अच्छा पैसा कमा रहे है ना?"

"तुलसीपुर में उनका जो नया मकान बना है, उसी से तो मालूम होता है। सिनेमा देखना आजकल लोगों को एक बीमारी-सी हो गई है।"

"मैं कहूँगा, यह बीमारी नहीं है, नशा है।"

"हाँ-हाँ, नशा। सिनेमा देखने मे आग्रह कितना है। स्कूल-कालेज के लड़के तो अपने माँ-बाप के पैसे वही उड़ा रहे है। पैसा कहाँ से आता है, वह उन्हें मालूम नही है। दुकानदारों से शुरू करके रिक्शा वाला मजदूर सभी उसी नशे में मस्त हो गये है। सिनेमा का व्यापार एक फायदेमन्द व्यापार है।"

"हम भी एक सिनेमा खोल ले तो कैसा होगा ?"

राजीव उलझन में पड़ गया। थोडी देर सोचकर कहा, "नया व्यापार शुरू करने के पहले हर चीज को अच्छी तरह अजमाकर देखना चाहिए। हमारा जितना अब चल रहा है, उतना ही अच्छी तरह से चलने दो।"

"अच्छा, अतनु बाबू से उधार मागूँगा।"

"देखो।"

दोपहर को अतनु बाबू मे भेंट हुई। रोज उसी समय वे घर पर रहते है। दूसरे समय बाहर-बाहर ही घूमते है। तुलसीपुर में उन्होने अपना एक नया मकान बनवाया है। करीब आधी एकड जमीन पर एक तरफ बॅगला टाइप का मकान। उनकी जमीन पर बगीचा बन रहा है। कतार-कतार कलम किये हुए पेड। खुद तुहिना देवी उसकी देखभाल कर रही है। मलय और छबीला पीछे दौड रहे है। दो मजदूर काम कर रहे है।

पुरानी मोटरगाड़ी तो कब से बेच दी गई है। अब नई गाडी आई है। अतनु बाबू बहुत अच्छी अवस्था में है। ठुनठुनवाला के साथ उधार मिलकर व्यापार करने मे वे आगे बढ़ रहे है। तथापि सुनन्द को रुपये देने के लिए उनकी शक्ति नही है। इसलिए उन्होंने बहुत दुख प्रकट किया "सुनन्द बाबू, अब सब कुछ सिर्फ कर्जे पर चल रहा है—सिर्फ बाहर की दिखावट के लिए यह सब बाहर के कायदे है। अगर नाव डूब जायगी तो अवस्था शोचनीय हो जायगी।"

"क्या फायदा नहीं हो रहा है ?"

"काफी। लोगों के जानने के लिए तो सिनेमाघर अतनु बाबू का है, लेकिन ठुनठुनवाला के साथ जो एग्रीमेंट हुआ है, उसकी शर्तें पूरा करने

के लिए सब रुपये चले जाते है। परिणामस्वरूप अब मैं एक वेतनभोगी कर्मचारी के समान बन गया हूँ। आप मेरे दोस्त है, इसलिए आपसे सच बात कह दी।"

"तो एग्रीमेट को क्यों नहीं तोड़ देते ?"

"वैसा करने के लिए पन्द्रह हजार रुपये मुआवजा देना पड़ेगा।"

"मुआवजा देना ही बेहतर होगा।"

"तुहिना भी वही कह रही है। उनके गहने बेचकर मैं मुआवजा दे सकता हूँ और रिहाई पा सकता हूँ। लेकिन उसके बाद क्या करूँगा, उसी की चिन्ता है।"

"दूसरा कुछ व्यापार ?"

"केवल एक्सपेरीमेंट करने में ही क्या बार-बार नुकसान देता रहूँगा ? अब तो कम-से-कम पाँच सौ मिल रहे है। व्यापार और अच्छा चलने लगेगा तो ज्यादा भी मिल सकेगा।"

तुहिना देवी आई। बैठकखाने में सुनन्द को देखकर उन्होंने नमस्कार किया और कहा, "क्या इतने रोज के बाद हम याद आये है ?"

सुनन्द ने प्रति-नमस्कार किया। हँस-हँसकर मलय और छबीला को पास लाया। दोनों के हाथ में दो पैकेट लेमनचूस देकर तुहिना से कहा, "मुझे माफ कीजियेगा, आने के लिए समय नहीं मिला था।"

अतनु बाबू उठ खड़े हुए। बोले, "मेरा जाने का समय हो गया। अब तुहिना से बात करते रहिये।"

"मुझे भी जाना पड़ेगा।"

सुनन्द उठा। लेकिन आज उसे तुहिना ने रोका क्यों नहीं ? घर की बात भी क्यो नहीं पूछी ? दिल्लगी करने के लिए क्यों नहीं कहा—हिमानी देवी ने आपके बारे मे लिखा है। बाकी सब अच्छा है न ? फिर कब आयेगे ? मुझे न भूलने के लिए नन्दिका को लिख दीजियेगा। ललिता देवी को भी एक बार कटक लाइयेगा।

फाटक बन्द करने के बहाने से घर की तरफ देखकर सुनन्द की आग्रहभरी आँखें जिन्हें खोजने लगी, आज बरामदे पर खड़ी होकर वे फाटक की तरफ देख नही रही थीं, झाड़ू हाथ में लेकर नौकर खड़ा हुआ था और देख रहा था। अतनु बाबू की गाड़ी रास्ते के मोड़ पर पल भर के लिए रुक गई। सुनन्द साइकिल पर उसी तरफ जाने लगा। अतनु बाबू की गाड़ी मोड़ से पार हो गई।

सुनन्द के मन मे अगणित प्रश्नों की लहर आई। हर एक प्रश्न का वही एक ही जवाब,—तुम्हें और नहीं आना चाहिए। इस घर में तुमको कोई नही चाहता है। भागो-भागो।

कुत्ते के शरीर पर बग्गू लगने की तरह सुनन्द भागने लगा। मन का अभिमान मन के भीतर मे चीत्कार करने लगा—वह भी एक सिनेमाघर बनायेगा, नई जमीन खरीदकर बडा मकान बनवायेगा, मोटर गाड़ी खरीदेगा। तुहिना ने उसका जो अपमान किया है, अतनु बाबू ने जिस तरह का अनास्था भाव दिखाया है, उसका बदला लेगा।

"सब करेंगे भाई, लेकिन जल्दी नहीं करना चाहिए।"

"तुम भी मेरे साथ गाँव को चलो। रुपया लेकर आओगे।"

"जरूरत नहीं। सात हजार रुपये वसूल हो जायेंगे। मैंने नोटिस निकाला था। कुछ भी अभाव नहीं रहेगा। आप गाँव को जाइये।"

हर बात में यह राजीव बाधा देता है। एक रोज बीतने से ही उसका निर्णय बदल जाता है। सात दिन बीतने से, रहने दो, बाद मे देखेंगे, ऐसी सतर्कता मन में आती है। एक महीना बीतने के बाद, नहीं किया तो अच्छा ही किया है, करता तो मैं मर ही जाता, ऐसी तसल्ली देने लगता है। अपने को वह खूब बुद्धिमान समझता है।

सब बुद्धि अब नाकाम हो गई है। परिस्थिति बहुत जटिल हो गई है। अब वह किससे सलाह लेगा ? सब उसी के घर की तरफ देख रहे है। मजा देखने बैठे है। भीतर खुश होकर बाहर दुख प्रकट करेगे और कहेंगे, जो घटना स्वाभाविक ही थी वही घटी। किसी को दोप नहीं देना चाहिए।

हँसी-खुशी के संसार में दुख और रोने की बाढ़ आ गई। माँ के पास बैठता तो वह कहती है, "छोटी बहू ने मेरी बातो का जवाब भी दिया। मेरा गुस्सा और भी बढ गया। मैंने भी और चार बातें सुना दी। लेकिन वह भी बन्द नही हुई। मैंने एक शब्द कहा तो उसके ऊपर उसने चार शब्द कहे। छोटे घर की लड़की है। वह बहुत दुष्ट है। अभी उसके गुण सबको मालूम हुए। बड़ी बहू को सन्तान होने वाली है, यह जानकर वह जली-सी जा रही है।"

"माँ तुम चुप हो जाओ—"

"चुप हो जाऊँ तो तुमने पूछा ही क्यों था ?"

"तो कहो तुम क्या चाहती हो।"

"मेरी मौत।"

"मैं सोचता हूँ छोटी बहू को अब अपने मायके को चली जाना चाहिए।"

"उसने तुझे वही सिखा दिया है ना ? इस घर की बहू वहाँ जाकर नौकरानी-सी रहेगी, बरतन माँजेगी और उसे देखकर दुश्मन हँसते रहेंगे। वैसा नहीं हो सकेगा। पहले मेरी मौत होने दो, उसके बाद तुम लोग जैसी इच्छा हो करना।"

बीमार माँ के साथ बहस करके उनकी भूल दिखा देना केवल विडम्बना ही है। वह अनुताप कर सकती है, लेकिन जिसे मौत इशारा करने लगी है, उसके मन मे अनुताप लाना भी अन्याय होगा। उसी ललिता की सब भूल है। बूढ़ी माँ की बातों पर उल्टा जवाब देना बिलकुल उचित नहीं था।

सुनन्द ने माँ के पैरों पर सिर रख दिया। बोला, "सब दोष मेरे है। एक दूसरी बहू घर में लाने के लिए नन्दिका ने जितनी बार मुझसे कहा था, मैने उतनी ही बार मना किया था। गुस्सा भी हो गया था। गोद में एक बच्चा देखने के लिए उसका अभिमान, व्याकुलता और सेवा देखकर विवश होकर मुझे 'हाँ' करनी पड़ी। एक छोटे घर की लड़की को तुमने इस घर में स्थान दिया। उसके लिए मैं नन्दिका को भी दोष जरूर दूंगा।

अभया काँपती हुई उठ बैठी। खोह के समान आँखों में आँसू बह रहे है। दोपहर की जलती हुई धूप भी आँगन में धुँधली-सी मालूम होती है। उनका काँपता हुआ स्वर कहने लगा—"मेरी नन्दिका को कोई कभी भी दोष नही दे सकेगा। वह शुद्ध सुवर्ण है। मैने ही तो सौत लाने के लिए उसे मजबूर किया था। एक नाती देखने से पहले अगर मैं मर जाती तो मेरा प्राण छटपटाता। उसी के लिए।"

'और ललिता ? उसके बारे में क्या कुछ भी नहीं कहना है ? इस घर में आने के लिए तो उसने कभी भी तपस्या नहीं की थी। कभी उतावली भी नहीं हुई थी। वह दुखी हो या दरिद्र हो, वह भी एक लड़की है, उसके मन में भी हरएक लड़की के समान जरूर सपने भरे रहेंगे। एक बूढ़ा स्वामी, सौत, निर्दय निर्मम सास—सपने में उसने कभी भी ये इच्छा नही की होगी।'

सुनन्द का मन कहने लगा। मुँह नहीं खोला। माँ भी उसके बाद क्या कहती रही वह सुन नहीं पाया। ललिता के दुख के मारे सुनन्द का मन हाहाकार कर उठा।

धूप की प्रखरता मलिन हो रही है। ललिता नन्दिका के पास बैठी है। उसके खुले बाल चटाई के ऊपर फैल गये है। मुँह सूखा पड़

गया है। रुग्रॉसा चेहरा। देह पर बिलकुल गहने नहीं है। नन्दिका भी सूखी हुई मालूम हो रही है।

नन्दिका उठ खड़ी हुई। ललिता भी। सुनन्द ने कहा, "माँ नाराज हो गई है। छोटी बातो को मन मे बडा कर रखा है। मैंने समझाने की कोशिश की। मुझसे भी रूठ गई। लेकिन इसके लिए मन मे दुख या अभिमान नही करना चाहिए, गुस्सा भी नही होना चाहिए। उम्र हो जाने से मनुष्य की प्रकृति ऐसी ही चिड़चिड़ी बन जाती है। जिद भी बढ़ जाती है।"

नन्दिका ने कहा, " 'का' को मैं वही कह रही थी। मैंने सब कसूर मान लिया है। 'का' मुझे पलग से कभी नीचे आने भी नही देती। मेरी तबियत ठीक नही है, इसलिए मेरे पास आधी रात तक जागती रहती है। रात-दिन मेहनत करके बेचारी सूख भी गई है। सब मै कैसे सह सकती हूँ। रसोई को जाने के लिए उसने मुझे मना किया था, बहुत-सी कसमे भी खाई थी। रात जगने के कारण उसके उठने में थोड़ी-सी देर हो गई। मैंने सोचा, 'वह सो रही है तो उसको सोने ही दो।' खुद रसोई को चली गई। सिर चक्कर खाने लगा—"

ललिता की आँखो मे आँसू भर आये थे। वह दूसरे कमरे को चली जा रही थी। सुनन्द ने हाथ पकडकर रोका। बोला, "सुनो।"

नन्दिका ने कहा, "कसूर मेरा है। उसका कहना मैंने नहीं माना। माँ से भी मैंने यही बात कही थी। उन्होने कहा, बात को टाल देने के लिए तुम ऐसा कह रही हो। बूढ़ी हो गई है, पहले से मन में कुछ ख्याल रह गया तो वह रह ही जायगा। उनकी बातों पर अभिमान करना अच्छा नहीं है।"

ललिता का हाथ पकड़कर उसने कहा, "आओ मेरी बहन, मेरा कसूर मैं कबूल कर लेती हूँ।"

अब ललिता की आँखों से आँसू बहने लगे। बोली, "मैं किसी को

भी दोष नही देती हूँ। सब मेरी किस्मत का ही दोप है। गरीब घर की लड़की हूँ। माँ-बाप को खा चुकी हूँ। भाभी की गाली-गलौज सहकर मैने नौकरानी के समान काम किया है। खा-खाकर बूढ़ी हो गई हूँ। उनके जवान लड़के के हाथ नहीं पकड़ती तो कुआँरी रह जाती। उन्होंने मेहरबानी करके एक गरीब निराश्रिता लड़की को इस घर में स्थान दिया है। फिर भी, मैंने ईर्ष्यावश उनकी बहू को रसोई मे भेज दिया है।"

नन्दिका ने ललिता के मुँह पर हाथ रखा। विचलित होकर बोली, "तू यह क्या कह रही है ? क्या आदमी स्वप्न नही देखता है ? लेकिन स्वप्न मे देखी हुई बातो को कौन इतना महत्त्व देता है ? क्या तू पागल हो गई है ? वे बूढ़ी हो गई है। तुमने पहले कुछ कहा, इसीलिए तो उन्होंने गुस्से से मन मे जो आया वैसा ही कह दिया।"

मुँह से नन्दिका का हाथ हटाकर ललिता ने कहा, "और कितना सह सकती हूँ ? मन के ऊपर बहुत चोट लगी, इसलिए मुँह से बात निकल आई। क्या मैं अपनी खुशी से यहाँ आई हूँ ? इतने मे ही क्या मैंने बहुत कसूर कर डाला ?"

"कौन कहता है कि कसूर कर डाला ? सब कसूर मेरा है। मैने तो मान भी लिया है।"

"मेरे मुँह पर हाथ रखकर तू मेरे मुँह की बात बन्द करने आती है। उनके मुँह पर तूने हाथ क्यो नही रखा ?"

"इतनी हिम्मत मेरी कैसे होती ? वे बुजुर्ग है उनके मुँह पर हाथ रखना हमारा धर्म नही है। पैरो मे हाथ लगाना धर्म है। फिर क्यो उन बातों की चर्चा हो रही है ? चर्चा करने के लिए तो मैने मना भी किया था। जो कहता है वह बड़ा नही है। सहने वाला ही बड़ा है।"

"जैसे तूने बहुत कुछ सह लिया है। अगर तू मुँह खोलकर वही सच बात कह देती तो उन्होने मुझे इतनी गालियाँ नही दी होती। उनकी गालियाँ सुनने मे शायद तुझे खुशी ही हुई होगी।"

" 'का !' "—

नन्दिका ने जोर से ललिता का हाथ पकड़ा, उसकी आँखो में आग जैसी लपटें निकल रही थी। ललिता जैसी लड़की के मुँह से यह बात ! मन में इतना कलुप ! सामने स्वामी चुपचाप खड़े है। जैसे एक निर्जीव खम्भा या पत्थर हो। इतने रोग के बाद वे समझने की कोशिश कर रहे है—जो कुछ करने से भी सौत किसी हालत में ननद, भाभी, बहन या लड़की नही बन सकती है। अपनी नही बन सकती है। वह केवल सौत ही है। ईर्ष्या, द्वेप, राग और रोष से तैयार की हुई एक मूर्ति ही है।

नन्दिका ने ललिता का हाथ छोड़ दिया।

कुछ जवाब देने के पहले ही ललिता दूसरे कमरे में चली गई।

सुनन्द चकित-सा खड़ा रह गया। एक निगाह से चटाई की तरफ देखता रहा।

क्या वह नन्दिका को दोष दे रहा है ? अनुतप्त मन से कहने लगता है—"अपने कामो की परिणति तुमने देखी, न नन्दिका ?"

हठात् वह कहने लगा, "किसी की कुशिक्षा में ललिता जरूर पड़ गई है। उसका दिमाग चढ़ गया है। उसे अनुशासन चाहिए।"

"छिः छिः ! तुम यह क्या कह रहे हो ? ललिता मेरी छोटी बहिन है। छोटी-सी है। कड़ी बात उसने कभी सुनी ही नहीं थी। सही भी नही थी। इसलिए गुस्सा आ गया है। तुम उसे कुछ भी कह नही सकोगे। अगर अनुशासन चाहिए तो मैं खुद अनुशासन करूँगी।"

"तुम ? कर सकोगी ?"

"असम्भव मत समझो। वह तुमसे स्नेह चाहती है, सहानुभूति चाहती है, अनुशासन नही चाहती है। तुमसे मैं विनती करती हूँ, तुम उसे एक भी सख्त शब्द न कहोगे।"

सुनन्द चुपचाप बाहर निकल गया।

अब भी शाम होनी बाकी है। कटक से आये है। नाश्ता भी नहीं

किया है। सिर्फ बातों में समय निकल गया। जीत किसी की भी नही हुई। सब हार गये।

नन्दिका बाहर आई। दूसरे कमरे की तरफ होकर ललिता रसोई-घर को चली गई थी। रसोईघर से बाहर निकलकर हाथ मे झाड़ू लेकर कनी खड़ी हुई है।

"कनी, वे कहाँ गये ?"

"बाहर ही तो गये है।"

"उन्होने तो कुछ खाया भी नही। कही बहस शुरू हो जायगी तो आधी रात तक चलती रहेगी। बुलाओ तो उनको।"

नीचे झाड़ू रखकर कनी बाहर गई।

अभया काँपती हुई बाहर आई। चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी, "कुछ खाने के पहले वह बाहर चला गया ? क्या नाश्ता नही बना था ?"

"बनने जा रहा है।"

दीवार के सहारे अभया बरामदे पर बैठ गई है। लड़का बगैर खाये हुए बाहर चला गया। उसके मन में बहुत दुख हुआ है। उन्होने क्यों उसके सामने इतनी बातें कह दीं ? छोटी बहू ने भी कौनसा बडा अपराध कर डाला ? उसके मन को चोट लगी, इसलिए तो उसने उल्टा जवाब दिया था।

ललिता को पास बुलाने के लिए मन कहने लगा। वे अपनी भूल कबूल कर लेंगी।

दौड़-दौडकर कनी आँगन मे आई। कहा, "भाभी, गन्धिया कह रहा है कि भाई कटक लौट गये।"

दूसरे रोज शाम को खुद गन्धिया सत्रर कटक मे आ पहुँचा, घर से चिट्ठी लाया था।

नन्दिका की चिट्ठी—"सब अपनी भूल समझ गये है। क्या ऐसे ही शासन करते है? कुछ न कहकर और न खाकर तुम गुस्सा होकर चले गये, तब से माँ बिस्तरे पर पड़ी हैं। किसी से बोल भी नही रही है। केवल रो रही है। खाना-पीना छोड दिया है, बहुत कष्ट पा रही है। तुम तो सब समझ सकोगे, इस चिट्ठी के पाते ही तुरन्त घर आ जाओ। तुमको न देखने तक वे मुँह से पानी भी नही छुएँगी।"

अपनी धैर्यहीनता का कुफल अब समझने के लिए सुनन्द ने कोशिश की। उसने ललिता पर शासन नही किया है। अपनी अविवेकिता के लिए माँ को उसने दुख दिया है, उनके प्राणों को छटपटाया है। अपने मन की बाते वे किसी दूसरे से नही कहेगी। घर लौट जाने की इच्छा तो होती है, फिर भी शर्म-सी लगती है। गन्धिया से पूछने के लिए भी मन चाहता है—'नन्दिका कैसी है? ललिता कैसी है? यह बात क्या गाँव में फैल गई है?'

पूछ नही सका, चिट्ठी का जवाब लिख बैठा।

गाँव की औरते अपना भलापन दिखाने के लिए आ रही है—जैसे वे कुछ नही जानती है। यहाँ मौसी बन जाती है तो वहाँ बुआ। कोई अभया को समझाकर कहती है, "उठो दीदी, किसके ऊपर तुम राग और अभिमान कर रही हो? क्यों अपनी देह और मन को कष्ट दे रही हो? आजकल के जमाने की बहू ऐसी ही है। कुछ नही सह सकती, मुँह पर जवाब देती है। तुम्हारा लड़का नन्दिया कितना अच्छा है। किसी से एक शब्द भी नहीं कहा। घर में पैर रखते ही अपने मन के दुख से फिर लौट गया।"

अभया जवाब देती है—"नन्दिया लौट गया ! मैंने ही तो उसे इस जाल में डाल दिया। नन्दिका फलने वाला पेड़ है। अगर पहले से मुझे कोई कह देता तो ! आज भलापन दिखाने के लिए आ गई हो ! बाँझ-बाँझ करके अफवाह मचाने लग गई थीं, अब क्यों आई हो ? तुम लोगों को कौन बुला रहा है ?"

"मेरी ललिता कभी भी ऐसी नही थी। तुम लोगों की ही कुशिक्षा में पड़कर उसके मन में ईर्ष्या पनप गई है। मुँह पर जवाब दे रही है। तुम लोग यहाँ से चली जाओ। मेरे घर का मामला है, मै उसे खुद निबटा लूँगी।"

और कोई इस तरफ जाकर कहती है, "नन्दी, यह ईर्ष्या नही तो और क्या है ? देखती नही है; कैसे वह छोरी पाँसे के खेल से महाभारत की लड़ाई करने जा रही है। गरीब घर की लड़की जब बड़े घर में आती है, तब ऐसा ही हो जाता है। कौन उसे क्यों क्या सिखायगा ? नही तो, बात कुछ भी नही थी फिर भी रूठ गई। जवान स्त्री है, गृहस्थ को हाथ में लेकर पुतली जैसा नचाना चाहती है।"

नन्दिका जवाब देती है, "दीदी, मेरी ललिता बिलकुल सोना है। उम्र कम है, कड़ी बात सह नही सकती। मन में दुख हुआ है, थोड़ी देर के बाद फिर शान्त हो जायगी। किसी की कुशिक्षा मे वह कभी नही पड़ेगी। अब जाती हूँ, माँ बुला रही है न।"

नन्दिका चली जाती है। घर की ओर मुँह फेरकर देखती है, ललिता के पास भी औरतें बैठी हैं। हँसी खुशी में बातें कर रही है। मन कहता है, 'मेरी 'का' अभिमान बहुत करती है, फिर भी वह बेवकूफ नहीं है।'

एकान्त में तीन बच्चों की माँ कोई पड़ोसिन आकर कहती है, "तुम छोटी हो, किसके लिए अभिमान कर बैठी हो ? मजदूर जब अभिमान कर बैठता है तो उसे अपनी रोजी गँवानी पड़ती है। तुम औरत हो, कहाँ लौट जाओगी ? रोने से, चिल्लाने से या न खाकर अपने शरीर

को नुकसान पहुँचाने से सिर्फ अपना ही नुकसान होगा। लेकिन तुम्हें क्या परवाह ? बहू बनकर तुम इस घर में आई हो, देवता की कृपा होगी तो सात बच्चों की माँ बन सकोगी। बूढी भी अब और कितने रोज जियेगी। कब तक तुम दूसरों के हाथ के भरोसे पर जीवन बिताती रहोगी ?"

ललिता निर्बोध-सी देखती रहती है।

देखकर वह हँसती है, कहती है, "हाँ, नन्दिका बहुत अच्छी है ! छल या कपट जानती ही नही है ! उसने बुढिया को जरूर कुछ कहा होगा, नही तो बिना कारण वे तुम जैसी बहू के ऊपर क्यों गुस्सा हो जाती ? क्या उन पर भूत सवार हो गया था ? एक लड़का होने वाला है, यह मालूम होने से ही स्वार्थ की भावना आ जाती है, लोभ जकड़ लेता है। तुम बच्ची हो। कौन पानी किस रास्ते में जाता है तुम कैसे समझ सकोगी ?"

नन्दिका पास आई। पड़ोसिन की आदत उसे खूब मालूम थी। हार तोड़ने वाली, चुप शतान। बाहर दिखाती है कि बिलकुल तुम्हारी ही है। लेकिन असल मे वह किसी की भी नही है। नन्दिका से वह बहुत डरती थी। उसके पास फटकती नहीं थी।

"क्या खबर है दीदी ?"

"मैं ललिता को समझा रही थी।"

"वह काम मुझसे भी हो जायगा, दीदी। 'का', तुम वहाँ से उठ आओ तो। हमारे घर में हम झगड़ा करें या खाना न खाकर मरे उसमे दूसरो को सिरदर्द क्यों ? हम अपनी बाते सम्भाल लेगी। तुम उठ आओ।"

"क्या मै छोटी-सी बच्ची हूँ ? मनुष्य का जन्म लेकर किसी के साथ एक घड़ी बातचीत करने के लिए भी क्या मेरा अधिकार नही है ? क्या तुम डरती हो कि मै दूसरों की कुशिक्षा में पड़ जाऊँगी ?"

"अपने लिए मै नही डरती हूँ।"

"और क्या मेरे लिए ? इतना अविश्वास ?'

"तुम जाओ दीदी !"

"अच्छा, जा रही हूँ। दूसरो का घर उजाड़ना मेरा काम नही है। लेकिन किसी के घर मे कोई जाता है तो उसे कभी इस तरह नही भगाया जाता।"

"अच्छा तुम जाओ—"

पड़ोसिन उठ खड़ी हुई और वह निःसहाय दृष्टि से ललिता के मुँह की ओर देखने लगी। ललिता को मालूम हुआ जैसे वह उसे व्यग से दुतकार रही हो—'अरी, क्या तुम्हारा जीवन ऐसा ही है ? किसी दूसरे के साथ खुश होकर एक-दो बातें करने का अधिकार भी तुम्हारा नही है ? तुम्हे कृपा करके इस घर मे लाई हूँ, जो ऐसा सोच रही है, क्या तुम हर चीज में उसी के हाथ के नीचे रहोगी ?'

ललिता उठ खड़ी हुई और घूर-घूरकर नन्दिका की ओर देखने लगी। मुँह फेरकर पड़ोसिन से कहा, "इतनी जल्दी क्यो चली जाओगी ? और थोड़ा बैठ जाओ।"

"नही—हम तो खोटे है।"

"और किसी के पास हो सकती हो, लेकिन मेरे पास नहीं।"

पड़ोसिन का हाथ पकड़कर ललिता उसे पलंग के पास ले गई। उसे पलग पर बिठाया और खुद पास बैठी, उसकी छाती थर-थर काँप रही थी, मन ने कहा, अब 'सा' समझ जायगी कि ललिता मे भी अच्छा-बुरा समझने की शक्ति है। उसकी भी एक अपनी इच्छा है, अधिकार है, अपनी इच्छा और अधिकार का प्रयोग करने के लिए उसे दूसरों की इजाजत की कुछ भी जरूरत नही है।

दोनो को चकित करके नन्दिका जोर से हँसने लगी, इसी हँसी की आवाज से ढलते हुए दिन की छाया जैसे काँपने लगी। हँसी बन्द हो

गई। नन्दिका ने कहा, "मन चाही बातें करती रहो, फिर भी मेरी 'का' को तुम लोग मुझसे दूर नही हटा सकोगी—नही हटा सकोगी !"

शाम का समय हो आया है, नन्दिका साँझ का दिया जलाने जा रही है। गन्धिया कल से कटक गया है। मन कहता है कि आज स्वामी जरूर पहुँच जायँ। आज वह खुद रसोई बनायगी। और देखेगी इस घर में आज कौन बिना खाये रहेगा, कैसे अभिमान करेगा।

दूसरी तरफ से कनी की आवाज आई "भाभी, गन्धिया लौट आया है।"

"और तुम्हारे भाई ?"

"काम खत्म होने के बाद आयेंगे। यह लो चिट्ठी।" पड़ोसिन उसी रास्ते से बाहर चली गई। अभया भी देख रही थी, उन्होने कुछ भी नही कहा।

ललिता के हाथ में चिट्ठी देकर नन्दिका ने कहा, "पढो तो क्या लिखा है ? आयेंगे तो चिट्ठी क्यो लिखी है ?"

कनी ने रोशनी उठाकर दिखाई, ललिता मन-ही-मन पढने लगी—'जब तक घर में अशान्ति की आग जलती रहेगी, तब तक बाहर के लोग आकर उसी आग में लकड़ी फेंकते रहेगे। घर को जलकर भस्म होने दो, फिर भी मेरे पैर वहाँ जाने को तैयार नही हैं।'

काँपते हुए हाथों से नन्दिका के हाथ की ओर चिट्ठी बढाकर ललिता चलने का उपक्रम करने लगी।

चिट्ठी के ऊपर निगाह डालकर नन्दिका ने कहा, "वे तो अभी आ पहुँचेंगे। माँ ने अभी तक कुछ भी नहीं खाया है, सुनते ही उनका मन व्यथित हो जायगा। 'का' तुम जाओ और माँ को कुछ खाने को दो। मैं जाकर चूल्हा जलाती हूँ।"

चिट्ठी को कमर में खोसकर नन्दिका ने फिर कहा, "खडी क्यों हो गई ?"

"थोडा-सा लाओ, छोटी बहू। अब नन्दिया दौड़कर आता ही होगा। बहुओं ने भी नहीं खाया है। तेरी मौत हो जाय कनी। तू किसी की खबर भी नही रखती। देखो तो छोटी बहू कितनी खराब दीख रही है। बड़ी बहू तो इतनी कमजोर हो गई है मानो गिर पडेगी। तू जाकर पहले चावल बना दे, बाद मे ललिता सब्जी बनाएगी और नन्दिका चटनी।"

" 'सा' "—

"मैंने जैसे कहा तू ठीक वैसा ही कर, 'का', वे कटक मे अभी आ ही रहे होंगे।"

नन्दिका रसोई में चली गई।

सुनन्द जानता है, चार-पाँच लाइन की उसकी चिट्ठी घर के सब लोगों को ठीक रास्ते पर ले आयगी। खास किसी को उसने चिट्ठी नही लिखी है। अपने मन की बात, अपनी विरक्ति, अपनी अशान्त आत्मा की पुकार को उसने सबको जाहिर कर दिया है। सब लोग उसे जरूर पढ़ेंगे। जरूर समझेंगे उसके मन मे सख्त दुख पैदा हुआ है। वह घर को नहीं लौटेगा।

जननी का स्नेहशील मन नम्र हो जायगा। ललिता समझ जायगी कि सुनन्द केवल रूप और यौवन का खेल नही चाहता, इस घर के लिए वह शान्ति भी चाहता है। सब आपस में सहानुभूतिशील बर्ताव रखें उसकी यही कामना है। सब सबकी बातें सह जायें, यही उसकी इच्छा है। उसके संसार में बाहर के किसी भी आदमी का प्रवेश नही हो

सकेगा। बाहर की सहानुभूति दिखाकर कोई इस घर के मनुष्यों को लेकर खेल नही खेल सकेगा।

वह घर को वापिस नही जायगा।

नन्दिका ?

सबको सुख और शान्ति में रखने के लिए वह कोशिश करती है। सोने जैसा मन लेकर उसका जन्म हुआ है। इस कठोर पत्र का प्रभाव क्या वह भी सह सकेगी ?

चिट्ठी लेकर गन्धिया चला गया है।

सुनन्द का मन छटपटाता रहा। अगर फल उलटा हो गया तो ? एक दूसरे के ऊपर इल्जाम लगाकर वे लोग घर में अधिक अशान्ति और अधिक तनाव पैदा कर देंगे तो ? माँ भी इसके लिए ललिता के ऊपर दोष का बोझा लाद देगी तो ? उन्हें कुछ न कहकर नन्दिका उल्टा ललिता के ऊपर शासन करने लगी तो ?

फल उल्टा हो जायगा। बेचारी ललिता ! बिलकुल बच्ची-सी है। बहुत होनहार है। सबकी सेवा करती है। सबको सन्तोष देने के लिए डटी रहती है। बेकसूर को सब कसूर भोगने पड़ेगे। अत्याचार सहना पडेगा। आँखों से आँसू बहेंगे। उन आँसुओ की और किसी के पास कुछ भी कीमत नही है।

सुनन्द सोचता रहा, 'अब तीन बजे है।'

राजीव खबर दे गया इनकम टैक्स की अपील में अपने तरफ की जीत हुई है। बहुत-से टैक्सों से अब वह मुक्त हो गया है। अब जितना देना वाजिब है। उतना ही देना पडेगा। उसके आनन्द की सीमा नहीं रही। लेकिन मन खुश होने में हिचकिचाता है।

यह सुसवाद देने के लिए गन्धिया के पीछे-पीछे अगर वह घर चला जाय तो कैफियत देने के लिए एक कारण हो जायगा। कैफियत का बहाना बन जायगा—हाँ, ठीक याद आया है।

"राजीव, राजीव !"

नौकर ने राजीव को पास बुलाया।

"अपील मे कितने रुपये कट गये ?"

"नौ हजार सात सौ तिरेपन रुपये एक आना।"

"बच गया। नही तो—"

"व्यापार की कमर टूट जाती।"

"बहुत अच्छा। महापात्र बाबू का हिसाब भी आज चुकता कर देना चाहिए। तुम भी आज मेरे साथ घर जाओगे।"

"आज ?"

"आज क्या ? शाम के पहले पहुँचना चाहिए। नन्दिका को जरूर खबर देनी चाहिए। तुम उनसे तीन हजार रुपये लाये थे न ?"

"दोनों दफा मिलाकर साढे चार हजार।"

आज उन्हें कह देना पड़ेगा कि उनके रुपये उन्हें अतिशीघ्र वापस मिल जायँगे। बाजार मे कुछ सामान भी खरीदना है। मेरे साथ चलो। अब हाथ मे कितने रुपये है ?"

"एक हजार तीन सौ बयालीस रुपये नौ—"

"आना पाई कहने की कोई जरूरत नही, इतने मे ही काम चल जायगा। चलो।"

सामान खरीदना जब खत्म हुआ तब शाम हो रही थी। नन्दिका और ललिता के लिए कीमती साड़ी और ब्लाउज। दोनों के लिए कान के गहने। माँ के लिए साडी और नई शाल। कनी के लिए भी कपडा। सुमित्रा के लिए सुन्दर साड़ी, बच्चों के लिए कपडे, कुरते और किताब। फल, मिठाई—

'ग्रौर तुम्हारे लिए क्या खरीदना है, राजीव ?"

"एक सम्बलपुरी रंगीन गमछा ।"

"बस, ग्रौर मेरे लिए ?"

"एक छोटी-सी मोटरगाडी ।"

"नन्दिका के लडके के लिए ? मेरे लिए एक जोडा नया जूता—बाटा कम्पनी का होने से काम चल जायगा । मोटर मे उतरकर चार-पाँच मील पैदल चले जायँगे तो कुछ हर्जा नही है ।"

"लेकिन ग्रँधेरी रात है ।"

"तो दो बड़े टॉर्च खरीदे जायँ ।"

"दोनों हाथ से ग्राप पकडेगे । ग्रौर यह सामान कैसे जायगा ?"

"क्या तुम कल जाने के लिए कह रहे हो ? सवेरे ?"

"नही ग्राज ही सूखा-सा लग रहा है ।"

"मुझे भी ।"

राजीव के मन में ग्राज बहुत खुशी है । उसने मुकदमा नहीं जीता है, दुर्ग जीता है । मन खोलकर कहने के लिए वह ग्राज बिलकुल हिचकिचाता ही नही । मुक्तहस्त होकर खर्चा करने के लिए ग्राज वह बिलकुल भी न रोकेगा ।

"तुम पकड़ो ये टॉर्च । सामान मुझे दो ।"

"ज्यादा वजन तो नही हुग्रा ?"

"नही गाँव नजदीक ग्रा गया है ।"

राजीव ने कहा । "नये जूते पहने हैं, होशियार होकर न चलने से पैर में छाले पड़ जायँगे । कितने बजे है ?"

"पौने नौ ।"

"तो हमे ग्राज भूखा न रहना पड़ेगा ।"

सुनन्द ने जवाब नहीं दिया । गधिया के हाथ से उसने जो चिट्ठी भेजी थी उसी की याद करके वह चौंक-सा पड़ा । माँ ने कुछ भी नहीं खाया । चिट्ठी पढ़ने के बाद वह क्या करती रहेगी ? नन्दिका ने ललिता

को दोष दिया होगा। मुँह को इतना बडा करके वह अपने कमरे मे रोती रहेगी। कितने अत्याचार उसे सहने पड़ेंगे ?

क्या वह आत्महत्या करेगी ? जहर खायगी ? अतनु बाबू के सिनेमा की तस्वीर "सपत्नी" थी। चित्रा और विचित्रा सत्यवान की दो पत्नी। चित्रा दो बच्चो की माँ है। सत्यवान दो बच्चो का बाप। किस कमजोर मुहूर्त में वह विचित्रा से प्यार करने लगा था। तीव्र प्रतिवाद के बावजूद विचित्रा सत्यवान के घर आई। सब अत्याचार सहने लगी।

सत्यवान का सब प्यार व्यर्थ हो गया। विचित्रा को लेकर उसका नया संसार बन नही पाया। उसके पिता ने उसे त्याज्य पुत्र करने की धमकी दी थी। उसके लिए भी वह तैयार हो गया था। लेकिन विचित्रा तैयार न हो सकी।

सुख के ससार से अशान्ति हटाने के लिए और दुनिया की नुक्ता-चीनी के तूफान को बन्द करने के लिए उसने विषपात्र हाथ पर लिया। मुँह में लगाया। सहसा सत्यवान आ पहुँचा, लेकिन देखा कि हँस-हँसकर विचित्रा गिर पड़ी थी।

दोनों मे अन्तर बहुत है। तथापि दूर से देखकर तुहिनादेवी हँस रही थी। सुनन्द को निमन्त्रण नही मिला था। दूसरों के समान अपने पैरों से गया था।

पिछली रात की बात है।

सिनेमा से निकलकर बाहर को पैर बढाने से ही कल्पना गायब हो जाती है। आँखों के सामने वास्तविकता खड़ी हो जाती है। सिनेमा का चित्र स्वप्न में भी मन को अस्थिर नही कर सकता।

घर नजदीक आ गया है, घर के भीतर अँधेरे में ललिता खडी है। हाथ मे विषपात्र। मुँह के पास ले जा रही है, कौन जाने शायद पी ही ले।

सुनन्द अधीर हो उठा। जल्दी ही जाने लगा। ठीक विचित्रा के समान क्या ललिता भी विषपान करेगी ?

उसके हाथ में विष-पात्र !

खुद वह नही पी रही है। नन्दिका की तरफ बढा देती है।

नन्दिका पलग पर बैठी है, नीचे की तरफ पैर लटकाए हुए है। सामने ललिता खड़ी है। सिर पर घूँघट नही है। कान और हाथ के गहने रोशनी से चमक रहे है।

"पी ले 'मा'। झूठ बोलकर तूने सबको खिलाया-पिलाया। लेकिन खुद क्यों उपवास रखेगी ? आज माँ शान्त हो गई है। पैर दबाने गई थी। बहुत खुश हुई। पीठ सहलाकर कितनी ही बातें मुझसे कहने लगीं।"

"उन्हें पहचान सकी ?"

"उनके पैर पर सिर रखकर मैंने अपना दोष कबूल कर लिया। अपने लडके की इन्तजारी में वे सो गई। अब वे नही आयेंगे। कल दोनों मिलकर उनके पास चिट्ठी लिखेंगे—अशान्ति की आग बुझ गई है। तुम घर आओ।"

"उतना लिखने से वे कभी न आयेंगे।"

"तो फिर क्या लिखना पडेगा ?"

"लिखना पड़ेगा—घर में जो हो, फिर भी बाहर के लोग हमारे घर में नही आ सकेगे या सलाह नही देगे।"

"अच्छा वहीं लिखेंगे। अब यह दूध पीले। अगर माँ मुझे साथ में नही बिठाती तो मैं कभी नही खाती। वे आयँगे कहकर तूने सबको भुला दिया।"

"वे आते रहेंगे। कभी-कभी आधी रात को भी वे आ पहुँचते हैं।

उनकी कलम से ऐसी एक निर्मम और निर्दय चिट्ठी भले ही लिखी गई हो, लेकिन अपनी चिट्ठी की चोट वह खुद सह नही सकेंगे। वे जरूर आयेंगे।"

"आयेगे तो अच्छी बात है। खाना तैयार है। तू क्यो इन्तजार करती रहेगी ? इस दूध को पी ले। तूने कहा था न, मेरे बच्चे को तूने गर्भ में रखा है ? उसे क्यों छटपटा रही है ?"

नन्दिका हँसने लगी। बोली, "अब मै हार गई। अब मना नही करूँगी। दे—"

ललिता के हाथ से नन्दिका ने दूध का गिलास लिया। सुनन्द घर के भीतर आ पहुँचा। देह से पसीने की धारा बह रही है। बहुत थक गया है।

उल्लसित होकर नन्दिका उठ खडी हो गई।

"तुम्हारे हाथ में वह क्या है, नन्दिका ?"

"दूध।"

"मुझे दो। बडी प्यास लगी है।"

"खाना तैयार है।"

ललिता ने कहा, "दे, 'सा'। पहले उनको पीने दो मै तुम्हारे लिए और एक गिलास लाये देती हूँ। पहले जाती हूँ माँ को उठा दूँगी। इन्तजार करके मन के दुख मे वह सो गई है।"

"ठहरो ललिता। तुम लोगों को कैसे मालूम हुआ कि मैं आने वाला हूँ ?"

" 'सा' ने कहा था।"

दूध के गिलास को नन्दिका के हाथ से लेकर सुनन्द पीने लगा। समझ गया, यह ससार चित्रा और विचित्रा का ससार नही। 'सा' और 'का' का संसार है। सामयिक अशान्ति का मेघ अब दूर हट गया है। आसमान फिर मेघयुक्त होने जा रहा है। कितना सुन्दर। कुमार पूर्णिमा

के संध्याकाश पर डूबते हुए सूरज और उठते हुए चाँद के समान ये दो आनन्द दोनों तरफ हँस रहे है। मुग्ध, तन्मय और कल्पना विलासी कवि के समान वह इस मुँह से देखता रहता है।

उसने जहर नही पिया है। दूध भी नही पिया है। उसने प्राण भर-कर आकण्ठ अमृत का पान किया है—'सा' और 'का' के निर्मल मन से जो मधुर रस निःसृत हो रहा है।

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ नन्दिका ?"

"तुमने चिट्ठी लिखी थी न !"

"सोचा था कि नही आऊँगा। एक खुशखबरी लेकर आया हूँ। इनकम टैक्स की अपील मे मेरी जीत हुई है। नौ हजार—"

"रुपये की बात इतने मे ही रहने दो। तुम्हें देने के लिए मेरे पास कैसी अच्छी खबर है, तुम जानते हो ?" हँस-हँसकर नन्दिका बोली।

"बताओ तो !"

" 'का' ने एक बहुत बडा मुकदमा जीता है, उसने माँ को अपनी बना लिया है, उनके तापित मन को उसने शीतल बना दिया है, उनकी आँखों से करुणा की लोलक धारा बहा दी है।"

"सचमुच, ललिता ?"

"हाँ। लेकिन वह मेरी करामात नही है, मेरी 'सा' का उपदेश। जब वह झूठ भी बोलती है, तब वह भी सच हो जाता है।"

"वह तुम्हारी वकील है।"

"नही, वह मेरी साहा (सहाय) है। उसकी बात न मानूँगी तो अशान्ति पैदा हो जायगी। बाहर के लोग घर के भीतर आकर उकसाने लगेगे। वह मेरी गुरु है और तुम्हारी भी।"

"दुष्ट !" नन्दिका ने ललिता के कोमल गाल पर थपकी मारी। बोली, "तू बातो से ही उनका पेट भरेगी 'का' ? खाना नही देगी ? वे दौड़-दौड़कर आये है।"

"मेरी भूख चली गई है। अब नही खाऊँगा।"

"क्या 'मा' के अबाध्य होंगे ?"

"वैसा तो मैं कभी नही हुआ हूँ।"

"कभी भी नही होगे न ?"

नन्दिका उस बात को जानती है।

हँस-हँसकर नन्दिका ने कहा, "तो मेरी बात मानो। मेरी 'का' को पहले लाड़ करो।"

"अरे !—ए !"

"हो गया। अब खाना खिलाओगी, जाओ।"

"दोनो के लिए खाना परोसना। राजीव अपनी दोनों भाभियों को भेट देने के लिए पर्वत के समान बोझा ढोकर मेरे साथ आया है। बाहर बैठकर आराम कर रहा है। उसने ही मुकदमा जीता है। उसके मन मे आज बड़ी खुशी है।

"कनी, मेरे नन्दिया की आवाज आती है न !"

"अब माँ उठ गई, 'का'।"

सुनन्द जोर मे बुलाने लगा, "माँ-माँ !"

माँ का चरणस्पर्श करने के लिए सुनन्द घर से बाहर निकल आया, आज अपनी बीमार माँ के पैर पकडकर वह जमीन पर अपना सिर लगायेगा। यह ससार उसी माँ का ही है, वह स्वर्ग से भी बड़ी है, दयामयी, क्षमा की अवतार।

आसमान पर काले बादलो का सिमटना देखकर जिन लोगों ने चातक के समान बारिश और तूफान की आशा की थी, वे अब हताश हो गये। कुछ भी नही हुआ। मेढकों की आवाज अपने आप बन्द हो गई, वे अँधेरे की आड़ मे कही छिप गये। देखने की भी हिम्मत नही हुई।

"नन्दिका जादू जानती है। जड़ी बूटी सुँघाकर बाघ के बच्चे को भी भेड बना देती है। सास और स्वामी की बात तो अलग है, कल की बहू ललिता भी उसके कहने से बाहर नही जाती। 'उठ' कहने से उठती है और 'बैठ' कहने से बैठती है। जैसे कहते है, उसको पूछे बिना पानी भी नही पीती।"

"तुम यह क्या कह रही हो ? ललिता आजकल के जमाने की लड़की है न ! बेवकूफ नही है, मूर्ख नही है। अपने मन की बात वह क्यो किसके पास कहने जायगी ? वह बहुत होशियार है। उसका अभाव क्या है, कहो तो ! चाबी का गुच्छा कमर पर खोसा हुआ है। अपना गृहस्थ भी हाथ की मुट्ठी मे। सास पहले-पहल कुछ बिगड जाती थी, अब वह भी शान्त हो गई है। लेकिन बाद मे क्या होगा, वह सबको मालूम है।"

एक दूसरी कहने लगी, "दिन कभी भी रात नही हो सकती, और रात भी दिन नही हो सकता। ललिता अब दिन गिन रही है, कब सास की मौत हो। तब वह फन उठायगी। बुढ़िया भी तो बीमार होगई है, कब चल बसे कौन जाने ?"

"इतनी दूर तक बात नही जायेगी। नन्दिका का बच्चा होने के बाद क्या होने वाला है, पहले देखोगे।"

ये सब बाते सुनकर एक बूढी ने कहा, "दूसरे घर के बारे में हम क्यो इतना सोचे ? हम खेलने के लिए आये है। जल्दी शुरू करो। नही तो खेल खत्म होते-होते शाम हो जायगी।"

"लेकिन और एक न होने से क्या होगा ? अब तो हम सिर्फ पाँच ही आई है।"

"मै एक 'का' को लेती हूँ।"

सब खिल-खिलाकर हँस पड़े।

इशारा देकर एक ने कहा, "चुप हो जा, अब सुमित्रा आ रही है। गोद मे बच्चा, हाथ मे बच्चा, और पीछे-पीछे भी बच्चा। धन्य है वह।"

किसी ने मुस्कराकर कहा, "क्या पेट तब भी खाली है ?"

"सचमुच वह कितनी भाग्यवती है !"

जेठजी ने मन चाहे रुपये जमा कर दिये, अभाव क्या है ? दुष्ट राजीव भी एक रोज ऐसा बडा आदमी बनेगा और घर ससार बनायेगा, यह किसको मालूम था ? उनके बच्चे पाठ को बिलकुल पी जाते है। पढ़ने मे होशियार है।

सुमित्रा आ पहुँची।

"हम तो तुम्हे ही खोज रही थी।"

"इतनी श्रद्धा क्यों ?"

"खेल के लिए एक साथी की कमी थी।"

"मै जाती हूं मालिक के घर। छोटी दीदी को कटक जाना है।"

"क्यो ? क्या फिर कुछ शुरू होगया ? मुझे मालूम था कि वैसा ही होगा।"

"कुछ नही हुआ, देवी देखने के लिए बड़ी दीदी उसे जबरदस्ती कटक भेज रही है। दशहरे के दूसरे रोज फिर लौट आयेगी।"

"क्या बूढ़ी भी जायेंगी ?"

"नही। वे नही जायेगी। उनकी तबीयत ठीक नही है। बड़ी दीदी भी उन्हें छोड़कर नही जायेगी। मैं जा रही हूँ, पीछे गालियाँ दोगी।"

सुमित्रा चली गई।

एक ने कहा, "सुना तुमने ? छोरी बहुत चालाक है। डूब-डूबकर

पानी पीने वाली है। शायद केवल ऊपरी मन से ही नही करती होगी। पहले कटक की ओर एक बार उसे घूम आने दो। और तब देखोगी नन्दिका के भलेपन का क्या होगा। अगर आपस मे झगड़कर बाल न पकडे तो मेरा नाम न लेना।"

दशहरा गया। कुमार पूर्णिमा भी चली गई। ललिता न लौटी। इस साल देवी गज के वाहन पर आई थी। अष्टमी की रात से ही बारिश शुरू हो गई। विसर्जन के दिन तक बारिश और तूफान चलता ही रहा। अब आसमान साफ हो गया है। बादलो की फौज भी कही छिप गई है। कभी कभी एक दो मुँह दिखाकर सामने आते है, लेकिन तुरन्त ही दौड़ भागते है। ललिता अब लौटेगी।

कितना खराब लग रहा है यह घर! सब जैसे का तैसा है। सिर्फ ललिता नही है। दोपहर को बहुत सूनापन मालूम होता है। खिडकी के उस तरफ पेड के पीछे और किस्म-किस्म के फूल जैसे विरस होता देख रहे है, पूछ रहे है, "तुम्हारी 'का' कहाँ गई?" कानो पर ललिता की आवाज आ टकराती है—'मा'।

कटक जाने के लिए पहले वह राजी नही होती थी। स्वामी का आग्रह था कि सब लोग कटक जायेगे। विसर्जन के बाद ही सब घर लौट आयेगे।

लेकिन माँ राजी नही हुई—नन्दिका नाला-नहर पार होकर नही जायगी। बैलगाड़ी या पालकी पर भी नही जायगी। नन्दिका जान गई कि इसका प्रतिवाद न करते हुए भी इससे सुनन्द के मन का आग्रह चल गया।

'का' जायेगी। दशहरा के बाद लौट आयेगी।

तू नही जायेगी तो मैं भी नही जाऊँगी ।

तो किसी को भी नहीं जाना चाहिए ।

'का' जायेगी ।

उसे मजबूरन जाना पड़ा । 'सा' के पास कटक से चिट्ठी आई—"तू आती तो कितना मजा होता ! इस साल कटक की मूर्तियाँ बहुत अच्छी बनी है । बाजार का नाम मुझे याद नही है, लेकिन वहाँ जो कुम्भकर्ण की मूर्ति बनी है, देखते ही तू हँस-हँसकर लौट जाती । चौधरी बाजार की देवी मूर्ति कितनी सुन्दर बनी है । तुम्हारा मुँह मुझे याद आ जाता है । माँ से प्रणाम कहना । तुम्हारे लिए अपना प्यार भेज रही हूँ । क्या चिट्ठी नही देगी ?"

नन्दिका ने साथ-साथ जवाब दिया था । ललिता की चिट्ठी को उसने अमूल्य धन के समान अपने पास रखा । कितनी बार पढ चुकी है । पढकर कनी को, माँ को और सुमित्रा को भी सुना चुकी है । मेरी 'का' ने चिट्ठी लिखी है । उसका मन बिलकुल बच्चे का सा है । उसे कुछ देखने दो और खुशी होने दो । हाँ आयेगी तो जरूर, लेकिन इतनी जल्दी क्यों ? क्या उसके बिना यहाँ कोई काम बन्द हो रहा है ?

कुमार पूर्णिमा । ललिता घर नही आई । चिट्ठी लिखी है । उनके भाई और भाभी खबर पाकर सपरिवार कटक आये है । ठीक दशहरे के रोज ही आ पहुँचे । पूर्णिमा के दूसरे रोज घर लौट जायेगे । मुझे भी साथ ले जाने के लिए कह रहे है । मै पूर्णिमा के बाद जाऊंगी । वे कहते है कि काम बहुत है । नई जमीन खरीदी गई है, नया मकान बन रहा है, इसलिए समय नही है । फिर भी राजी हो गये है । उन्होने कहा—"जाओ, लेकिन मेरी अवस्था फिर पहिले-सी ही होगी । खाने के लिए महाराज के भरोसे रहना पड़ेगा । कभी खाना मिलेगा तो कभी नहीं ।" मैने कहा, "अब तक चलता था, अब भी चल जायेगा । मेरी 'मा' घर पर अकेली है ।"

"—'सा', काली गली मे कितनी अच्छी लक्ष्मी मूर्ति बनी है ! घर लौट आने के लिए मन बिलकुल नही करता। मैं तो केवल देखती ही रही। कितनी सुन्दर ! मेरी 'सा' की भी ऐसी ही एक सुन्दर लड़की होगी। पहले मै उसे गोद मे लूँगी। मेरी लड़के से कोई जरूरत नही।"

चिट्ठी पढकर नन्दिका खुश हो गई, लेकिन सास के सामने सब कुछ पढ नही सकी। अच्छी चिट्ठी से भी वे खराब अर्थ निकाल सकती है। कहेंगी, वाह बहुत शुभकामना उसने की है ! यही है सौत की ईर्ष्या !

लेकिन ललिता नही लौटी। पूर्णिमा के बाद आज सातवाँ रोज भी चला गया। अब दिवाली आने वाली है। चिट्ठी भी नही लिखती। तबियत ठीक है ना ? जानने के लिए मन छटपटा रहा है। भाभी गई या नही। जब 'का' लौट आयगी, स्वामी को फिर आधे रोज उपवास मे रहना पडेगा। 'का' वहाँ और कुछ रोज के लिए रह जायगी तो क्या नुकसान हो जायगा ? लौटने के लिए क्यो इतनी उतावली हो रही है ?

ललिता ने फिर चिट्ठी लिखी है—"मेरी बात ये बिलकुल नही सुनते है। कहते है, मुझे घर पहुँचाने की उनको फुर्सत नही है। तुलसी-पुर मे नई जमीन खरीदी गई है। और वही मकान बनवाने के लिए उतावले हो रहे है। रुपये की तलाश में है। अगर तू या माँ उनके पास चिट्ठी लिख दोगी तो मुझे वे घर छोड़कर आ सकते है। नही तो मेरा कहना बिलकुल न मानेंगे। कहते है, क्या उपवास करके मरूँगा ?"

"—यहाँ नये आदमियो के साथ भी परिचय हो गया है। उन्होंने सोचा है कि मै नन्दिका हूँ। मैं क्यों ना करती ? तू जिस अतनु बाबू के बारे में कह रही थी उनकी पत्नी तुहिना ने अपने आप यहाँ आकर मेरे साथ दोस्ती की है। कई बार मुझे सिनेमा दिखाने के लिए भी ले गई है। उनका लड़का मलय और लडकी छबीला सचमु कितनेच सुन्दर है। मेरी 'सा' का वैसा ही एक लडका और वैसी ही एक लड़की होगी तो मै कितनी खुश हो जाऊँगी !"

"—भाई लौट गये है। भाभी और बच्चे अच्छे है। दीवाली के बाद लौट जायेगे। भाभी तुझे बहुत-बहुत प्रणाम भेज रही है। माँ को भी।"

बुड्ढी ने पूरी चिट्ठी सुनी। सोचकर कहा, "तू उसे आने के लिए लिखेगी तो वह फिर भी नही आयेगी। सुनन्द के ऊपर दोष देकर वह अपना भलापन दिखा रही है।"

"नही माँ।"

बुड्ढी हँस पडी। रात का अँधेरा हिल-सा गया।

मागुणा रो उठी। आँखों से आँसू पोछकर कहा, "अब मैं किसको कसूर देने जाऊँगी। तुम्हारे भाई ने तो मेरी बात ही नहीं मानी। तुमको कैसे मालूम होगा? ऊपर जो भगवान दिन-रात कर रहा है, उसी को मालूम है। मै रोई, अभिमान किया, पैर पकड़कर कहा, 'मेरी ललिता किसी की सौत न बनेगी।" मजदूर हो, गरीब हो या मूर्ख हो, एक अच्छे से जगह मे उसकी शादी होनी चाहिए। शोभा की बात से वह बिलकुल भूल गये।

ललिता सोचने लगी। भाभी ने जो कुछ कहा था सच ही कहा था। उस घर में उसको क्या सुख था? जिसको आजादी नही है, वह मनुष्य भी नहीं है। उसके जीवन मे कुछ भी स्वाद नही है।

सास से डर। सौत से डर। गाँव की औरतों के घर आने से मन में शका। नौकर-चाकरो के पास भी सकुचित होकर रहना। यही तो उसका जीवन है! हाथ पकड़कर जो उसे इस घर में लाये है, उनके पास भी छोटा होकर रहना पड़ेगा। मन की बातें खोलकर कहना उनके पास भी असम्भव है।

दूर मे जब साम की याद आती है तब मन छटपटा उठता है। उन्होने मोचा है जैसे दया करके उन्होंने ललिता को इस घर में स्थान दिया है। एक गरीब घर की लड़की को अपने घर में स्थान दिया है, पालतू बिल्ली या कुत्ते को लोग जैसे प्यार करते है वैसे ही है।

और स्वामी—उनके मब स्नेह और आदर के पीछे एक दूमरे आदमी के सख्त शासन का इशारा है। लाड़ करते ममय भी वे कहते है, नन्दिका तुम्हें कितना प्यार करती है! कभी भी उमके मार्ग में रुकावट न बनोगी। देखा है न, खुद तुम्हे मजाकर वह यहाँ छोड़ गई थी। भगवान ने उन्हे मोने-जैमा मन दिया है।

नन्दिका ने ही उसे पुतली-सी सजा रखी है। ललिता उमके खेल की चीज है। घर नन्दिका का है। घर की सम्पत्ति की वही एकमात्र अधिकारिणी है। ललिता केवल एक जीवनहीन खिलौना मात्र है। उठाने से उठेगी और बिठाने से बैठेगी।

नन्दिका माँ बनने वाली है। उसके पहले भी तो साम सताती रही है। बच्चा होने के बाद अत्याचार की मात्रा और भी बढ जायगी।

मागुणा इन्तजार कर रही है। कब से शाम हो गई। सुनन्द अब तक घर नही लौटे है। कब से कही बाहर चले गये है। आज उन्होंने मिनेमा दिखाने को ले जाने के लिए कहा था। अब तक नही लौटे है। उनका रोज-रोज इतना काम! इतनी मेहनत के बाद भी महाराज के हाथ से खाना पडता है। अगर ललिता कटक में रहती तो कितना अच्छा होता। सुनन्द के खाने की देखभाल करती। लेकिन क्या नन्दिका उसे यहाँ रहने देगी? वह तो अपने मन में सन्देह से जलती रहेगी।

कितनी होशियारी से वह चिट्ठियाँ लिखती है—"तुझे न देखकर मैं तो पागल-सी हो गई हूँ। जिस तरफ देखती हूँ केवल तुम्हारा सुन्दर मुँह ही नजर में आ जाता है। तुम्हारी बाते कानों में बजने लगती है। मेरा दिल कहीं भी नही लगता। तुम्हें लाकर यहाँ छोड़ जाने के

लिए उन्हे मै जरूर लिखती। फिर सोचती हूँ, मै क्यो इतना स्वार्थी बनूँगी ? कटक गई हो, आनन्द करना चाहिए। खुश होना चाहिए। जब मेरे पास लौट आओगी, तब मुझे नई-नई बाते सुनानी पडेंगी। एक अजीब-सा सुन्दर सपना मै तीन बार देख चुकी हूँ। हँस-हँसकर तू सिर हिला देती है और मेरी नीद झट से खुल जाती है। मन खराब हो जाता है।

"—दीवाली आने वाली है। माँ कह रही थी, ललिता को लिखो कि अमावस्या के पहले उसे घर लौट आना पडेगा। मैंने कहा, 'क्यो, अब कुछ दिन उसे कटक मे रहने दो। वह कटक में रहेगी तो तुम्हारे लड़के अच्छी तरह से कुछ खा-पी सकेगे।' वे चुप हो गईं। फिर बोली, अच्छा रहने दो। फिर भी, मुझे लगता है जैसे मेरी एक आँख अन्दर बैठ गई है। सचमुच 'का', सास तुझे कितना प्यार करती है।"

सागुणा ने कहा, "तुमने देखा तो ललिता, वह तुम्हे आने के लिए भी नही कहती। क्योकि घर मे वह मालकिन बनना चाहती है। कटक में रहने के लिए भी साफ-साफ नहीं कह सकती। क्योंकि वह एक स्वप्न देख रही है। ऐसा न हो कि स्वप्न की बात भी सच हो जाय। वैसी हालत में उसका मालकिन बनना खतम हो जायगा। घमड के साथ और न कह सकेगी कि इस सूखे मुल्क में केवल मैं ही बिजली की झलक हूँ। सास तुम्हे कितना प्यार करती है, वह सबको मालूम है।"

ललिता का मुँह फीका पड गया। भाभी सच ही कह रही है। लेकिन वह करेगी क्या ? इस तरफ से ब्रह्म-हत्या और उस तरफ से गो-हत्या के समान हालत हो गई।

स्वामी को वह अब तक पहचान नही सकी है। घर की बातें वे उससे नही कहते है। जब पास आते है, तब केवल उसकी देह और सज्जा के ऊपर उनकी दृष्टि रहती है। केवल उनकी आँखे, ओठ और हाथ उससे बात करने लगते है। वे केवल उसकी देह को ही श्रद्धा

करते है। उस देह को कैसे किस्म-किस्म के ढग से सजाया जायेगा, वह देह कैसे स्वस्थ और सबल रहेगी, उसी के ऊपर उनकी पूरी नजर है। सिर्फ देह के ऊपर ही वे भौरे के समान गुनगुनाकर आते है।

मन की बाते वे समझ नही सकते है।

"मुँह सुखाकर क्यो बैठी हो ? सुनन्द तुम्हें बहुत प्यार करता है। कोई गृहस्थ अपनी पत्नी को इससे अधिक प्यार कर सकता है, यह मुझे मालूम नही। अपने हाथ से साफ-सुथरा बनाना, सजाना, दवाई पिलाना, यह सब काम कौन कर सकता ?"

ललिता के मुँह पर लाली दौड गई।

"ठीक मौके पर होशियारी के साथ तुम जो कुछ कहोगी, वही होने वाला है। तुम्हारे भाई बूढे हो गये है, फिर भी वे तुम्हारी बात से बाहर न जायेगे। ठीक समय पर कहना चाहिए। थोडे-से अभिमान के साथ—"

ललिता हँस पड़ी।

"हँस क्यों रही हो ? तुम्हे कौन कहता है कि किसी का गला काटने के लिए तुम किसी को फुसलाओ या सलाह दो ? भविष्य के ऊपर नजर रखकर अपने स्वार्थ के प्रति होशियार रहना चाहिए। सौत के साथ क्या हमेशा के लिए एक साथ रहोगी ? तुम्हें कोई नही कहता कि कुछ सोचे बिना सौत के साथ झगड़ा हुल्लड़ कर रास्ते में जाओ। लोग तुम्हें देखकर हँसते जाये, यह कोई नही चाहता। सुनन्द को अपना बना सकोगी तो सबसे अच्छा होगा।"

"लेकिन मेरी 'मा' कितनी अच्छी है !"

"कोई मना नही करता। तुम्हारे भाई उनकी जितनी प्रशंसा कर

रहे थे सुनकर मुझे अचरज-सा लगा। तुम तो जानती हो कि लिफाफे के भीतर हम लोगो के पास उन्होंने एक हजार रुपये भेज दिये थे। उसी से तो आज तक हमारा ससार चल रहा है। नही तो आज बाल-बच्चे—"

"भाभी—"

सागुणा की बात आधी रह गई।

ललिता की आँखो से आँसू बहने लगे। उसने कहा, "मुझे अधिक शर्मिन्दा न करो, भाभी। तुम्हारी चिट्ठी मिलने के बाद मै दिन-रात रोती रही। केवल इस तरफ उस तरफ होने लगी। कुछ भी कर नही सकी। 'मा' के डर से और अपने मन के संकोच से उनसे भी कुछ कह नही सकी। 'मा' के पास मुँह खोलने की अपेक्षा मरना ही बेहतर है। लोहे के बक्से की चाबी को भी मैने हाथ मे लिया था। बक्से के भीतर जो रुपये रखे हुए थे उसकी ओर भी नजर डाली थी लेकिन चोरी करने के लिए हिम्मत नही हुई। तुम्हारी चिट्ठी मेरी कमर से नीचे गिर पड़ी थी। उसको पढकर मुझे कुछ भी कहने के पहले 'मा' ने रुपये भेज दिये थे।"

सागुणा बोली, "रुपये भेजने के लिए तो मैने लिखा ही नही था। घर में बाल-बच्चे कैसे है, यह जानने के लिए जब तुमने लिखा, मैने सच बात लिख दी थी। हम रुपये लौटा देते तो नन्दिका मन में बहुत दुखी होती। हमारा ससार तो अभाव का ही ससार है। मुझे इतना ही मालूम हुआ कि किसी चीज पर भी घर मे तुम्हारा अधिकार नही है। तुम्हारी सौत बहुत अच्छी है, तुम्हे बहुत प्यार करती है, फिर भी तुम उसी के अकुश मे हो। उसी से मेरे मन में बहुत ही दुख हुआ। हालत हमेशा एकसी नही रहती।"

"तुम्हारी बात सच है भाभी।"

"इसीलिए तो कह रही हूँ कि तुम अब सुनन्द को अपना बना लो। अपने हाथ में भी अपने लिए कुछ रखा करो। सुख के साथ संसार

करना सीखो। भगवान तुम्हारी गोद में जब एक बच्चा ला देंगे तो तुम्हारा सब दुख दूर हो जायेगा। तुम्हें किस चीज का अभाव है जो तुम गाँव में जाकर सोने के पिंजरे मे बन्द रहोगी। तुम्हारा स्वामी तो यही है। तुम चली जाओगी, सुनन्द फकीर के समान यहाँ-वहाँ दौड़-कर आधी रात घर लौटेगा और जैसा-तैसा कुछ खाकर सोने जायगा। वह इतनी मेहनत क्यों कर रहा है, क्यों इतने रुपये कमा रहा है?"

ललिता के मन पर भाभी की सलाह का असर पड़ने लगा।

दीवाली के दूसरे रोज आँखों से आँसू बहाकर मागुणा विम्बाधर के साथ गाँव चली गई। अपने ग्यारह साल के लडके रवि को ललिता के पास छोड़ गई। ननद कटक मे अकेली रहेगी, यह बात वह सह नही सकी।

बचपन से ही ललिता रवि को प्यार करती थी। उन्होंने जो सलाह दी वह अमूल्य है। ललिता ने भाभी के बक्से के भीतर जो लिफाफा रख दिया था, उसे खोलकर मागुणा समझ गई कि ललिता पर उसके प्रत्येक वाक्य का असर पड़ा है। नन्दिका सौत है। अपनी नही है। उसने हजार दिये तो ललिता भी अपने को कभी उससे छोटी साबित नही कर सकती। ज्यादा देने के लिए उसका अब भी अधिकार नहीं है।

अच्छा, ललिता सुख में ही रहे। मागुणा ने अपने मन से आशीर्वाद दिया।

"मैं जितना भी कहती हूँ, वे बिलकुल नही सुनते है। कहते है गाँव को ले जाने के लिए उनके पास समय नही है। नये मकान की नीव डाली जा रही है, हमेशा वे वही रहते है। सुनती हूँ कि बहुत रुपये कर्जा कर चुके है। अगर तू जोर देकर लिखेगी तो मुझे लेकर तुम्हारे पास छोड़ आयेंगे।

"—कटक की दीवाली कितने आडम्बर के साथ मनाई जाती है। कितनी रोशनी जलती है ! किस्म-किस्म की आतिशबाजी ! अमावस्या की रात का सब अँधेरा कहीं दूर भाग गया जैसा लगता है। आसमान जगमगा उठता है। कई जगहों मे काली की प्रतिमा बनती है। पहली बार नजर पड़ जाने से भयंकर-सा मालूम होता है। अधिक देखने के बाद और देखने के लिए उत्साह बढता है।

"—तू आती तो और अच्छा होता। मुझे ये बहुत सता रहे है। किस्म-किस्म की औरते किस्म-किस्म के फैशन में मेला में जाती-आती हैं, मुझे भी वैसे ही फैशन में सजने के लिए बाध्य कर रहे है। मना करती हूँ तो गुस्सा हो जाते है। फोटो उतारने के लिए अपने किसी दोस्त को बुला लाते है। मना नही कर सकती हूँ। वे बहुत बेहया हो गये है। ऐसा बेहया न होने के लिए तू उनके पास जरूर लिख। कहने के लिए या मना करने के लिए मुझे डर-सा लगता है। वे शायद मन खराब करेंगे।

"—वे कहते है, कार्तिक की पूर्णिमा आ रही है। धवलेश्वर में यात्रा देखने जाओगी। उसके बाद महानदी के किनारे वाली यात्रा देखोगी। क्या ऐसा चलता ही रहेगा ? तुझे और माँ को देखने के लिए मन आकुल हो रहा है। नही तो, तू वही से गाड़ी भेज दे। मै उनकी बात नही मानूँगी, अकेली चली जाऊँगी। यहाँ रहने मे मुझे बिलकुल अच्छा नही लगता।"

जितने बार वह चिट्ठी पढ़ती रही, उतने बार ही आँखों में आँसू भर गये। छाती काँपने लगी। 'का' बहुत सरल है, उसमें बिलकुल कपट नहीं है। इसे घर पर छोड़ जाने के लिए वह कैसे सुनन्द को लिख सकेगी ? उनके आनन्द में वह क्यों बाधा पहुँचायेगी ? शायद वह सोचेंगे कि नन्दिका स्वार्थपर है या फिर सोचेंगे, क्या नन्दिका ललिता का सुख, आनन्द और स्वतन्त्रता सह नही सकती ? ललिता के बिना घर पर ऐसा क्या अचल हो जाता है ?

नन्दिका से उनका मन दूर हट गया है। ललिता के बहुत नजदीक आ गया है। ललिता ही उनके स्नेह की पुतली है। प्यार और सुहाग का खिलौना। नन्दिका याद नहीं आती—जिसने उनकी सन्तान को गर्भ में रखा है, केवल एक ही सन्तान के लिए जो ललिता को पास छोड़ गई है, देखने के लिए दौड़ आना तो दूर की बात है, दो चिट्ठी भेजने के बाद भी एक बार जवाब नहीं आया है।

रात अधिक हो गई है। आँखे मुँदने से ही हजार किस्मों की भावना मन में प्रवेश करती है। आँखे खोलने पर खिड़की से नीले आसमान का एक टुकडा नजर मे आता है। अनगिनत तारे टिमटिमा रहे है। जैसे जलती हुई चिनगारियाँ आसमान के आँगन पर बिखर गई है।

"**क्या** नीद नही आई है, कनी ?"

'तुम्हे भी नीद नही आई है, न ?"

"नीद नही आती है। उनकी याद आ रही है। कटक से आने के लिए ललिता ने बहुत आकुल होकर चिट्ठी लिखी है। उसे घर छोड़ जाने के लिए तुम्हारे भाई के पास समय नहीं है, चिट्ठी लिखने के लिए भी समय नही है।"

"सुमित्रा क्या कह रही थी, तुमने सुना है ?"

"वह सब बातें मैं कभी नही सुनती।"

"कह रही थी, आजकल भाई का मन व्यापार में नही है। हमेशा घर में ही रहते है। बाहर जाते ही रुपये की फरमाइश होती है, किस्म-किस्म की कीमती साडियाँ और गहने खरीदे जा रहे है। शाम को रोज सिनेमा या थियेटर। आधी रात को घर लौटना। जहाँ जाते है छोटी भाभी को साथ लेकर।"

"क्या राजीव कह रहे थे ?"

"हाँ, व्यापार के रुपये से हजार-हजार उठा लेते है। व्यापार अब बन्द होने वाला है। इतने रुपये की क्या जरूरत है, कौन जाने ?"

"मकान बन रहा है।"

"नीव डाल दी गई है।"

"राजीव के हाथ चिट्ठी भेजकर तुम्हारे भाई मकान के लिए दो हजार रुपये ले गये है।"

"छोटी भाभी के फैशन के लिए, हाथ खर्च के लिए।"

"यह सब तुम क्या कह रही हो, कनी !"

उत्तेजित होकर नन्दिका उठ बैठी। दूसरे घर की बहू के नाम निन्दा फैलाने के लिए लोगों को कितना अच्छा लगता है। ललिता अपने खर्च के लिए अपने हाथ अलग पैसा रखने के लिए व्याकुल हो रही है। उसने तो ललिता को सब कुछ सौंप दिया था। फिर भी नन्दिका के ऊपर उसका अविश्वास क्यों होगा ?

"कल सुमित्रा को यहाँ बुला लाओगी ?"

"तुम्हे कहने के लिए उन्होने मना किया था।"

"क्यों ?"

और किसी से न कहने के लिए राजीव ने उन्हें चेतावनी दी थी। "तुमने सुना है, छोटी भाभी वहाँ सबके सामने होती है। बिलकुल पर्दा नहीं करती।"

"तुम चुप रहो। जाओ सोओगी, जाओ।"

नन्दिका खुद सोने को गई। मन के भीतर कहने लगी—'वे दूर हटते जा रहे है।'

'क्या दुनिया के सब मर्द ऐसे ही है ? केवल यौवन और रूप को घुला-मिलाकर पीने के लिए क्या वे हमेशा उतावले रहते हैं ? आँखों से और कानों से ?' सुमित्रा अक्सर यही कहती है। वह अब छ. बच्चों की

माँ बन चुकी है। जैसे कैंकड़ा का खोल ! फिर भी राजीव अपनी बच्चे पैदा करने की आदत को छोड नहीं सकते। फिर बाप होने के लिए उतावले-से होते है।

नन्दिका खिल-खिलाकर हँसने लगी।

नीचे चटाई पर कनी सो रही थी। उसने पूछा, "क्या हुआ भाभी ?"

"तुम्हारी बात पर हँसी, मेरी 'का' बेहया हो गई है ! अगर हो गई है, तो किसके लिए ? तुम्हारे भाई उसे जैसे नचाते रहेगे, मजबूरन वह वैसे ही नाचती रहेगी। वह कैसे मना कर सकती है ?" उसका कसूर क्या है ? तुम्हारे भाई की आदत मुझे मालूम है। बाल की खाल निकालकर चारो तरफ ललिता को बदनाम करने के लिए सुमित्रा से कौन कहता है ? उसे कल मेरे पास बुला दो। मै उसे पूछूँगी वह कैसी है, और उसका स्वामी राजीव भी कैसा है।"

कनी चुप होकर सो गई। भाभी तो कभी भी गुस्सा नही होती, आज क्यों गुस्सा हो गई ? क्या वे छोटी भाभी के ढंग सह नही सकती है ? घर की आग को क्या वे अपने आँचल के भीतर छिपा रखना चाहती है ?

मन की परीक्षा करने के लिए ललिता ने कहा, "वे सब घर में क्या कहते रहेगे ? दशहरा दिखाने के लिए मुझे कटक लाये थे। देखते-देखते एक महीना पूरा हो गया। आखिर सब कसूर मेरा ही होगा। तुम्हारी माँ बहुत गुस्सा हो रही होंगी। मुँह पर कुछ न कहते हुए भी 'सा' मन-ही-मन कुढ़ती रहेगी। तुम्हारे गाँव में तो मेरे नाम जमायत बैठी होगी।"

मुँह सुखाकर ललिता खडी रही। सुनन्द मुस्कुराकर उसकी ओर

देखता रहा । रात के दस बज चुके है । घर के भीतर बिजली की हरी रोशनी फैल रही है । बिजली का पखा पलंग पर चल रहा है । रेडियो से भी केवल हँसी की लहरे आ रही है । गोदाबरीश महापात्र का हँसाने वाला नाटक—"काला कौआ ।"

बाहर खिडकी के उस तरफ शीतल चाँदनी, रोशनी का ज्वार । खुशबूदार फूलों का एक भी पेड नही है । पलग के ऊपर भी फूल की माला झूल नही रही है; फिर भी घर महक रहा है । किसकी महक, कहा नहीं जा सकता । मीठी, मन को पुलक-से भर देने वाली, खून मे तूफान मचा देने वाली हमारी फ्रासीसी महक । ललिता के कपड़ों से छूट आती है ।

यही ललिता, उसके स्नेह की पुतली, सामने खडी है । आज उसने बगाली वेश धारण किया है । कामना को कगाल बना देता है । मन को खीच लेता है । रूप हो या न हो, दूसरे के मन को बरछी से खींच लेता है । टोकरी मे रख लेता है ।

बाघ का बच्चा जड सूँघकर गधा बन जाता है ।

ललिता को उसने हर किस्म के वेशों में सजाया है । ललिता ने कभी भी बाधा नही पहुँचाई । बात मान ली है । फोटो लेते हुए दोस्त के सामने किसी भी संकोच के बिना खड़ी हुई है । कितने आनन्द और खुशी से कटक मे उसके दिन बीत रहे है । एक महीना पूरा हो गया है, फिर भी एक रोज के समान नही लगता है । सुनन्द के कर्मबहुल जीवन मे वह आनन्द और प्रेरणा के समान है । क्या वह गाँव को लौट जायगी ?

उसके जीवन पर फिर अँधेरा छा जायगा, सुख और आनन्द का ससार फिर सूना पड़ जायगा । मरुभूमि का तूफान मच जायगा । जान-बूझकर वह क्यों ऐसा करेगा ? नन्दिका ने चिट्ठी लिखी है, माँ उसे खोज रही है । यहाँ के घर को अँधेरा करके और कितने रोज कटक में

रहोगी ? क्या ललिता हमेशा उस घर में थी ? तो आज इतनी खोज क्यों करनी पड रही है ?

"चुप होकर क्यों ऐसे देख रहे हो ?"

"गाँव को लौटने की तुम्हारी इच्छा होने लगी है।"

"मेरी इच्छा फिर क्या ? तुम जैसा तप करोगे मैं वैसा ही करूँगी।"

"मैने तप किया है कि तुम कटक में रहोगी।"

"और वे लोग मुझ पर इल्जाम लगायेंगे।"

"कौन हम पर इल्जाम लगायगा या हमारी प्रशसा करेगा, क्या इसलिए हम अपनी जरूरतो को भी नही समझेंगे ? माँ कटक आने के लिए राजी नही हैं। उनको घर में छोड़कर नन्दिका भी कटक में रह नहीं सकती। कुछ रोज के लिए तुम्हारे यहाँ रहने मे अगर उनको एतराज है तो मै क्यो अकेला कटक मे रहकर सब असुविधाओं का बोझा सिर पर उठाता रहूँगा ? आये तो सबको कटक आ जाना चाहिए नही तो तुमको यही रहना पडेगा। नन्दिका यहाँ आयगी तो तुम माँ के पास चली जाओगी। आज नन्दिका के पास चिट्ठी लिख दो।"

"मै लिख नहीं सकूँगी।"

"तो मै लिख दूँगा।"

"सबसे अच्छा होगा, यदि तुम खुद घर जाकर माँ को समझाकर सब बातें कह सकोगे, नही तो बिना कसूर वे मुझे ही सजा देती रहेंगी। मेरे सप्तपुरुष को गालियाँ देती रहेगी। गाँव के लोग हँसते रहेंगे। मैं इतना कभी नही सहूँगी—"

ललिता रो पड़ी।

पलग से उतरकर सुनन्द ने हँसती हुई आँखों के साथ ललिता का हाथ पकड़ा। कहा, "कोई तुमको दोष नही देगा। स्वामी के पास स्त्री रहेगी तो उसमे दोष-गुण या सवाल-शिकायत का प्रश्न कहाँ। माँ जरूर समझ लेगी।"

ललिता हँस उठी, मन ही मन कहने लगी, "गोद में एक नाती खिलाने के लिए वे रोज स्वप्न देखा करती है। उसी कारण नन्दिका उनकी छाती का कलेजा-सा बन गई है। और ललिता केवल देह के ऊपर एक फफोला ही है। खीचकर दूर फेक देने का कोई चारा नही है, सहा नही जाता है, फिर भी देह पर रखना ही पड़ेगा।"

नन्दिका की छाती धडकने लगी। 'क्या स्वामी पागल हो गये, नही तो उनमें ऐसी बुद्धि कैसे आई ? बूढी माँ के मन को दुख देने वाली बातें कहने की हिम्मत उनकी कैसे हुई ?' सास के मलिन मुख पर हँसी झलक उठी।

सिर के सफेद बाल गुच्छे-गुच्छे मे माथे और कानो पर लटक रहे है। हड्डी से भरा हुआ उनका मुँह काँप उठता है। खोहे मे घुसी हुई उनकी फीकी आँखे जैसे दुनिया के उस पार को देख रही है। सब घटनाओ के ऊपर स्थिर निगाह डाल रही है। सूखे होठो पर हँसी झलक रही है।

यह हँसी दुनिया में सभी का उपहास कर रही है। शायद अपने जीवन और कर्मो का भी। जैसे कह उठती है, इस लम्बे अतीत के जीवन मे मैने जो कुछ भी किया है, सब भूल ही की है। अब थोड़ा-सा रास्ता बाकी रह गया है। उन्होंने सोचा था कि रोशनी में ही चलते-चलते उनका रास्ता खत्म हो जायगा। शाम होने वाली है। आकाश में सूरज डूब गया है, रोशनी फीकी पड़ गई है। अब रात का अँधेरा छा आयगा। विस्मृति के आवेश में अवश शरीर सदा के लिए ऊँघ पड़ेगा।

लेकिन दिन की धारणा केवल एक गलतफहमी ही है। अँधेरे में टटोल-टटोलकर वे रात का रास्ता पार कर रही है। चोट लगकर

गिर पडती है, और फिर सामने बढती है। जीवन में जो सब घटनाएँ घटी है, उन्होंने उनका मूल अर्थ समझा। जो उनको मिला है, जो इकट्ठा कर रखा है, उनको उन्होने अँधेरे में हीरा और मोती के समान समझा है।

रात शेष हो आई है। गोधूलि का भ्रम टूट रहा है। पौ फटने वाली है। इकट्ठी की हुई चीजो की शक्ल बदल गई है। धन नही, रत्न नही, सिर्फ मिट्टी और पत्थर। देह का बन्धन फेककर सुबह की नई रोशनी मे मुक्त आत्मा अब अपने रास्ते पर चली जायगी। अब फिर क्यो ?

हँसती हुई अभया ने कहा, "तूने सच कहा है मेरे बेटे ! ललिता पर रौब डालकर मैने भूल की है। तेरा कुछ भी कसूर नही है। नन्दिका का भी नही। नन्दिका के गर्भ मे मेरा जो नाती बढ़ रहा है, उसे गोद मे लेने की आशा ने ही मुझे पागल बना दिया था। कसूर मेरा है। और किसी का नही। ललिता मुझ पर बिगड गई है। मेरे पास आना नही चाहती है। न आये। यह मेरा ही दुर्भाग्य है।"

विचलित होकर सुनन्द ने कहा, "नही माँ, आने के लिए तो उसने कभी भी मना नहीं किया। वरन् वह उतावली है। नये मकान का काम आगे बढ रहा है। मुझे बिलकुल समय नही है। ललिता घर आयेगी तो मेरे खाने-पीने मे बहुत असुविधा होगी। अगर नन्दिका कटक जायेगी तो ललिता तुम्हारे पास रहेगी।"

"मेरे पास किसी को भी रहना नही चाहिए। कनी कुछ-न-कुछ पका देगी और उसी से ही मेरा काम चल जायगा। हमेशा मै इस घर में अकेली ही तो रही। नन्दिका तो हाल ही मे आई है। मुझे एक पल के समान लगता है—केवल आठ-नौ साल। तुम उसे भी साथ ले जाओ। दोनों तुम्हारे पास वहाँ कुछ रोज ठहर जायें। उनकी हिफाजत करने के लिए यहाँ कोई नही है।"

"तुम दोनों कटक चलो न।"

"मै नही जाऊँगी बेटा। मेरा समय अब खत्म हो गया है। आँखें बन्द होने तक इस घर मे तुम्हारी सम्पत्ति पर पहरा देती रहूँगी, और बरगद के पेड़ के नीचे उसी श्मशान की तरफ देखती रहूँगी, जहाँ लोगों ने तुम्हारे पिताजी के शरीर को जलाकर राख बना दिया था। नन्दिका को तुम कटक ले जाओ। ललिता को वह बहुत याद करती है। स्वप्न में भी देखती है।"

"नन्दिका !"

सास की आवाज कानो मे आई। उसने सब सुन लिया है। दोपहर की चमकीली रोशनी के समान सब बाते उसकी भावनाओं के सामने स्पष्ट दीख रही है। ललिता उनकी अपनी बन गई है। और सब पराये। क्या वे अपनी बुद्धि और विवेक को खो बैठे है ? घर में पैर रखते ही ललिता के बारे मे उन्होने माँ के ऊपर तकाजा करने की हिम्मत की ! माँ के मन मे कितना दुख हुआ है, उनकी बातो से उसका परिचय मिल जाता है।

"नन्दिका !"

अन्दर जाने की हिम्मत ही नही हुई। माँ और बेटे के बीच में खड़ी होना वह नही चाहती। कभी भी वह सास की अबाध्य नही बनी है। आज अबाध्य बनना पड़ेगा। उसकी अबाध्यता ही उनके प्रश्नों का जवाब देगी—बूढी, बीमार, अपाहिज और अभिमानिनी सास को अकेली छोड़कर वह घर से कही नहीं जा सकती।

रोती हुई वह अपने कमरे मे लौट आई। फूट-फूटकर रो पड़ी। सास को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ रहा है। अनुताप तीव्र हो गया है। उनकी दृष्टि मे दुनिया सूनी-सी दीखने लगी है। उनका अपना लड़का

भी अपना नही है। वह दूर हट गया। सबको दूर चले जाने दो, फिर भी वह उन्हे छोड़कर कहीं नही जायगी।

एक रोज उसने सोचा था कि ललिता को उसने स्वामी के पास सौप दिया है। बेवकूफ नन्दिका आज ही महसूस करने लगी कि उसने गलत सोचा था। स्वामी को ही उसने ललिता के पास सौप दिया है।

गर्भ में बच्चा लोटने लगा।

नन्दिका आँखों से आँसू पोछने लगी। वे आ रहे है, मुँह पर विषाद की छाया। नही, वह और दुख नही करेगी। रोयेगी नहीं। हँसेगी। केवल हँसेगी। दूसरो को हँसायगी। अनुताप, अविश्वास, सन्देह और अशान्ति के बादलो की फौज को हँसी और आनन्द के तूफान से वह दूर उडा देगी।

नन्दिका सुनन्द के फीके मुँह की ओर देखने लगी। आग्रह से पूछा, "क्या मेरी 'का' ने चिट्ठी नही दी है ? तबीयत तो अच्छी है न ?"

सुनन्द बोला, "अच्छी है। तुमने चिट्ठी नही दी, इसलिए अभिमान हुआ है। उसने भी चिट्ठी नही दी।"

सुनन्द के कुरते से बटन खोलते-खोलते नन्दिका ने कहा, "कटक जाकर वह बहुत ईर्ष्या और द्वेष सीख गई है। लाकर उसे यही छोड़ जाओ।"

सुनन्द चुप रह गया।

घर मे सुनन्द के दो रोज बीत गये है।

स्वामी की प्रकृति मे इस परिवर्तन को वह खूब महसूस कर रही है। जो हमेशा प्रफुल्ल थे, हँसी खुशी मे डूबे हुए थे, जिनकी बातों में हमेशा रसिकता का आभास मिलता था, अब वे अन्यमनस्क और गम्भीर हो गये है; घर मे जो एक क्षण भी रहना नही चाहते थे, दिन में चार

बार गाँव मे घूमने जाते थे, अब वे केवल बैठे ही रहते है। कभी-कभी बगीचे जाकर इस पेड से उस तक घूमते है, जैसे पत्ते गिन रहे हों। अधिक बातचीत करने का बिलकुल आग्रह नही।

दूर चले जाने से जो खुद पास आकर लाड करते थे, आज उनके पास जाने मे भी उनका मन खुश नही होता। विवश होकर कभी थोडा हँस लेते है।

"कौन बदल गया है ?"

दर्पण पर वह अपनी शक्ल देखने लगी। कनी ने बड़ी होशियारी से अपना काम किया है। कही कुछ भी त्रुटि नही है। केश-विन्यास, माथे का सिन्दूर, आँखों का काजल, पैर की मेहदी और सिर के फूल सबमें ही उसने अपना मन, ममता और कामना को पूर्ण कर रखा है। सुगन्ध महक रही है। शरीर पर चुने हुए गहने, जिन्हे सुनन्द बहुत पसद करता है। कीमती साडी और ब्लाउज, तथापि—

"क्या वह 'का' के बराबर नही हो सकेगी ?"

उसके भीतर का अनास्था भाव 'नही-नही' कहने लगा। नन्दिका से वह सात-आठ साल छोटी है। उसके शरीर मे भरा हुआ नवयौवन है। क्या मर्द लोग इसी मे बँध जाते है ? क्या पेट का बच्चा भी पेट को नही घोटता ? वह कभी भी ललिता से छोटी नहीं बन सकेगी। बेहया भी नहीं।

इश्, कैसे फोटो है वे ! कैसे वह फोटोग्राफर के सामने खड़ी हुई ? क्या उसको शर्म नही लगी ? अधनंगा-सा भेष। यह भी कैसे राजी हो गये ? फिर आग्रह के साथ नन्दिका को देने लाये है। बेशर्म !

नन्दिका देख चुकी है। हँस चुकी है। उसने 'का' का फोटो छिपा रखा है। फिर एक बार निकालकर देखने के लिए बड़ी शर्म लगती है। पत्नी के रूप और यौवन की शोभा केवल उसके पति के लिए, दुनिया के लिए नही। दुनिया के लोगों के मन में कामना जगाने के लिए नही।

नन्दिका कह उठी, "इस भेष में वह कैसे एक मर्द के सामने आ खड़ी हुई ?"

"अरी, वह मर्द नहीं है। सत्रह-अठारह साल का एक लड़का, फोटो खींचता है।"

"लड़का ? तो हमारा छोटा भाई होगा।"

हँस-हँसकर सुनन्द ने स्वीकृति दी।

कनी घर के भीतर आई। नन्दिका को देखकर वह चौंक उठी।

"रो रही हो ?"

आँखों से आँसू पोंछकर नन्दिका ने कहा, "सिर्फ हँसूगी, मैंने यही प्रतिज्ञा की थी। लेकिन मेरी प्रतिज्ञा भंग हो गई। आँखों से अपने आप अबाध्य आँसू गिर पड़े। तुम्हारे भाई कहाँ गये ? एक बजने वाला है, खायेंगे कब ?"

"बाहर के कमरे में पबनापलेई महाजन के साथ वे बात कर रहे हैं। कटक में नया मकान बनवाने के लिए रुपये चाहिए। सुनो भाभी, हमारी अव्वल जमीन से पाँच एकड़ बेचकर वे पबनापलेई से दस हजार रुपये ले रहे हैं।"

"एँ ?"

"हाँ।"

"चुप रहो, माँ के कानों में जायगा तो उनकी जान चली जायगी। वे अव्वल जमीन बेच रहे हैं ?"

"मैं भाई को दोष नहीं दूँगी। ये सब छोटी भाभी की कुबुद्धि है। उनकी अपनी बुद्धि कहीं खो गई है। भाभी, तुम कटक जाओ। मैं पालकी का इन्तजाम किये देती हूँ। सास के लिए फिकर मत करो। मैं उनकी हिफाजत करूँगी। सेवा करूँगी। मेरा कहना मानो, नहीं तो हथेली का गुड़ कोहनी तक बह आयगा।"

नन्दिका पलंग पर बैठी। कनी की बात सुनकर अधपगली-सी हँस-हँसकर पलग पर लोट गई।

कनी चकित-सी देखने लगी। यह हँसी क्यो? उनके मन मे किस दुख और हताश का तूफान उठ रहा है?

हँसी बन्द हो गई। गम्भीर होकर नन्दिका बोली, "कनी, हथेली का गुड़ सचमुच कोहनी तक बह गया है। मेरी उम्र से तुम दस साल घटा सकोगी? दस साल के पहले का चमकता हुआ रूप और यौवन मेरे बदन पर ला सकोगी?"

"तुम यह क्या कह रही हो?"

"कटक जाऊँगी तो भी तुम्हारे भाई के प्रेम का एक कण भी और मुझे नही मिल सकेगा। उसके लिए मैं उन्हें दोष नही दूँगी। ललिता का भी कोई दोष नही है।"

"दोष उस बूढी का है! मौत हो जाय उसकी—"

"कैसी बात मुँह पर ला रही हो!"

नन्दिका फिर रोने लगी। बोली, "वे जीती रहें! जिसके लिए सुख का हमारा यह सरल संसार जटिल बन गया है, केवल उन्हीं के कल्याण से वैसा होने दो। उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाय। मैं तुम्हारे भाई का प्यार नही चाहती हूँ। मेरे भीतर ही उन्होंने सब प्यार को संचित रखा है। बूढी के कल्याण से वे रूप लेकर इस दुनिया को आये। वे आँखें भरकर देख ले! उसके बाद चलना है तो चल बसे। कनी, सास बूढ़ी मेरी जीती रहें। सब देवताओ के पास तुम वही प्रार्थना करती रहो। उन्होंने तुम्हारी ही प्रार्थना सुनी है। तुम्हारे भाई को मेरे भीतर सचित रखा है। वे जरूर तुम्हारी प्रार्थना सुन लेगे। तुम्हारी तपस्या का फल जीवन लेकर बाहर आयगा। छोटे सुनन्द को गोद में लेकर वे बड़े सुनन्द की कटु कथाएं भूल जायँगी। हँस-हँसकर आँखे मूंद लेगी।"

"तुम्हारी बाते मैं मानूंगी भाभी, उनके लिए जरूर प्रार्थना करूँगी।

जीवन देकर प्रार्थना करूँगी। उनकी सेवा करूँगी। हिफाजत करूँगी। तुम मेरा कहना मानो। कटक जाओ।"

"तुम्हारी सेवा व्यर्थ होगी। सास कटक नहीं जायेंगी। मेरी अनुपस्थिति वे सह नही सकेंगी। मेरे भीतर ही अब वे उनके सारे जीवन की कामनाओ का स्वप्न देख रही है। मैं चली जाऊँगी तो उनका स्वप्न टूट जायगा। मन भी टूट जायगा। वे और जी नही सकेंगी। मेरी बात समझो। उन्ही के आनन्द के लिए अपने सर्वस्व को ही मैंने ललिता के हाथ सौप दिया। और फिर क्यों कटक जाऊँगी?"

नन्दिका की आँखों से आँसुओं की धारा बह पड़ी। कनी पास आकर खड़ी हुई। उसकी भी आँखें भरी हुई थी।

बोली, "तुम्हारी कनी के जीते-जीते तुम आँखों से आँसू मत बहाया करो भाभी!"

नन्दिका अपने गले से हार खोलने लगी।

"यह क्या कर रही हो?"

"इनकी भी अब जरूरत नही है। इसे क्यों पहना दिया था? जूड़े पर फूल क्यों सजा दिये थे? पैरों पर मेहदी लगा दी थी? मेरी उम्र ढल चुकी है। सात साल या दस साल तुम कम नही कर सकती कनी?"

"भाई के ऊपर तुमने अभिमान किया है? ललिता को याद करके उन्होंने तुम्हे लाड नही किया, इसलिए? भाभी, तुमको मैं क्या केवल वहीं के लिए सजा देती हूँ? नही-नही, जब तुमको इस रूप में देखती हूँ तो मेरी आँखे पवित्र हो जाती है। दुनिया में जो भी देखता है वह सराहने लगता है। ये बाते मेरे कान में आकर कानों को पवित्र कर देती है। मेरे जीवन के सब दुख पानी हो जाते है। मै अपने को अपने बाप के घर में खेलती हुई बेफिक्र बेटी के समान महसूस करने लगती हूँ। दौड़ जाती हूँ, किसी देवता के पास अपनी प्रार्थना पेश करने के लिए।"

कनी की आँखों से आँसू बहने लगे।

नन्दिका चकित होकर देखने लगी। कनी ने अपने जीवन में कभी भी कुछ नही माँगा है। यह अनुरोध जरूर रखेगी। नन्दिका फिर अपना हार पहनने लगी।

कपड़े के आँचल मे कनी ने नन्दिका की आँखों से आँसू पोछ दिये। बोली, "तुम्हारी आँखों के आँसू मेरे मन में जैसे गरम मॉड उडेल देते है। तुम क्यों रोती हो ? क्या भाई ने प्यार नही किया, लाड नही किया, इसलिए ? ठहरो, सामने भी प्रार्थना करूँगी। अब से केवल मनावन नही करूँगी। अब से मैं बिलकुल गुस्सा हो जाऊँगी। तुम हँसोगी न ?"

नन्दिका हँसने लगी। बोली, "एक चीज तुमसे माँगूँगी, मुझे दोगी न ?"

"सारा जीवन तो तुम्हारे लिए है।"

"केवल एक बार लाड।"

"सचमुच भाभी ? सर्वस्वहीना कनी से तुम इतनी बडी चीज माँग रही हो ? भाभी, मेरी ठीक याद है, जब से मेरी उम्र हुई, तब से काली और कुत्सित कनी को कभी किसी ने लाड नही किया है। कनी ने भी कभी किसी को लाड करने की हिम्मत नही की है। लाड़ करने के आग्रह को मैंने अपने खोखले मुँह के होठो के भीतर छिपा लिया है। मेरे जीवन से बढकर अमूल्य चीज मेरे पास वही रखी हुई है, जिसके लिए मैंने उसे सचित किया है उसको जिसे पहले देने के लिए मनौती कर रखी है, उसके पहले और किसी को देने से मेरा भण्डार क्षीण हो जायगा। भाभी, केवल उसी को छोड़कर तुम सब कुछ माँग सकती हो।"

"किसके लिए तुमने सचित कर रखा है ?"

नन्दिका के चिबुक को हाथ में लेकर हँस-हँसकर कनी बोलने लगी, "पूछ रही है, जैसे बिलकुल मालूम ही नही है। उसी के लिए, गर्भ में तुमने जिसको धारण किया है।"

नन्दिका खिल-खिलाकर हँस उठी।

सुनन्द आँखें भरकर नन्दिका के आग्रहोज्ज्वल हँसते हुए रूप को देखने लगा। पवित्र निर्मल भेष। जैसे उम्र पीछे चली गई है। बात-बात मे हँसी, बच्चे के समान लाड़लापन भरा हुआ है।

सुनन्द मुग्ध हो गया।

चमकती हुई रोशनी घर के भीतर हँसी की लहरें छेड़ देती है। प्रथम पहर की रात का शीतल आह्वान मन की कामनाओं को नन्दिका के मुँह पर फैला गया है। मेघमुक्त, सुनील और तारांकित आकाश की शोभा मानो नीचे की तरफ बह आ रही है। प्रेम की प्रतिमा नन्दिका के नन्दित मुख पर समा रही है।

उसी की नन्दिका। स्वामी के पैरों पर उसने सर्वस्व दान किया है—देह, मन, जीवन और इन तीनों का सर्वस्व, टेबल के ऊपर नोट की गड्डी रखी हुई है। दस हजार रुपये। नन्दिका का अनुरोध कान में बज रहा है—"छि, जमीन बेचो मत। लोक-निन्दा होगी। माँ के मन में दुख होगा। वे जी नहीं सकेंगी। उपजाऊ जमीन को याद करके उनका जीवन चला जायगा, उनका संसार अब थोडे दिन का ही है। उन्हें हँसी-खुशी में आँखें मूँदने दो। मेरा कहना मानो, जमीन बेचने का नाम मत लो।"

"क्या मकान आधा पड़ा रहेगा? व्यापार से अधिक रुपये मकान में लगाऊँ तो व्यापार भी अचला हो जायगा।"

"मैं दस हजार रुपया देती हूँ, अपने रुपये तुम ले जाओ। बक्से के भीतर रखे हुए रुपये किसी काम के नहीं होते। जमीन बेचने का नाम मत लो, भगवान देंगे तो फिर रुपये मिल जायँगे; लेकिन जमीन नहीं मिलेगी।"

"मै तुम्हारी ही बात मानूँगा।"

टेबल के ऊपर नन्दिका ने रुपये गिनकर रखे हैं। दूसरे दिन वह कटक चला जायगा। इसीलिए छोटे चमड़े के सूटकेस के भीतर नन्दिका

ने बहुत-सी चीजें सजा रखी हैं। ललिता के लिए अच्छी-अच्छी कीमती साड़ियाँ, ब्लाउज और गहने।

रुपये के ऊपर से सुनन्द की दृष्टि नन्दिका के निर्मल उज्ज्वल और खिलते हुए आनन पर आ पडी।

सुनन्द पलंग पर बैठा है। बोला, "सुनो नन्दिका।"

हँस-हँसकर नन्दिका पास गई, उसका हाथ पकड़कर सुनन्द ने उसे पास बिठाया।

और देखता रहा। मानो मुँह में वाणी ही नही रही थी। अन्तरात्मा कह रही थी, 'तुम्हीं तो बडी हो। इस संसार मे सब खेल तुम्हारे ही है। तुम्हारी उदारता के सामने सबका मन नम्र हो गया है। तुम कितनी भी बड़ी क्यों न हो, फिर भी तुम मेरी पत्नी हो। हमेशा मेरी नजर में छोटी ही हो। तुम्हारा स्थान वहाँ नहीं है।'

मुग्ध सुनन्द के बाहुपाश में नन्दिका। वह स्वर्ग का आनन्द अनुभव कर रही थी। मन चीत्कार कर कनी से कह रहा है—तुम्हारी अमूल्य चीज अपने खोखले मुँह के ओठों के भीतर छिपाकर तुम किसी अनागत भविष्य के शिशु के लिए रख दो। देखो कनी, दरवाजा खुला है। आँखे भरकर देखो, वे बदल नहीं गये है; कभी बदल नही सकेगे। सदा के लिए वे मेरे ही है।

"कटक नही जाओगी ?"

"हर क्षण में प्राण वही चाह रहा है।"

"तो कल चलोगी मेरे साथ ? तुम्हें देखकर तुम्हारी 'का' कितनी खुश हो जायगी। वह तुमको बहुत याद कर रही है। उसको वहाँ अकेले अच्छा नहीं लगता।"

सुनन्द के हाथ को दोनों हाथों में पकड़कर नन्दिका ने कहा, "माँ का मन और थोडा बदल जाने दो। बूढ़ी हो गई है। पके हुए पत्ते के समान हैं। फिर वह सोचती हैं कि अब नदी और नहर पार होकर

जाना अशुभ होगा। उनके हिचकिचाते हुए मन मे हम क्यों डर या संदेह पैदा करें ?"

सुनन्द चुप हो गया। बाहुपाश शिथिल हो गया।

"क्या मन मे दुख हुआ ?"

"नहीं, माँ की बात सोच रहा हूँ।"

सुनन्द के दोनों बाहु अपने पास लौट आये।

"मेरे पेट के भीतर वह बच्चा लोट रहा है।"

"सचमुच ?"

"हाँ, वह क्या कहता है, मालूम ?

"दुष्ट ! क्या कहता है ?"

"तुम उसकी बातें सुन नही सकते हो।"

"क्या तुम सुन सकती हो ?"

"जरूर, वह कह रहा है, दुनिया के सब बाप एक रोज माँ के पेट में खेल रहे थे। ठीक मेरी तरह। दुनिया के सब बच्चे भी एक रोज बाप बनेंगे।"

सुनन्द के मुँह की ओर देखकर नन्दिका हँसने लगी। सुनन्द इस बात का मर्म समझ गया। कितनी होशियारी से नन्दिका ने उसे सावधान बना दिया है—तुम भी एक रोज इसी तरह माँ के पेट में थे। उन्होंने तुम्हारा पालन किया है, तुमको बढाया है, मनुष्य बनाया है। तुम उनके मन को कैसे दुख दे सके, फिर इस उम्र में ?

मुँह सुखाकर सुनन्द ने कहा, "मैंने अन्याय किया है नन्दिका। 'का' को मैं यहीं लाकर छोड़ जाऊँगा।"

"मेरी बात को क्या तुमने गलत समझा ? 'का' को यहाँ छोड जाने के लिए मैं बिलकुल नहीं कहती हूँ। अब थोड़े दिन के लिए वह कटक में रहेगी तो अच्छा ही होगा। हम दोनों मे से किसी एक को माँ के पास रहना ही पड़ेगा। माँ ने तो जिद्द की है कि गाँव छोड़कर और

कही नही जायँगी, उनके मन को बहलाकर हमे उनके मन को बदलना चाहिए, प्रतिवाद करेगे तो जिद्द और भी अधिक बढ़ जायगी। मन में दुख ही होगा।"

सुनन्द नन्दिका के बारे मे सोचने लगा—'ललिता को गॉव मे छोडकर नन्दिका को कटक ले जाने से भी अच्छा हो सकता हैं। बिना किमी आफत के वह कैसे मुक्त हो जाये, यही चिन्ता है। क्या माँ राजी हो जायगी ? अच्छा, अब थोडे दिन इन्तजार करना चाहिए। शायद मॉ का मन बदल भी सकता है।'

"इतना क्या सोच रहे हो ?"

"तुम्हारे बारे मे।"

"रहने दो। सूखकर चावल चना हो गया होगा। आओ—" नन्दिका सुनन्द का हाथ पकड़कर खीचने लगी।

ललिता का समय सुख और आनन्द से बीत गया है। स्वामी उसको केवल प्यार नहीं करते, उसे सम्मान भी दिखाते है। उसके मुँह से जो कुछ भी निकलता है, तुरन्त ही उसकी पूर्ति हो जाती है। उसकी कोई भी बात टाली नही जाती। उसे हर किस्म की आजादी मिली है। स्वामी की सम्पत्ति आज उसी के हाथ में है। वह अब और किसी की इच्छाधीन नहीं है।

महीनों पर महीने बीत गये है। सर्दी का समय चला गया है, अब मलय पवन बहने लगा है। उसने गाँव को लौटने का नाम भी नही लिया है। स्वामी भी कभी उँसी के बारे में नहीं कहते है। बीच-बीच में घर की खबर लेकर 'मा' की चिट्ठी आती है। हर चिट्ठी में केवल माँ की खबरें रहती है।

—दिनों दिन वे कमजोर होती जा रही है, बारह रोज में तेरह किस्म की बीमारी होती है।

इच्छा होती है तो ललिता भी इधर-उधर से चार बाते लिखकर जवाब भेज देती है।

दोनों समझती है कि पत्र-विनिमय केवल बाहर की भद्रता रखने के लिए। उस पत्र मे आन्तरिकता कभी नही रहती।

घर की खबर लेने के लिए सुनन्द को समय नही है। मकान का काम पूरा होता आ रहा है। होली के पहले काम खतम होना चाहिए, तब होली के रोज वे नये मकान को आ सकेगे। इस घर को भी बढाना पड़ेगा। व्यापार भी वही चलेगा। गाँव से सब कटक आ जायँगे। सब सुख शान्ति से रहेगे।

ललिता को भी उसने ऐसा ही समझा दिया है। उसमे ललिता क्यों प्रतिवाद करती? गाँव के सब आदमियो को ही आने दीजिए। उसके हाथ में स्वामी और स्वामी की सम्पत्ति है। उसने भी गड्डी-गड्डी नोट सजा रखे है। उसके नाम पर डाकखाने में हिसाब भी खुल गया है। बक्से मे किस्म-किस्म के गहने और किस्म-किस्म की साड़ियाँ। उसको क्या फिकर?

कभी-कभी भाभी भी कटक आती है, दो-चार रोज ठहर जाती है। बहुत प्रशसा करती है। बुद्धि सिखा देती है। जाते समय खर्चा भी लेकर जाती है। उनके ऋण का तीन गुना ललिता चुका सकी है। उसके भाई ने अपने गाँव में एक छोटी-सी दुकान भी खोली है। सौदा लेने के लिए वे बराबर कटक आते है। बहन की खबर लेकर जाते है। अपनी बहन और बहनोई के वे बहुत आभारी है। सुनन्द के गोदाम से माल लेकर घर लौटते है। अपना लड़का भी ललिता के पास है।

वही दस या ग्यारह साल का होनहार लड़का रवि, वही ललिता की आजादी का सहायक बना है। थोड़े से अर्से में ज्यादा पढ़ सकेगा,

इसलिए स्कूल मे न पढ़कर घर में ही पढ़ता है। पढ़ाने के लिए सवेरे मास्टर साहब आते है। दोपहर का समय ऐसे ही बीत जाता है। अपनी दीदी का वह हथियार बन गया है। हर काम को वह अगुआ होकर करता है।

"रवि !"

"क्या दीदी ?"

तुम्हारे फूफाजी चोद्वार गये है। आधी रात को लौटेंगे। घर मे मन नही लगता। उनके घर की तरफ घूमने जायेंगे तो कैसा होगा ?"

"किनके घर को दीदी ?"

ललिता सोचने लगी—किनके घर को ? थोड़े से दिनों में अब बहुत बन्धु हो गये हैं। वे सब स्तुति ही करने आते है। किसी किस्म की सुविधा की कामना लेकर वे आते है। सिर से पैर तक केवल प्रशसा से ही मडन कर देते है। हँसी से खाँसी तक पसन्द करते है। ललिता के रूप, स्नेह, बुद्धि तथा कार्यकुशलता को वे लोग आदर्श स्थानीय मानते है। किसी ने उसे लड़की बनाली तो किसी ने भतीजी। फिर किसी-किसी ने तो छोटी बहन कर ली है।

उसके सब कुछ भोलेपन और अन्तर्निहित गुणों का विकास इसी कटक में ही होने लगा है, अति अनुरक्त रूप-गुण से मुग्ध स्वामी के पास, और स्वाधीन जीवन के बेलगाम चलन मे। गोबर के ढेर मे मुक्ता की खोई हुई ज्योति के समान किसी दूर गाँव की अनपढ़ बहुओं के झुड मे उसकी ज्योति छिपी रही थी। अब शहर की आधुनिकता की रोशनी मे चमक उठी है। दूसरों की आँखों को चकित कर दिया है। स्वामी बिलकुल मुग्ध हो गये है। स्त्री को घूँघट में हर समय रहने के लिए आकुल हो उठे है। दूसरों को भी चकाचौंध हो जाती है।

अपने को और आँखों के सामने आते हुए दूसरों को देखकर ललिता अपनी कीमत का निरूपण करती है। वही पुराना मुँह, वही आँखें,

कान, ओंठ, गला, देह और हाथ-पैर। कुछ भी नही बदला है। इनकी जैसे कुछ भी कीमत नही है। इनको सजाने मे ही कीमत है। इनको सजाने के लिए साधनो का इन्तजाम करना जैसे आधुनिक सभ्यता का एक बहुत बड़ा अग बन गया है।

सब तो बाते करते है, हँसते है, अभिमान करते है, लाड़लापन दिखाते है, अगों की चालना करते है, बैठते है, आते ही जाते है, लेकिन हरएक मनुष्य मे दूसरों को मुग्ध और तन्मय कर देने वाला मोहिनी मत्र नही रहता। ललिता के जीवन मे शहर की आधुनिकता ने नया जीवन और नई प्रेरणा ला दी है। सिनेमा, थियेटर और दोस्त। वह सब आकर अनुकरण करती रहती है। सब ही बहुत पसन्द करते है, केवल दो आदमी नही करते है।

राजीव! नजदीक आते है तो गम्भीर हो जाते है। नीचे की ओर देखकर बाते करते है। सक्षेप मे जवाब देते है। अधिक कहने की जरूरत पड़ती तो कहते है, भाई से कहूँगा। वे देवर है। फिर भी सुनन्द का कर्मचारी भी है ना! उनका गाम्भीर्य ललिता को उसके नये चलन से निवृत्त नही कर सकता। ललिता अपने मन मे उसकी अवज्ञा करती है।

तुहिना! स्वामी के साथ कभी-कभी वह भी सुनन्द के घर आती है। खुद तुहिना भी कभी-कभी दोनों बच्चो को लेकर फौरन पहुँच जाती है। हँसी-खुशी मे समय बीत जाता है। फिर भी तुहिना की प्रशसा के भीतर चाकू की धार के समान समालोचना छिपी रहती है। बात-बात मे वह नन्दिका का जिक्र करती है। "हाँ ठीक है ललिता, वे थोड़े पुराने ढग की है। सिर ऊपर नहीं करती है। देखना नही जानती हैं, हँसना भी नही जानती है। ओठों पर गुलाबी रंग और मुँह पर टेलकम पाउडर का लेप देने से रूप की कीमत बढ़ जाती है, यह उनको मालूम नही है। ब्लाउज पहनती है तो गले के हार की हस्ती ही लुप्त

हो जाती है। कपड़े पहनती हैं तो कीमती साये का आभास भी नही मिलता। बिलकुल देहाती। उनको भी एक बार कटक लाओ। कुछ रोज सभ्य समाज के साथ परिचित हो जाने मे वे भी सभ्य हो जायेंगी। अपनी कीमत समझ लेगी।"

"वे आ नही सकेंगी।"

"हाँ, माँ होने वाली है ना? बडी दिक्कत। देखो तो ललिता ये बच्चे भी मुझे कैसा परेशान कर देते है। माँ होने से छुटकारा पाने के लिए आजकल लोग बहुत कोशिश करने लगे है लेकिन नन्दिका को तनिक-सी भी बुद्धि नही है।"

अतनु बाबू सिनेमा का निमन्त्रण देते है। फ्री पास भेज देते है। खबर भेजने से, फोन से एक बार बुलाने से मोटर गाड़ी तक भेजने के लिए खबर देते है। लेकिन सुनन्द दूसरो के सामने हीन होना नही चाहता है। सिनेमा देखना है तो अपना पैसा खर्चा करके देखना अच्छा है। जब तक अपनी मोटर गाड़ी नही आती तब तक साइकिल रिक्शा से जाने से सम्मान समझता है। उसमे उसकी हेठी नही होती।

गाँव को लौट जाने की याद आती है तो मन फीका पड़ जाता है।

मकान का काम पूरा हो गया है। नया डिजायन। केवल पलस्तर और सफाई बाकी है। नीचे की मजिल में चार कमरे। ऊपर तीन। बीच के दो कमरों को मिलाकर लम्बा हॉल बना है। बरामदा भी बहुत चौड़ा है। ड्योढ़ी। अलग रसोई और भण्डार घर। मोटर गैरेज। आधी एकड़ की जमीन। घर के सामने पेड़-पौधों और फूलों के बगीचे के लिए जगह है। पीछे की तरफ बगीचा है। जमीन के चारो तरफ लहराती हुई दीवाल।

देखने से आँखे भर उठती है। मन भर उठता है। सुनन्द तृप्ति के

साथ साँस लेता है। कितना बडा काम पूरा हो गया है और केवल दस हजार रुपये की जरूरत है। उतने मे ही बाकी काम पूरे हो जायेगे। अब सिर्फ पाँच-सात हजार का कर्जा हुआ है फिर दस एकड जमीन बेच दी जायगी तो सब ठीक हो जायगा। धीरे-धीरे अपनी तमाम जमीन को वह भिन्न-भिन्न ग्राहकों को बेच चुका है। घर के नजदीक अब पन्द्रह-सतरह एकड़ जमीन बाकी है। उसमे से सात एकड़ और भी बिक जाये तो कुछ नुकसान नही।

नये मकान की छत के ऊपर सुनन्द टहल रहा है। उसे मालूम है, माँ के पूछे बिना नन्दिका का अनुरोध मानकर कटक से ही उसने जमीन बेची है। बाकी जमीन भी बेचने जा रहा है। जमीन रखने मे अब कुछ भी फायदा नही है। वरना जमीन के बजाय व्यापार मे रुपया लगाकर चार पैसा कमाना बेहतर है।

"इतना क्या सोच रहे हो ? देखो तो, कितनी सुन्दर चाँदनी खिल रही है ! लेकिन हमारा यह मकान बहुत निराला-सा है।"

"नही ललिता, सब यहाँ आ जायेगे तो घर भर जायगा। चारो तरफ बिजली की रोशनी लगा देगे। बढ़िया दिखने लगेगा। देखो, यही खडे होने से महानदी भी नजर आयेगी। देखो तो—"

"हाँ, दीख रही है।"

"इस तरफ आओ, देखो काठजोडी भी दीखती है।"

"हाँ, दीखती है।"

"दोनों तरफ दो नदियाँ—नन्दिका और ललिता।"

सुनन्द की इस लाड़-भरी बात से उस रोज शाम को ललिता की नस-नस मे बिजली की चमक छूट नही गई। एक ही आवाज आकर बिजली को रोकने लगी—नन्दिका, 'का'—। वही है महानदी जिसकी इच्छा से काठजोड़ी का उद्भव हुआ है। धूसर चाँदनी मे उसकी रेतीली छाती दूर से चमक रही है। वही है ललिता।

बोली, "अब लौट जायेगे।"

"चलो, मिस्तरी और मजदूर बाहर इन्तजार करते होगे। क्या अतनु बाबू के घर जायेगे ?"

'ना।"

सुनन्द पुरी गया है। रात की गाडी से लौटेगा। जरूरी काम था। ललिता बहुत चिन्ता मे पड़ गई है। 'सा' ने चिट्ठी लिखी है—"माँ अब बिस्तर से उठ नही सकती है। खाना-पीना छोड़ दिया है। पानी भी पेट मे नही जा रहा। सब उल्टी हो जाती है। बहुत कमजोर हो गई है। देह काँप रही है। तुम दोनो को देखने के लिए बहुत आकुल हो रही है। मेरी तबियत अच्छी है।"

दूसरी चिट्ठी मे—"दस रोज पहिले सिर्फ दो-तीन घण्टे रहकर चले गये, जैसे घूमने आये थे। जो दवा तुम लाये थे, वह वैसे ही पडी है। माँ ने उसको छुआ तक नही है। वैद्य से मैंने दवाई की व्यवस्था की है। बहुत मुश्किल से खा रही है। जब तुम गये तब वे थोड़ी-सी अच्छी थी। घूमती-फिरती थी। अब बिस्तर से बिलकुल नही उठती है। तुम दोनो को देखना चाहती है।

—"काली गाय का बछड़ा मर गया है। तीन रोज के पहले। गाय केवल रम्भाती ही रहती है। आज सवेरे मैंने उठकर देखा कि बूढ़ा कुत्ता भी मर गया है। इस घर के ऊपर अब कुछ आफत आ पहुँची है।

—"भय कुछ नही। मैं बहुत देव-देवियो की पूजा करा रही हूँ। दुष्ट ग्रह अवश्य शान्त हो जायेगे। मेरा कहना मानोगे ? जितना हो गया, अब जमीन नही बेचना चाहिए। माँ दिन-रात केवल उसी की चिन्ता कर रही है।

—"क्या मकान का काम अब तक पूरा नही हुआ है ? और कितने रुपये लगेंगे ? जब गये बार आये थे, मेरे पास जितने रुपये थे, मैंने तुमको सब ही दे दिये। और मेरे पास कुछ भी नही है। घर मे जितने भी गहने थे बेचकर मकान के काम मे लगाने के लिए तुम्हें दे चुकी हूँ। अब मैंने जितने पहने है, केवल उतने ही बाकी है। हाथ मे दो-दो कगन और गले में एक छोटा-सा हार होने से मेरा काम चल जायगा। गहनों का वजन लेने की अब मुझमे ताकत नही है। तमाम गहने मैंने खोलकर रखे है। तुम जब आओगे, ले लोगे। लेकिन उतने में ही मकान का काम खतम होना चाहिए।

—"ज्यादा जमीन बिकने के लिए अब आग्रह नही रखना। चिट्ठी पाते ही जरूर आयेंगे। ललिता को भी साथ लायेंगे। जरूरत होगी तो वह भी केवल एक रोज ठहरकर तुम्हारे साथ ही कटक लौट जायगी। माँ तुम दोनों को देखना चाहती है।"

'सा' की दोनों चिट्ठियो का असल मतलब क्या है, अच्छी तरह से पढ़कर समझने का ललिता मे धीरज नहीं है। वह जानती है कि उसके पास से सब गहने आ चुके है और अब ललिता के पास सचित रखे हुए है। एक भी नही बेचा गया है। उल्टा जमीन बेचने के लिए ही उसने सलाह दी है। उसकी भाभी ने उसे वैसे ही कहा था। जब सौत के साथ रहना पड़ेगा तो पास में सम्पत्ति जमा करनी चाहिए। जमीन का बँटवारा होता है। लेकिन गहने या सम्पत्ति बाँटी नही जाती।

सास ढूँढ़ रही है। जाने-आने का समय। एक बार जाकर देख न आने से लोग क्या कहेंगे ? ओ हो, बहुत प्यार करती है। केवल गालियाँ देने के लिए ही बुलाया है, बाल से खाल निकालने के लिए। उनके पेट में जितना जहर भरा हुआ है उसको निकालकर वे आँखें मूँदना चाहती है।

उसे चुप रहना चाहिए, किसी स्थिति में भी वह कभी जवाब नहीं देगी। केवल थोड़े-से गहने पहनकर जायगी। बाकी यही रख जायगी।

क्या भाभी के पास खबर भेजेगी ? खबर पाकर आते-आते उनको तीन रोज लग जायँगे। इसके बीच मे अगर सास को कुछ हो जायगा तो सदा के लिए बदनामी हो जायगी।

आज सिनेमा मे एक बहुत अच्छा चित्र है। कल से अतनु बाबू ने फ्री पास भेज दिया है। गाड़ी लेकर आने के लिए उन्होने फोन भी किया था। उसने खुद ही मना कर दिया। तबियत ठीक नही है। स्वामी के पास फ्री पास देकर कहा कि उसने मना कर दिया है।

स्वामी खुश हो गये। बोले, "ठीक ही किया है। दूसरों के पास हमें न्यून होना नहीं चाहिए। पुरी से लौटने के बाद मै खुद तुम्हें उस चित्र को दिखाने के लिए ले जाऊँगा। बहुत अच्छा चित्र है।"

अतनु बाबू के निमन्त्रण को स्वामी पसन्द नहीं करते है। क्यो ? वह राज-पुत्र है। अच्छे आदमी है। भद्र। बहुत प्यार करते है। सम्मान भी दिखाते है, खास तौर से ललिता को। उसकी देह पर जहाँ भी जो कुछ नवीनता रहती है, उनकी दृष्टि बार-बार वही निबद्ध-सी हो जाती है। जैसे मुग्ध दृष्टि कह उठती है, बहुत अच्छा हुआ है। मैं बहुत पसन्द करता हूँ। बिलकुल चित्रतारिका श्रीमती असीमा की तरह।'

किसने सजा दिया है ? नारी की देह में स्वर्ग की असीम और अशेष सुषमा भरी हुई है, नरक की दूषित और भयकर कुत्सितता भी। उसके विकास मे श्रेष्ठता और हीनता की सूचना। किसने सजा दिया है ?

ललिता के मन में गर्व-सा पैदा होता है—"खुद मैने। मुझे किसी ने नही सिखाया है। देखो और खुश हो।"

हँसती हुई दृष्टि जवाब देती है, "मैं तन्मय हो गया हूँ। यह लो फ्री पास, क्या गाड़ी भेज दूँ ?"

स्वामी का मन कह उठता है, "बन्धु अतनु की दृष्टि पवित्र नही है।" मुँह कहता है, "हम दूसरों के सामने झुकेंगे नही ललिता।"

ललिता का मन उपहास कर उठता है, "क्या डर रहे हो ? मन में सन्देह आ रहा है ?" मुँह कहता है, "मना कर दो। तबियत ठीक नही है।"

सुबह की गाड़ी से वे पुरी चले गये। आ पहुँचा मनोरंजन फोटोग्राफर। स्वामी की नजर से वह पढ़ा-लिखा एक लड़का। सरल, सुबोध और साधु। वे उसे क्यों इतना प्यार करते हैं ? क्या उसकी शिशु सुलभ सरलता के लिए ? विकारहीन निर्भीक सकोच के लिए ? चाँदी के तार के समान उसकी चमकीली पतली देह। लम्बा है। धार के समान मुँह। बिजली-सी चंचल गति। बिखरे हुए बाल। मुँह पर उस्तरा नही लगा है। धूसर रग की छोटी-छोटी मूँछ और दाढी। चमकीली आँखें। साफ सुथरा। मुक्ता के समान दाँत, जैसे जड़ दिये गये है।

हमेशा मुस्कुराता रहता है। जब मुस्कुराता है तब उसका सुन्दर मुँह और भी सुन्दर दीखता है। बातचीत कम करता है—मुँह को और थोड़ा-सा उठाइये। बस उतना ही। साड़ी को थोडा-सा सिर के ऊपर उठा दीजिये। ज्यादा उठ गई। गले का हार बिलकुल छिप गया है। ठहरिये।

बिजली की गति से नजदीक आता है। लौट जाता है। जी हाँ, अब ठीक हो गया। थोडा-सा हँसिये। एक, दो, तीन !

उसके बाद, नमस्कार।

वे भी कह रहे थे कि चित्र अच्छा है। वे आज जाने वाले है। वे कभी सिनेमा में चित्र देखने के लिए नहीं जाते है। इस जमाने का फैशन देखने जाते है। लेकिन खुद दूर रहते है।

लीजिये आपका बड़ा किया हुआ फोटो। यह दूसरा है चित्रतारिका श्रीमती असीमा देवी का। 'अप्सरा' चित्र में वे उर्वशी बनी है।

मिलाकर देखिये। अवश्य थोडा ही फर्क जरूर रहेगा। असीमा के मुँह का गठन इतना सुन्दर नहीं है। उनके मुँह पर पाउडर लगा हुआ है।

प्रफुल्ल होकर ललिता मिलाकर देखने लगी। शायद वह अधिक सुन्दर भी हो सकती है, लेकिन असीमा के मुँह की हँसी, आँखों से देखने का ढंग, देह की अर्द्धपरिस्फुट भंगिमा, उसके ओठों में नहीं है।

मुँह फीका पड गया। वह समझ गई कि उसका उर्वशी होना या असीमा होना अब तक भी बाकी है।

मनोरंजन कहने लगा, "आप जो फर्क देख रही है, उसके लिए फोटो का यंत्र या फोटोग्राफर दायी नही हो सकते। कुलवधू और चित्रतारिका के बीच में यह फर्क जरूर रहेगा, और रहना भी चाहिए। असीमा की तस्वीर मुझे दीजिये। अब अपनी तस्वीर को देखिये। अवश्य पसन्द आयगी।

ललिता हँसी नही रोक सकी। मनोरंजन की ओर देखने लगी। वह वैसा ही गम्भीर। चला जा रहा है। कहा, "सिनेमा जाने के समय इसी रास्ते आयेंगे। मैं भी जाऊँगी।"

"सुनन्द बाबू ?"

"वे पुरी चले गये हैं। रात की एक्सप्रेस से लौटेंगे।"

"मैं थोड़ी देर करके जाता और जल्द लौट आता। कुछ काम था।"

"नहीं, आज थोडा जल्दी आइये और देर करके लौटिये। आपका बिल कितना हुआ है ?"

"सुनन्द बाबू को भेज दूंगा। नमस्कार।"

"जरूर आयेंगे।"

"कोशिश करूँगा। नमस्कार।"

ललिता ने कई दफा अनुरोध किया है। मनोरंजन नहीं आया है। भेंट हो जाने से कुछ-न-कुछ एक कैफियत दे दी है। आज भी वह आयगा, उसमें क्या स्थिरता है ? वह आये या न आये, आज ललिता जरूर

सिनेमा देखने जायगी। नही तो रवि को साथ ले लेगी। क्या गाड़ी भेजने के लिए अतनु बाबू को फोन करेगी ?

सास बीमार पड़ी है। तुरत जाना चाहिए। कुछ हो जायेगा तो हमेशा के लिए लोग कहते रहेगे। गाँव के लोग निन्दा करेंगे। उनकी निन्दा और प्रशंसा से बचना सम्भव हो सकता है, लेकिन 'सा' एक रोज जरूर कहेगी, बात तो बहुत कह रही है, लेकिन सास जब मरी तब उनके मुँह मे तू एक बूँद निर्माल्य का पानी नही दे सकी।

जन्म की माँ। वही स्वामी भी एक रोज कहने लगेगे, किसी की भी एक दूसरी सास पैदा नही होती है। अब किसकी सेवा करोगी ?

ललिता उठ बैठी। बाल बिखरे हुए है। सिर चकरा जाता है, ठीक सिर के ऊपर के बिजली के पखे के समान। बाहर दोपहर की धूप जैसे उपहास कर रही है। दो कौवे चिल्लाने लगे। क्या वहाँ कुछ हो गया है ?

ललिता खडी हुई। खिडकी के पास गई और बाहर की तरफ देखने लगी। उपाय नही है। वे रात के पहले नही लौटेगे। भगवान सास को और एक ही रोज जिन्दा रखे। वह कल सवेरे ही चली जायेगी। स्वामी को आज लौटने दो, वह जरूर जायेगी।

पास कनी बैठी है। आधी रात में भी काली गाय रह-रहकर रम्भाने लगती है। अपने बछड़े को ढूँढ रही है। कनी को बहुत गुस्सा आ रहा है। वह गन्धिया महर कहाँ चला गया ? गाय के पास कुछ पुआल दे देने से शायद वह चुप हो जाती। उसकी आवाज से भाभी की नींद टूट जायगी।

धीरे-धीरे कनी पलंग पर से उठी। मच्छरदानी उठाकर बाहर आई। खिड़की से बाहर साफ नजर आता है। चमकीली चाँदनी पडी

है। कही किसी की भी ग्रावाज नही है। रह-रहकर कठफुडवा की ठुक-ठुक ग्रावाज सुनी जा रही है। ग्राज बहुत डर लग रहा है।

बाहर के तरफ की खिड़की उसने बन्द की। रोशनी तेज कर दी। मच्छरदानी को थोड़ा-सा उठाकर नन्दिका के मुँह की तरफ देखने लगी। नीद ग्रा गई है। घन-घन साँस चल रहा है। इस दुनिया मे जितनी देव-देवियाँ है, उसने सबका स्मरण किया। सबके ग्रासन के नीचे उसका प्राण लोट-सा गया। मन प्रार्थना करने लगा—'मेरी भाभी को तुम तन्दुरुस्त बना दो। उसे यह कष्ट क्यो दे रहे हो ? जो किसी पर गुस्सा नही रखती, उसके ऊपर तुम क्यों यह बदला ले रहे हो ?'

ग्राठवाँ महीना पूरा होकर ग्रब नौवाँ महीना चल रहा है, ग्रब बहुत होशियार रहना चाहिए। फिर भी वे कहना नही मानती है। इस ग्रवस्था में भी घर के हरएक काम खुद करेगी, सुबह से लेकर ग्राधी रात तक सास की सेवा, ग्रपने बच्चो की सेवा भी कोई इतनी हिफाजत मे नहीं कर सकती। ग्रपने हाथ से खिलाना, पैर दबाना, साफ-सुथरा रखना ग्रौर नहलाना। ग्रपने खाने-पीने की कोई भी खबर नही है। रात-रात भर जागकर सास के पास बैठना। शरीर ग्रौर कितना सह सकेगा ? ग्राखिर खुद बीमार पड़ गई।

गाँव की ग्रौरतें देखने को ग्राई। किसी ने कहा, "ललिता ने कटक से टोना किया है, बाण मारा है, ग्रचूक बाण। नहीं तो कल बिलकुल ग्रच्छी थी, सब काम करती थी, ग्रौर ग्राज सवेरे से क्यों खून से लथपथ होती ? शूल बिलकुल नहीं है। बच्चा पैदा होने की कोई भी सम्भावना नही है, ग्रभी समय भी नही हुग्रा है। बाण नही तो ग्रौर क्या ?"

जादू-टोना जानने वाला मत्र पढकर गया है, वैद्य ने भी दवा भेजी है, महादेव के पुजारी ने ग्राकर बेल के पत्ते का पानी छिड़क दिया है। ग्रब कुछ भी भय नही है, फिर भी कनी का मन सिकुड़ रहा है। देवी-देवताग्रों के पास मनौती कर चुकी है। सब ठीक हो जायगा।

फिर वही काली गाय रँभाने लगी है। अब नीद टूट जायगी। गधिया कहाँ गया ? कनी ने खिड़की का दरवाजा खोल दिया। आवाज आई, मच्छरदानी के अन्दर से क्षीण और कमजोर स्वर में नन्दिका बुलाने लगी, "कनी—"

"क्या भाभी ?"

कनी पलग के पास आई, मच्छरदानी उठाई। नन्दिका जग गई थी। घूर-घूरकर देख रही थी, जैसे किसी को ढूँढ रही हो। नही तो, वे अभी तक नही आये। ऐसा न हो कि देर हो जाय, इसलिए कल पौ फटने के पहले उसने चिट्ठी भेजी थी, आज रात के बाद दो रोज हो जायेंगे। वे क्यों नही आये ? तबीयत अच्छी है न ? आदमी भी नही लौटा है ? क्या 'का' बीमार है ?

पास दौड जाने के लिए इच्छा हो रही है। इसी समय उसकी तबीयत बिगड़ गई ? सिर चक्कर खा रहा है, छाती थर-थर काँप रही है, पेट के भीतर बच्चे को भी बहुत तकलीफ हो रही है। अरे, माँ के पास क्या कोई भी नही है ? कनी तो यही बैठी है। इतने बच्चों की माँ सुमित्रा, नन्हे-नन्हें बच्चों को घर छोड़कर बूढी की सेवा करने के लिए दौड आई है। ढंग से काम नही करती है, ऐसे तो माँ उसके ऊपर हमेशा बिगड़ जाती हैं और उसके ऊपर अब वे बीमार पड़ी है।

और कोई भी पास नही आता है। सब सास के दुश्मन है। आखिर खबर कब पहुँचेगी, इसीलिए इन्तजार कर रही है। कई आई थी, आहा-ऊहू करके चली गई, शुभकामना कर गई, अबकी बार बूढी को छुट्टी मिल जायगी। आहा. कितनी तकलीफें वे झेल चुकी है ! अब तो पके पत्ते के समान हो गई।

छुट्टी मिल जायगी ? मन की कामना क्या पूरी नही होगी ? उनकी सब तपस्या निष्फल ही जायगी ? क्या कटक से वे लोग भी नहीं आये हैं ? क्या वे अपने लड़के का मुँह भी देख नही सकेंगी ?

कनी पीठ सहला रही थी।

"कनी !"

"क्या भाभी ?"

"माँ के पास ?"

"सुमित्रा भाभी। माँ अब अच्छी है। साफ-साफ बाते करती है, दवा खाती है। सागू, बार्ली बिना किसी आपत्ति के पी जाती हैं। वे धीरे-धीरे ठीक हो रही है। तुम फिकर मत करो भाभी, वे माँगकर फल का रस पी लेती हैं।"

"तुम झूठ बोलती हो।"

"आँखें छूकर कहती हूँ, सच बोल रही हूँ।"

नन्दिका चुप हुई। मन मे अशुभ चिन्ताएँ आई—क्या दिये से तेल खत्म हो गया है ? बत्ती जल रही है, क्या बुझ जायगी ? ऍ, सचमुच बुझ जायगी ? अपने लडके का मुँह भी नही देख सकेगी ? स्वप्न की बातें भी सत्य नही होगी ?

नन्दिका विचलित हो उठी। पलग से उतरने के लिए पैर लम्बे किये।

"तुम यह क्या कर रही हो भाभी ?"

"मैं माँ को एक बार देखने जाऊँगी। अब मुझे बिलकुल ठीक लग रहा है। दो रोज से बिस्तरे पर सो-सोकर नीरस-सा लग रहा है। दो रोज मे मैने उनको नहीं देखा है। वे मुझे ढूँढती रहेगी। तुम जरा-सा मेरा हाथ पकडो।"

"छि भाभी, जिद्द मत करो। मेरी बात को झूठ मत समझो। उनकी तबीयत अब कुछ अच्छी हो गई है। शाम को पालुणी का हाथ पकडकर वे तुमको देखने आई थीं। तुम तब सो रही थी। तुम्हारा सिर सहला दिया। लाड़ भी किया।"

"सचमुच कनी ?"

नन्दिका का मुँह उजला हो उठा। होठों पर हँसी आई। लाड़

किया था ? उमको पता नहीं रहा। मोते समय ऐसे उन्होने बहुत बार लाड़ किया होगा। नौ साल से। छिप-छिपकर। किमी ने भी नही देखा, उन्होने किसी को नही मालूम कराया है। खुद नन्दिका को ही मालूम नहीं। आँखे खोलकर उसने देखा है—बहुत बार देखा है—सास पास मे खड़ी हुई है। हँसते हुए मुँह से अमृत वचन निकल रहा है—"क्या नही उठोगी माँ, बाल नही बाँधोगी ? खाना नहीं खाओगी ?"

"तुम झूठ समझती हो भाभी ? बायें गाल पर हाथ लगाओ, लार लगी होगी।"

कनी हँस रही थी।

"उतना ही मेरा सौरभ है कनी। हाथ लगाने से कम हो जायेगा।"

"दूसरा गाल अब खाली पडा है।"

"तुम्हारे भाई क्या नहीं आयेंगे आज ? कभी-कभी आधी रात को भी तो आ पहुँच जाते है। ललिता भी आती ही होगी।"

कनी की आँखो मे आँसू। "तुमने अभिमान किया है ? तुमको लाड करूँ ?"

कनी ने नन्दिका के मुँह को नीचा किया, उसके आँसू की बूँदे नन्दिका के हाथो पर गिरने लगी। नन्दिका पलंग से उतरकर नीचे खड़ी हो गई। बोली, "मेरे हाथ पकड़ो और चलो। मुझे माँ के पास ले चलो। मेरी तबीयत बिल्कुल ठीक हो गई है।"

"तो तुम इस पलंग के ऊपर बैठी रहो। मैं पहले देख आती हूँ, वे सो रही है या जग रही है, सोते हुए बीमार आदमी को जगाना ठीक नहीं है।"

नन्दिका का हाथ पकड़कर कनी ने उसे पलग पर बिठा दिया। दरवाजे को आधा बन्द करके घर के दूसरी तरफ चली गई।

वे सुमित्रा के साथ बात कर रही थी। दीवार के सहारे बैठी है। शरीर अस्थिसार हो गया है। बात कर रही है जैसे बिलकुल तन्दरुस्त हों—"बहू, तुम्हारे हाथ मे अमृत है। देखो तो मै कैमी तन्दरुस्त हो गई हूँ। उठकर दो बार बाहर भी जा चुकी हूँ। तबीयत बिलकुल अच्छी हो गई है। यह शरीर किसी हालत मे भी नहीं छूटने वाला है।"

"इतनी बात मत करो माँ, सो जाओ।"

"नीद नही आती है। मेरा नन्दिया भी नही आया है। उस राक्षसिन ने उसे मना किया होगा। मैंने खुद ही तो जहर पिया है। अब दिल जलता है, तो किसे दोष दूँगी ?"

"थोड़ी-सी बार्ली दूँ ?"

"लाओ। इन दो दिनों मे तूने मुझे दो हाँडी सागू-बार्ली पिला दी होगी। तुम्हारे हाथ मे अमृत है।"

"और दूँ ?"

"नही। वही—छोटे घर की लड़की। मेरे लड़के को फुसलाकर जमीन बिकवाई है। मेरी बहू से सब सम्पत्ति और गहने लूट लिये। नन्दिका ने इस बात को मुझसे छिपा रखा है। लेकिन मैं सब जानती हूँ।"

"थोड़ा-सा सो जाओ।"

"नींद नहीं आती है।"

"दवाई दूँगी।"

"दो। और कितना खिलाओगी ? अब बिलकुल नहीं चाहिए। यम भी मुझे छोड़कर भाग गया है। बहू, इस गाँव के श्मशान की ओर मैं बिलकुल नहीं देखूँगी। जमीन चली गई। सम्पत्ति चली गई। उसी बहू के लिए इस घर की श्री चली गई है। और नही लौटेगी। नन्दिया को भी नहीं छोडा। नीच घर की लड़की।"

"थोड़ा-सा खड़ी हो जाओ तो माँ, मैं कपड़े बदलती हूँ। मेरे सहारे खड़ी होओ।"

"पालुणी कहाँ गई ?"

"बेचारी बूढी हो गई है, वही सो गई होगी। बस हो गया। अब सो जाओ, मै पैर दबा देती हूँ।"

अभया पलंग पर सो गई। उनके पैरों को वह अपनी गोद में रखकर सहलाने लगी। बोली, "माँ, सुना है, मालिक पवनापलेई को और भी जमीन बेचने वाले है, मकान का काम पूरा नही हुआ है।"

"बेचने दो। जमीन रहती तो वही उसका उपभोग करता। नही रहेगी तो वही दुख पायगा। लेकिन, मै क्यो यहाँ पड़ी रहूँगी ? अगर मेरी मौत हो जायगी तो कोई दूसरा क्यों मेरे मुँह मे आग देने आयगा ? नन्दिया औरत के जाल मे फँस गया है। वह न आये। मै खुद ही कटक जाऊँगी।"

"इसी हालत मे ?"

"अच्छी हो गई हूँ माँ। बहू, दुनिया मे हर श्मशान एकसा है। एक शरीर को जलाने के लिए कितनी जमीन चाहिए, कितना समय चाहिए ? वह जमीन फिर वही वैसे ही पड़ी रहती है। कोई उसे साथ मे नहीं ले जाता। साथ ले जाने के लिए इस गाँव के श्मशान से अगुल के परिमाण जितनी जमीन मुझे कौन दे सकेगा ? मैं कटक जाऊँगी।"

"नन्दिका दीदी ?"

"उसी के बारे मे तो सोच रही हूँ। जब वह खुशी से जा सकती थी, केवल मेरे लिए उस वक्त नही गई। अब कैसे जायगी ? बहू, मेरी नन्दिका का कुछ होगा तो नही ?"

"भय कुछ भी नहीं है। कभी-कभी ऐसा होता है। अब तो नौवाँ चल रहा है। पहला गर्भ। खाने-पीने का ठिकाना नही, हर समय काम करती रही। रात-रात भर जगकर तुम्हारे पास बैठी रही। सेवा की। मन में शका भी हुई। जिन्हें पल भर न देखने से मालिक पागल-से हो जाते थे, वे भी दूर हट गये। दीदी अब उसी की याद मे दग्ध हो रही है। आँखें न रोने से भी मन जरूर रोता होगा।"

"मेरी मौत हो जाय सुमित्रा, कौन नाती या नातिनी किसी को स्वर्ग ले जाती है, यह मुझे मालूम नही। ऐसी बहू को मैने कितना दुख दिया है ! मेरी मौत हो जाय। मुझे सिर्फ छटपटाने के लिए और बदला लेने के लिए तुम लोग मुझे दवा पिला रहे हो। और खाने की कोई भी जरूरत नही। मुझे मरना ही चाहिए।"

बूढ़ी की आँखों मे गरम आँसू ढुलक आये। आत्मा छटपटा रही है। रो उठती है।

"तुम ऐसा न कहो माँ। तुम चल बसोगी तो दीदी की सब हिम्मत खत्म हो जायगी। हाथ बढाने से मालिक का पैर पकड़ सकना उनके लिए सम्भव नही होगा। तुम रहते हुए भी तो—"

"तुमने सच कहा सुमित्रा। मै नही मरूँगी। मै मरना नही चाहती हूँ। मै मर जाऊँगी तो मेरी सोने की प्रतिमा को पुरानी गोबर की पुतली की तरह वे लोग पैरों से दूर हटा देगे। मै जरूर जियूँगी। दो, मुझे एक मात्रा दवा दो।"

आँसू से भरी हुई, आधी बुझी हुई आँखों की रोशनी गोया तेज की हुई बत्ती के समान जलने लगी।

"अभी तो दवा खाई है न, फिर कल सुबह।"

"बार्ली दोगी ?"

"एक घंटे के बाद। मै कहती हूँ, दीदी की तबीयत थोड़ी-सी सुधर जाते ही उन्हे कटक ले जाओ। दूर का रास्ता नही है। पालकी का इन्तजाम करने से सबसे अच्छा होगा। बिलकुल परेशानी नही मालूम होगी। शरीर को भी तकलीफ नही होगी। मैंने सुना है कि कटक मे बहुत बड़े-बडे डाक्टर है, जरूरत पड़ने पर एक क्षण मे पहुँच जायेगे। दीदी को इस कष्ट से मुक्त कर देंगे।"

"तुम सच कह रही हो। मैं भी साथ चलूँगी।" हँस-हँसकर अभया ने फिर कहा, "वैसा ही करेगे। भगवान पहले उसकी तबीयत ठीक कर

दे। अपने जीवन को सौपकर मैने नन्दिका के जीवन की भिक्षा माँग ली है, मेरी प्रार्थना को वे जरूर सुनेगे।"

कनी धीरे-धीरे अन्दर आई। अभया की बात सुनकर उसका मन खुश हो उठा है। दीदी भी कटक जाने के लिए राजी हो गई है। सुमित्रा भाभी ठीक मौके पर काम कर लेती है। उसके पैर पकड़ने की इच्छा हुई। कल सुबह वह दो पालकियो के लिए वाहक ठीक कर देगी। घर मे ही दो पालकी है। धीरे-धीरे जाने से भी बारह बजने से पहले कटक पहुँच जायँगे। साथ मे गंधिया जरूर जायगा। वह खुद भी जायगी। थोड़ी-सी तकलीफ जरूर होगी; लेकिन कटक पहुँचने पर सब ठीक हो जायगा। इस गाँव मे कोई भी सहारा नही है, सब दुश्मन है।

"कनी, तुम मेरी बहू को अकेली छोड़ आई ?"—बूढी उठ बैठी, गुस्से से भरी आँखों से देखने लगी।

"वे नीद से उठ गई है, पलग पर बैठी है।"

"क्या इसलिए तू उन्हे अकेली छोड आई ?"

"तुम्हारे पास आने के लिए वे बहुत जिद्द कर रही है। कहा, दो दिन से नही देखा है, मैं जाऊँगी। आज उनका शरीर कुछ अच्छा है। मैंने मना किया, लेकिन वह मानती ही नहीं। मैने कहा, पहले देख आती हूँ, वे सो रही है या जाग रही है।"

अभया के शरीर मे मानो नया जीवन भर गया, नई ताकत का संचार हो गया। वे नीचे उतर आई और कहा, "मै तो अच्छी हो गई हूँ। कनी, मेरा हाथ पकड़ो, मैं खुद उसके पास जाऊँगी। वह क्यो आयगी ?"

अभया लड़खड़ाती हुई बाहर आई। कनी और सुमित्रा ने उनके हाथ पकडे। चौककर पालुणी खड़ी हो गई। गधिया सअर हाथ मे लाठी लेकर बरामदे से नीचे आँगन मे आ गया। गोशाला से काली गाय रँभा रही थी। नीले आसमान से शीतल ज्योत्सना बिखरी पड़ती थी। छत के उस तरफ चाँद ने मुँह ढक लिया था।

बालकौनी पर पहली लाइन की डबल सीट पर ललिता बैठी है। बाजू मे रवि। शो अब तक शुरू नही हुआ है। सामने सफेद पर्दा। पर्दे पर एक भी दाग नही पड़ा है। बाजीगर का डडा लग जाने से उसी छोटे चौकोने सफेद पर्दे के उपर अँधेरे मे कितनी घटनाएँ घट जायँगी। रोशनी जलेगी। आँखों के सामने फिर केवल वही सफेद पर्दा नजर आयगा।

उसी के ऊपर खड़ा होगा आकाश को छूता हुआ हरा पर्वत, सीमाहीन नीला समुद्र, फैला हुआ मैदान, धूमरित मरुभूमि, सशब्द बहती हुई नदी, जनबहुल मुखर नगरी, चित्रमय ग्राम, घना जगल, पशु-पक्षी और मनुष्य, भूला हुआ अतीत, चलता हुआ वर्तमान और कल्पना का भविष्य। जन्म, कर्म, राग-रोष, कौतुक, आशा-दुराशा, प्रेम और विकलता, क्रन्दन, मरण, अथवा मिलन और हास्य।

रोशनी जलेगी, फिर सब सूना हो जायगा, सफेद पर्दा।

ललिता देख रही है, अब भी उसका शरीर काँप उठता है। उसे अस्वस्थ-सा लग रहा है। लगता है जैसे सब उसे वक्र नजर से देख रहे हों। जैसे उसके अंग की सुगन्ध से सब मुग्ध हो गये है। यही तो उसने चाहा था। इसीलिए अपने को उसने अर्धनग्न अप्सरा के समान सजाया था। देह पर बारीक कपड़ा, अगों पर कीमती गहने, शरीर पर इत्र का

सिंचन हुआ था। दर्पण में अपनी तस्वीर देखकर वह खुद मुग्ध हो गई थी। अतनु बाबू को फोन किया था। फोटोग्राफर मनोरंजन पर अभिमान भी किया था। इन्तजार करते हुए भी वह नही आया। सामान्य-सा एक फोटोग्राफर।

अच्छा नही लगता है। देह काँप रही है। कितने आग्रह के साथ अतनु बाबू ने सामने की सीट का दरवाजा खोल दिया है। हँस-हँस कर ललिता कार के अन्दर बैठी, रवि के लिए पीछे वाली सीट।

अतनु बाबू बहुत अच्छे आदमी है, स्वामी के घनिष्ठ बन्धु है। बात-बात मे हँसी-खुशी, वह खुद मोटर गाडी चला रहे है। देह देह को छू रही है। सकोच नही है। दूर हटकर बैठने के लिए ललिता कोशिश भी नही करती है। दोनो मुँह कितनी बार एक-दूसरे के नजदीक आ गये है। देह सिहर उठी। कार बन्द हुई है। नस-नस मे बिजली की चमक छुटाकर और ललिता का हाथ पकड़कर वे उसे कार से उतार लाये है। रास्ता दिखाते आगे-आगे चले। कृत्य-कृत्य होकर बक्स की सीट पर बिठाया है।

अतनु बाबू सिनेमा के मालिक है। वे चले गये है। हिसाब की जाँच खत्म कर फिर लौट आने को कहा है।

सफेद पर्दे के ऊपर ललिता नजर डाल रही है। अपने अन्तर मे मन घूमने लगा है। नई अभिज्ञता। उसकी शादी हो गई है। कुल वधू। जीवन मे पहली बार ही आज उसे एक दूसरे पुरुष का एकान्त सान्निध्य मिला है। उनकी उम्र हो गई है। शादी कर चुके है। दो सन्तानों के पिता बन चुके है। तीसरे के होने वाले है। घर में पार्वती-सी सुन्दर पत्नी। वे भी पिघल गये हैं। उनके मुँह की भाषा और देह के स्पर्श ने उनके मन के मोह को बाहर प्रकाश कर दिया है। और वह खुद ललिता ?

स्वामी पुरी से आते ही होंगे। शायद आगये होंगे। लौट जाने की

इच्छा हो रही है। सिनेमा की तस्वीर देखने का कोई आग्रह नही है। देह काँप रही है। अतनु बाबू लौट आने के लिए कह गये है। सुपुरुष, राजपुत्र। लेकिन सभी लोग क्यो उसकी ओर ऐसी निगाह से देख रहे है? कब रोशनी बुझे। कब अगणित दृष्टि और अकथित प्रश्नों की तीव्रता से वह अपने को बचा सकेगी?

रोशनी बुझ गई। सफेद पर्दे के ऊपर चलती हुई तस्वीर।

उसने कुछ भी नही देखा। कुछ भी नही सुना। नही समझा। मन नन्दिका के पास चला गया था। उसने कितनी ही बाते कही थी। 'सा' ने सिखाया था—'का', सब लडकियो की देह एकसी है। यह बात सबको मालूम है। जो नगी है या अधनगी है, शायद वे असावधान है। उन्हे माफ किया जा सकेगा। लेकिन जान-बूझकर जो अधनगी बनती है, वे अपनी देह को नही दिखाती, बल्कि अपने मन की गदगी दिखाती है। उन्हें धिक्कार है।

'का' याद कर रही है। गाँव मे बैठकर 'सा' सूखे मुँह से कह रही है—मिल गया न 'का'? देखा न तूने? अतनु बाबू ने तेरा हाथ पकड़ लिया। मन की अपवित्र बाते नीरव भाषा मे कहने लगी। क्या तू मना कर सकी? बाधा दे सकी? तेरे मन के नगे स्वर्ग की ओर इतने आदमी देख रहे है। हाथ पकड़ने के लिए आकुल हो रहे हैं, मौका देख रहे है। तू किसे मना कर सकेगी? वह सब रहने दे। तू पीछे लौट आ। तू कुलबहू है। सिनेमा की तारिका नही।

पर्दे के ऊपर अभिसारिका—बहती हुई नदी का किनारा, चाँदनी रात का सन्नाटा, प्रेमिका का अभिसार, सशक, सकम्प पदक्षेप। ढूँढ़ती हुई आँखे, पेड़ की आड़ मे प्रेमी छिप गया है। हँस रहा है।

"कितनी अच्छी तस्वीर है—"

धीमी-धीमी बाते कानो मे गूँजने लगी। गाल पर साँस की चोट। ललिता चौक उठी। मुँह फैलाकर देखा। अन्धेरे मे भी अतनु बाबू को पहचान लिया। पास मे ही बैठे। और नजदीक सरक आये। देह से देह का स्पर्श हुआ। अनल की शिखा जलने लगी।

"अच्छा लग रहा है न ?"

मुँह से निकल पडा, "हाँ।"

प्रेमी छिप-छिपकर आया। पीछे से अभिसारिका की आँखे बन्द कर ली, और हँसने लगा।

ललिता का कोमल हाथ अतनु बाबू के हाथो मे कैद हो गया है। वह उसे खीच नही सकती थी। पता नही क्यो। आँखो के सामने सफेद पर्दे के ऊपर दो मनुष्यो का आँख-मिचौनी का खेल चल रहा है। आँखें केवल उनके पीछे दौड़ ही रही है। मन में उनको पकड़ा नही जा सकता। अतनु बाबू के एक हाथ के ऊपर उसका हाथ। दूसरा सहला रहा है। ललिता का मन वही है। वह विचलित हो गई है। चकित हो गई है।

अभिसारिका पकड़ी गई। प्रेमी के हाथ मे उसका आँचल, पतले कपड़े ढीले हो आ रहे है। अब वह भाग नही सकती। भौरा पास आ गया है। लजवन्ती कुसुम के मुँह के ऊपर उसने अपना मुँह लगा दिया है। गुनगुना उठता है।

"चमत्कार।"

अतनु बाबू ही बोल रहे है। ललिता के मुख से उनका मुख थोड़ा-सा हट गया है। हाथ से हाथ खिसक गया है। वह उठ पड़े है। कहा, "बढ़िया खेल है। इन्टरवल मे अभी देर है। मैं आ रहा हूँ।"

चले गये।

फिर आयेंगे। देह काँप रही है। सिर चक्कर खा रहा है। सफेद पर्दे के ऊपर का खेल देखने के लिए और उसके पास धीरज नही है। अन्धेरे घर के अभिनय के लिए वह तैयार नहीं हुई है। हिम्मत टूट गई है।

स्वर्ग की अप्सरा नगी मेनका आज स्वाधीन होकर उड़ने की इच्छा कर रही थी। उसका परिणाम उसे मिल गया है।

दूर देहात से 'सा' बुला रही है—रहने दो। मेरे पास लौट आओ। मैं तुम्हे सहला दूँगी। देह से कलंक के दाग मिटा दूँगी। लौट आओ मेरी 'का'। तुम्हारे मन से गन्दगी मैं पोछ लूँगी। मेरे होठ उपवासी पड़े है तुम्हारे लिए।

ललिता की दोनों आँख से दो धारा आँसू बह आये।

इन्टरवल मे अब दर है।

सिनेमा घर के बाहर लोगो की भीड़। दूसरे शो के टि खरीदने को व्याकुल। लोग आते है। कोई भी लौटते नही। मोटर ताँगा भी निगाह मे नही आये। ललिता महसूस करती है जैसे सब ही लोग खास उसी की ओर आग्रह से देख रहे है। अतनु बाबू ने हाल ही मे जैसा अभिनय किया, जैसे सब लोग वैसा करना चाहते हो।

उनका कुछ भी कसूर नही है। कसूर उसी का ही है।

रवि ने कहा, "वहाँ है मनोरजन बाबू।"

ललिता देखती रही, एक रिक्शे पर वे बैठ गये थे। देर से आते है। जल्दी चले जाते है। उसका अनुरोध उन्होंने नहीं रखा है।

"बुलाऊँ दीदी ?"

"जाने दो उनको। तू जा एक रिक्शा बुला ला।"

ललिता घर लौट रही है। पास रवि बैठा है। जैसे कल ही उसका जन्म हुआ है। रवि को पैर पर सुलाकर वह उसके शरीर में तेल और हल्दी मलती थी। नन्हे-से बच्चे को गोद मे लेकर सोती थी। अब वह बड़ा हो रहा है। पास बैठा है। उसका सिनेमा देखने का आग्रह टूट

गया है। शायद पूछने की हिम्मत नही होती है। कैफियत देने के लिए ललिता का मन चाहता है।

"अच्छा खेल नही था रवि। देखते-देखते मेरा सिर दर्द शुरू हो गया।"

"पेड़ की आड़ मे जो अजगर छिपा हुआ था क्या वह उसको निगल लेगा?"

"किसको?"

"उसी लड़की को।"

"पकड नही सकेगा।"

"और वह बाघ, खोह से मुँह निकालकर जो अपनी जीभ चाट रहा था? क्या वह उस बदमाश लडके को नही खायगा?"

"बदमाश क्यो कहते हो?"

"और क्या कहूँ बेहूदा?"

"क्यों?"

"वह लड़की का आँचल खीच रहा था। इतने लोगों के सामने—"

ललिता ने अपने घूँघट को सिर पर कर लिया। छोटा-सा लड़का यह रवि, क्या अच्छा क्या बुरा समझने के लिए इसकी भी शक्ति हो गई है।

हँस-हँसकर ललिता कहने लगी, "खोह के भीतर से बाघ निकलेगा, छिप-छिपकर जायगा। पीछे से आँखें बन्द नहीं करेगा, खुद लड़की को पकड़कर जंगल को भाग जायगा।"

"एँ—"

भय से रवि काँपने लगा।

"सुनो, उसी जंगल मे।"

"लड़का क्या बाघ को मार देगा?"

"भले आदमियों की तरह दौड़ जायगा। वह बच सका, इसलिए कितना खुश होगा। जंगल में लड़की के साथ बाघ प्यार नही करेगा।

गला फाडकर खून पियेगा। उसके बाद हड्डी और माँस को चबा-चबाकर खायगा।"

"नही दीदी—"

"हॉ रवि। तू भले ही नही कर सकता हो, लेकिन बाघ तेरा कहना नही मानेगा। इस बाघ को कटक शहर के इस सिनेमा घर में रहने दो। कल सुबह मैं गॉव चली जाऊँगी। वहॉ बाघ भालू कुछ भी नही है। तू भी मेरे साथ चलेगा? हमारे गॉव के स्कूल मे पढेगा?"

"बडी दीदी नाराज नही होगी? मॉ कहती थी—"

रवि के मुँह पर ललिता ने हाथ डाला। भाभी की कही हुई बात को फिर नही कहने दिया। खुद बोली, "तेरी मॉ की वह गलत धारणा है। बड़ी दीदी को उसने देखा भी नही पहचाना भी नही। लेकिन तूने तो देखा है न?"

"मेरी माँ से वह अच्छी है।"

उत्तेजित होकर ललिता रवि को लाड करने लगी। बोली, "तूने सच कहा। मेरी मॉ से भी वह अच्छी है, वह मेरी 'साहा' है। मैं उसी के पास जाऊँगी। कल सुबह। तुम्हारे फूफा आज लौटे या न लौटें।"

आँखों से बहते हुए आँसुओं को उसने बहने दिया। मन के भीतर जितना सन्देह जमा हुआ है आज सबको बह जाने दो। मुँह के जिस जगह पर अतनु बाबू ने आग लगा दी है, 'सा' की सोने की छाती में मुँह छिपाकर वह उससे वहीं प्यार की याचना करेगी। अतनु बाबू शहर के बाघ है। मन के घाव जलने लगे है। अपनी 'सा' से वह सब बाते कह देगी, माफी माँग लेगी। प्यार माँगेगी। देने के लिए वह कभी इन्कार नहीं करेगी। किसी के लिए भी उसने अभी तक इन्कार नहीं किया है।

हँस-हँसकर 'सा' ने तमाम रुपये और गहने स्वामी के हाथ मे सौंप दिये है; उसने सब कुछ रखा है। 'सा' के बडेपन का बोझा वह क्यों उठाने जायगी? सब लेकर फिर उसी के सामने रख देगी, पैर पकड़कर

विनय के साथ कहेगी—लो, कुछ भी कम नही हुआ है, वरन् बढ़ा है।

नही लोगी, क्या रूठ गई हो ?

मुझे भी तू लेले 'सा'। मै तुम्हारा खिलौना बनूँगी। मर्द लोग केवल देह की तरफ देखते है, देह को ही प्यार करते है। नंगी देह को। देह के लिए वे मन को खरीद लेते है, लेकिन तू, मन को खरीदने के लिए तू देह का आदर करती है। तुमने सब कुछ दिया है। तुम दोनों का बोझा मैं कैसे सह सकूँगी ?"

दूर गाँव से 'सा' बुला रही है, मेरे पास लौट आओ।

मन जवाब दे रहा है—जाती हूँ। पैरों पर सब समर्पण कर दूँगी। केवल एक ही चीज तुझसे मागूँगी। देगी न ? हँस क्यों रही है ? तूने कहा था न ? जिस चीज को तूने अपने गर्भ मे छिपा रखा है, उसी अमूल्य चीज को—

"दीदी—"

ललिता का सपना टूट गया। वे घर के सामने पहुँच गये थे। रास्ते पर दो पालकी रखी हुई थी। बहुत लोग इकट्ठे हुए थे। बातों की आवाज आ रही थी।

विचलित होकर ललिता रिक्शे से उतर गई।

व्यस्त होकर राजीव भीतर से आ रहे थे।

"क्या हुआ राजीव ?"

"बड़ी माँ मूर्च्छित हो गई है।"

" 'सा' ?"

"उन्हीं के पास। मैं जाता हूँ डाक्टर बुला लाऊँगा।"

"फोन क्यो नही किया ?"

"घर बंद है।"

राजीव चला गया। शंकित होकर ललिता सीढी से ऊपर उठ गई। श्रीमती भोई को फोन से बुलाने से वे तुरन्त आ जायँगी।

दो दिन दो रात से सब परेशान हो गये है। कब उसका देहान्त हो जायगा यही सबको चिन्ता है। छन-छन मूर्च्छा। छाती बहुत कमजोर है। डाक्टर हमेशा आ रहे है। आशान्वित कर रहे है, अब अवस्था सुधरने लगी है, भय का कारण नही है। इमी दुर्बल अवस्था में पालकी से इतना दूर आना उचित नही था।

आँखें खोलते ही अभया देखती है—लडका, दोनों बहुएँ और कनी पास बैठे है। राजीव भी आता जाता है। भाँति-भाँति की दवा की शीशियाँ और फल टेबल पर रखे हुए है। बिजली का पंखा धीरे-धीरे चल रहा है। सिर भी घूम रहा है।

सिर के पास सुनन्द बैठा है। सिर सहला रहा है।

"कुछ अच्छा लगता है माँ ?"

"हाँ, मेरा क्या कभी मरण होगा ?"

जिसे आँखे ढूँढ रही है वह पैर के पास बैठी है। आँखों में आँसू भर आये हैं। मुँह मलिन-सा दीखता है। मन मन से कह रहा है—मेरी नन्दिका अच्छी है न ? और वह ललिता ? हाँ, वह भी पैर के पास बैठी है, पैर सहला रही है। क्यों, उसका चेहरा तो राक्षसिन जैसा नही है। वह हर किस्म की सेवा कर रही है। इस दुनिया में सभी अच्छे है।

"नन्दी—"

"क्या माँ—"

पैर की तरफ से धीरे उठकर नन्दिका सिर के पास आई। पेट का दर्द छिपाने के लिए मन को सख्त बनाकर उसने कहा, "डाक्टर ने कहा है कि तुम्हारी तबीयत बिलकुल सुधर गई है। सिर्फ थोड़ी कमजोरी ही है।"

बात आधी रह गई। पेट में तीव्र वेदना, जैसे प्राण निकल जायँगे। बहुत तकलीफ से उसने दो रोज छिपाये रखा। किससे कहेगी ? सब तो सास के लिए परेशान ही है, केवल कनी अनुमान कर लेती है। पूछने से उत्तर मिलता है, मैं बिलकुल अच्छी हूँ। तुम जाओ माँ के पास। मैं भी आती हूँ।

'का' के साथ एकान्त मे अच्छी तरह बातचीत करने का समय नहीं मिला है। वह तो वातचक्र के समान इधर-उधर होती है। कभी-कभी घर के अन्दर आकर कहती है, "तू इतनी उदास होकर क्यो बैठी है 'सा' ?"

"नही तो।"

"समझ गई। मुझ पर गुस्सा किया है न ? दीवार पर जो तसवीर टँगी हुई है, उन्हें देखकर गुस्सा आ जाता है न ? तूने सोच लिया है कि मै बेशर्म और बेहया बन गई हूँ। लेकिन 'सा', वे तस्वरे मेरी नही है, वे उनके मन की उत्तेजना की ही तस्वीरे है। उनको यह सब अपने पास रखने दो। मैं यहाँ बिलकुल नही रहूँगी। तुम्हारे साथ गाँव को चली जाऊँगी। लेकिन और कभी कटक आने के लिए भी मुझसे मत कहना।"

नन्दिका हँसती है।

"हँसो मत। तुम्हारी हँसी मुझे चोट मार रही है। मुझे तुम लाड नही करोगी ?"

"आ—"

"नही, इस गाल पर।"

"बस, हो गया न ?"

"हुआ। तू यही बैठी रह। कभी नीचे नहीं जायगी। मैं माँ को देखकर अभी आती हूँ।"

"ठहरो, मैं भी आऊँगी। तू मेरा हाथ पकड़कर ले चलेगी।"

"मुँह सुखाकर क्यों बैठी है 'सा' ? क्या तबीयत ठीक नही है ?"

"माँ ?"

"अब होश आ गया है। सब उनके पास बैठे हुए है, उनकी फिक्र मत करो, थोड़ा-सा सो जाओ, मैं पैर दबा दूँ।"

"रहने दो 'का'।"

फिर भी ललिता पैर दबाना शुरू कर देती है। कहती है, "तू बेवकूफ है, 'मा'। वे मकान बनायेगे, इसलिए क्या तुम्हे भुलाकर तुम्हारे सब रुपये और गहने तुमसे लाकर यहाँ खर्च करते रहेंगे? मैं यहाँ रहते-रहते कैसे ऐसा करने देती? मैंने अपने पास सब कुछ रख लिया है। लो, चाबी लो। सब उसी लोहे के बक्से में बन्द कर रखा है।"

"सब तो उन्ही का ही है।"

"अरे वाह! वे क्यों दहेज की चीजों के ऊपर नजर डालेगे? ऐसा न हो सकेगा।"

"उन्होने माँगा नही था। मैने खुद ही दिया है।"

"वे क्यों लाये?"

"लेकिन जमीन तो बिक गई।"

"बिक जाने दो।"

"उसी के लिए माँ की ऐसी हालत हो गई है। जमीन बिक गई, इस बात को वे सह नहीं सकी, हर वक्त सोचती रहीं। अब वे कैसी है कहो तो?"

"अच्छी है।"

"मेरा हाथ पकडो। एक बार देख आऊँ।"

"सीढ़ी से आने-जाने के लिए डाक्टर ने मना किया है।"

"बहुत धीरे से जाऊँगी।"

"नही।"

"सिर्फ एक बार।"

ललिता उसे नीचे नहीं लाई। बहुत मिन्नत करने के बाद वह कनी के साथ नीचे आई है। दर्द तो सहा नहीं जाता।

"आह—"

नन्दिका ने आँखे मूँदी और फिर आँखें खोलीं। अभया समझ गई। व्याकुल होकर उठने की कोशिश की। नन्दिका उनकी छाती से चिपट गई। दोनों कन्धों पर हाथ देकर उन्हें खेंच लिया। सूखे मुँह पर हँसी दिखाने की चेष्टा की और बोली, "वह कुछ नहीं है, माँ। रात जगने से— आह—"

नन्दिका ने फिर आँखें मूँदी, आँखें खोलीं। चारों ओर अँधेरा-सा मालूम हो रहा था। मानो जान चली जाने वाली हो। अब वह क्या करेगी ? कहाँ जायगी ? ससार शून्य दीख रहा है।

व्याकुल होकर अभया ने कहा, "तू क्या देख रहा है, नन्दिया ? बहू की देह क्या होती जा रही है। खास उसी के लिए तो मैं कटक आई हूँ। तुरन्त डाक्टर को बुला लाओ। ललिता, अपनी मौत की मुझे कोई फिक्र नहीं, लेकिन नन्दिका को सँभालो। कनी, तुम जाओ किसी को बुला लाओ। राजीव भी कहाँ चला गया ?"

"तुम चुप रहो माँ, मेरा कुछ नहीं हुआ है।"

"मुझसे छिपा रही हो, चण्डालिन ! कनी !"

अभया बेहोश हो गई।

वह होश में आ गई थी। बिजली जल रही है। पास में कनी। और कोई नहीं था।

कनी उठी। मन में शंका थी। कोई यहाँ आयगा तो वह जाकर

एक बार नन्दिका को देख आयगी, नन्दिका की तबीयत धीरे-धीरे बिगड़ती जा रही है। बीच-बीच में वह चीत्कार कर उठती है।

नीचे के तल्ले में दूसरी तरफ के कमरे में नन्दिका है। पास में डाक्टरनी और नर्स। ललिता बाहर व्याकुल होकर चक्कर लगा रही है। मन छटपटा रहा है। आँखों से आँसू बह आते है। नौकर-चाकर भी इधर-उधर दौड़ रहे है।

नर्स के कहने के अनुसार काम कर रहे है। गरम पानी, साबुन, भगोना—

बूढी को छोडकर कितनी बार कनी चली गई है और खबर ले आई है।

ललिता कहती है, "माँ को छोड़कर चली आई ? जल्दी जाओ माँ के पास।"

"भाई कहाँ गये ?"

"बड़े डाक्टर को बुलाने के लिए।"

"क्यों ?"

"पूछने से भी उन्होने कुछ नही कहा। मैं क्या करूँगी कहो कनी। मेरी 'सा'—"

आँखों में आँसू।

नन्दिका कराह उठी।

"मेरी 'सा'—"

"क्या हुआ है, तुमने क्यों नही देखा ?"

"नर्स ने दरवाजा बंद कर रखा है। भीतर जाने को मना कर रही है। माँ कैसी है कनी ?"

"सो गई है।"

"तुम उन्हीं के पास जाओ।

ललिता भी साथ में आई थी। "माँ अब सो रही हैं कनी। तुम

उनके पास ही बैठी रहो। यदि उन्हें जरूरत हो तो मुझे बुला लेना। अकेली छोड़कर कहीं नही जाना।"

ललिता कब से चली गई है। इस घर में कोई नही आता है। सब उसी तरफ। सिर्फ बाहर की तरफ देखना ही सार है। कनी का मन बिलकुल नन्दिका के ही पास है। बीच-बीच में उसकी व्याकुल चीत्कार सुनाई देती है जैसे छाती फट रही है। जाकर लाड़ करने की इच्छा होती है। अपने लाड का भण्डार उसने किसके लिए संचित कर रखा है ?"

मेरी नन्दिका मुक्त हो जाय। उस पर कुछ भी आपद न आये। दुनिया के सब देवी-देवताओ, मेरी आखिरी विनती तुम सुन लो। मेरा जो कुछ था, मैं तुम्हे सब कुछ दे चुकी हूँ। मेरे इस अनावश्यक जीवन को तुम लोग बाँटकर लेलो। लेकिन मेरी नन्दिका का उद्धार करो, मेरी विनती सुन लो।

कनी की आखो में आँसू।

अभया जग चुकी थी, मुँह पर हँसी।

"नन्दिया कहाँ गया ?"

"थोड़ा-सा अच्छा लग रहा है दीदी ?"

"हाँ, अच्छा लग रहा है, क्या मै सपना देख रही थी ?"

"क्या देखा ?"

"नन्दिका को लड़का हुआ है।"

"देख आऊँ ?"

"ललिता ?"

"बुला दूँ ?"

रवि घर के अन्दर देखने लगा। उस तरफ को आने से दीदी

गुस्सा हो रही है। इस तरफ को आने के लिए डर लगता है। रवि का मन कही भी नहीं लगता।

कनी ने कहा, "रवि बाबू, सुनो तो।"

रवि अन्दर आया।

कनी ने कहा, "तुम माँ के पास जरा-सा बैठ जाओ, मै तुम्हारी दीदी को बुला लाती हूँ। बैठो। कही नही जाना।"

रवि को अभया के पास बिठाकर कनी झट से चील के समान छूट पड़ी।

"**डाक्टर** ने क्या कहा? तुमने मुँह क्यो सुखा दिया है? मेरी 'सा' कैसी है? वह इस तरह क्यो चिल्ला रही है? बीच का दरवाजा खोलकर मै उसे देखने जाऊँगी।"

ललिता की आँखों से आँसुओं की धारा बन्द नही हो रही है।

"फिक्र मत करो। 'सा' अच्छी है। डाक्टर ने कहा है पहला बच्चा होने के समय बहुत कष्ट होता है। अब एक दो घण्टे मे बच्चा निकल आयगा। तुम जाओ माँ के पास। कनी आ रही है। कनी!"

"जी —"

"नन्दिका अच्छी है। तुम अपनी नई भाभी को माँ के पास ले जाओ। यहाँ खड़ी होकर रोने से क्या नन्दिका का कष्ट कम हो जायगा? तुम वहाँ जाओ, डाक्टर लोग अपना काम कर रहे है। यहाँ भीड़ लग जायगी तो काम मे व्याघात होगा। फिर क्यों खड़ी हो गई? मानो मेरी बात, चली जाओ।"

कनी और ललिता धीरे-धीरे चली गई। उनके अदृश्य हो जाने के बाद, सुनन्द का दुख भी सिर उठाने लगा। मुँह के ऊपर अपने हाथ

रखकर वह रो उठा। अब धीरज टूट रहा है। नन्दिका बहुत कमजोर है। सब चेष्टाएँ विफल हो गई तो पेट का ऑपरेशन करना पड़ेगा। बच्चे की बात कौन पूछता है ? माँ को किसी भी उपाय से बचाना पड़ेगा।

क्या मेरी नन्दिका मुक्त हो जायगी ?

अबाध्य आँसू रुकना नही चाहते ।

नन्दिका की विकल चीत्कार।

सुनन्द चौक पडा। लगता है, जैसे जान चली जा रही है। आँखों से आँसू पोछकर दरवाजे के पास दौड़ गया। साँकल खोली। दरवाजा नही खुलता है, उस तरफ से बन्द है। अपने दुख को भीतर दबाकर अस्थिर चित्त मे सुनन्द इधर-उधर होने लगा। ललिता पर नजर पड़ गई। वह भी पागल-सी दीख रही है। उसके पीछे कनी खड़ी है।

विरक्ति से वह चिल्लाने लगा, "फिर क्यों आ गई ? मेरी माँ उस तरफ अकेली पड़ी है। जाओ कहता हूँ।"

कनी मुँह छिपाने लगी।

ललिता ने कहा, "माँ ठीक है, रवि उनके पास बैठा है। वे बात कर रही है।"

"तुम भी वही जाओ।"

" 'सा' कैसी है ?"

"अच्छी है। मेरा कहना मानो, माँ के पास जाओ। इतना अधीर होने की कोई जरूरत नही। जाओ, मुझे सोचने दो—"

ललिता पीछे हट गई ।

छोटा-सा बच्चा रो रहा है। जो जहाँ थे, दौड़ आये है। खुश होकर नर्स ने खबर दी है—लड़का हुआ है।

अभया को भी खबर मिल गई है—लड़का हुआ है। पास कोई भी नही है। अब वे किससे पूछें ? रवि भी कही भाग गया है। दौड़ने की हिम्मत नही है। बीमारी कही भाग गई है। हाथ के सहारे वे उठने लगी।

मेरी नन्दिका के लडका हुआ है। इतने दिन के बाद सुनन्द के पिता घर लौट आये है। दौड़कर जाने की इच्छा होती है। लाड़ करके पूछने की भी, तुमने इतनी देर क्यों की ? थोड़े से पहले आते तो इस घर मे झगडे का बीज बोना सम्भव न होता।

नही, मैंने गलत समझा है। नन्दिका नौ साल से इस घर में आई है, बहुत दवाइयाँ खा चुकी थी, सब देवताओं की पूजा भी हो चुकी थी, व्रत और उपवास का कोई भी अन्त नही था, फिर भी आज तक फल नही फला। ललिता घर मे आई तो उसके बाद लड़का आया। वह मेरी लक्ष्मी है। कितनी अच्छी है वह ! उसने मेरी कितनी सेवा की है ! उसके भी सात लड़के जरूर होने वाले है। कहाँ गई वह पगली ? आज तो उसका पैर उड़ रहा होगा। उसकी 'सा' के लड़का हुआ है। नन्दिका को वह कितना प्यार करती है ! कितनी बुद्धि है उसकी ! नन्दिया मे सब गहने छुडा रखे है। सब रुपये जब्त कर रखे है। फिर नन्दिका के पास सौप दिये है। वे दोनो मिलकर सुख मे रहें।

नाती चिल्ला रहा है, अभया की अधमरी हड्डियो मे नये जीवन का सचार हो गया है।

"माँ, माँ—"

ललिता अन्दर आई। वह ठीक एक पगली-सी दीख रही है, बाल उड़ रहे हैं, शरीर पर ज्यादा गहने भी नही है, मोटा अधमैला कपड़ा

नीचे लोट रहा है, हँसी से होठ फट से रहे है। उसके हाथ में छोटे-छोटे कुर्ते और पायजामे। अरे, यह ललिता बहू है या लड़की ?

"माँ एक बज गया है। तुम अब तक जग रही हो ? अब सो जाना चाहिए।"

"तुम्हारे ससुर की चिल्लाहट सुनकर किसको नींद आ सकती है ?"

"वह मेरा ही लड़का है। 'सा' ने कहा है।"

ललिता हँसने लगी।

अभया बोली, "हाँ-हाँ, वह तुम्हारा ही लडका है। मै भी एक न एक रोज तुम्हारी लड़की बनकर यहाँ आ जाऊँगी।"

कनी बाहर की तरफ से बुलाने लगी, "छोटी भाभी !"

स्वर काँप रहा है।

"क्या है कनी ?"

सास के पास से ललिता बाहर छूट गई।

बच्चा हो जाने के बाद बड़े डाक्टर साहब अब चले गये है। अवस्था अच्छी थी। केवल बहुत कमजोरी थी, श्रीमती भोई है, देखभाल करती रहेंगी। बच्चे को नहला-धुलाकर नर्स ने डोली पर रख दिया है। नन्हें से मेहमान को देखने के लिए सब आगये है। नन्दिका ने भी आँखे भरकर देखा। स्वप्न के समान समस्त वेदना वह भूल गई है।

'सा'—

मुग्ध दृष्टि से नन्दिका ललिता की ओर देखने लगी।

"कहाँ गये वे ?"

"माँ के पास।"

"माँ अच्छी तो है ?"

"उठकर बैठी है। मुझसे बोल रही थी—तुम्हारे ससुर की आवाज आ रही है, ललिता। जीवन मे उनको कभी भी इतना आनन्द प्राप्त नही हुआ था।"

नन्दिका के कमजोर मुख पर हँसी। क्षीण कण्ठ से बोलने लगी, "क्या माँ इस तरफ एक बार भी न आ सकेगी ? अपने नाती को नही देखेंगी ?"

श्रीमती भोई ने कहा, "अब वे बहुत कमजोर है। जरूर देखेगी। कल देखेगी।"

"अगर कुछ हो गया तो !"

"वह भय अब हट गया है, नन्दिका।"

कनी ने कहा, "मैं जाती हूँ, उनको हाथ से उठाकर ले आती हूँ।"

कनी चली गई।

ललिता झूलती हुई खटिया के ऊपर झुककर देखने लगी। नन्हा-सा बच्चा आँखें टिमटिमा रहा था। नन्दिका की आँखें वहीं रुक गई थीं।

'का'—

ललिता उठ खड़ी हुई।

"अपने लड़के को देख लिया है न ?"

"ऊँ हूँ। अच्छी तरह से कहाँ देखा ? तू पहले उठकर उसे मेरी गोद मे देगी, तब मैं उसे ठीक तरह से देखूँगी।"

"श्रीमती भोई को तुमने नमस्कार किया है न ? वे ही तुम्हारे बच्चे को लाई है।"

"मैं भूल गई थी।"

ललिता उठकर डाक्टरनी भोई के पास गई। नमस्कार किया। हाथ पकड़कर फिर कहने लगी "मेरी 'सा' कब तक तन्दुरस्त हो जायगी ?"

"सात रोज के बाद।"

कनी अभया को बगल में दबाकर लाई है। सुनन्द ने भी हाथ पकड़ा है। श्रीमती भोई बाहर चली आई। सुनन्द ने पूछा, "नन्दिका अब कैसी है ?"

"अच्छी है। उनको बहुत कष्ट मिला, खूब रक्तस्राव हुआ। शरीर में खून बिलकुल नहीं है। छाती बहुत कमजोर है। यहाँ इतनी भीड़ नही रहनी चाहिए। मन में उत्तेजना आ सकती है। हार्ट फेल हो सकता है। सबको यहाँ से चले जाने के लिए कह दीजिये। सिविल सर्जन साहब इसलिए अस्पताल ले जाने को कह रहे थे। आप लोगों ने माना नही। केस बहुत जटिल है, इन्जैक्शन से खून दिया गया है। फिर भी निरापद नही है। यहाँ लगातार बैठे रहना पड़ेगा। आप सबको चले जाने के लिए कहिये।"

नन्दिका मुग्ध आँखों से देख रही थी। हँसते हुए मुँह से कमजोर सास उनकी स्वप्न प्रतिमा को देख रही थी। कामना के पुष्प को देख रही थी। इस तरफ कनी और उस तरफ ललिता सास को पकड़कर खडी हुई है।

देखने दो। आँखें भरकर देखने दो। उनकी मनोकामना पूरी हो जाय। उनकी आत्मा बोल उठे, नन्दिका बाँझ नही है। नन्दिका के बच्चा हुआ है। वे तो सूखे पत्ते के समान है। कब गिर पड़ेंगी, कौन कह सकता है ? देखने दो, आँखें भरकर, दिल भरकर !

नन्दिका उत्तेजित हो उठी। देह पर पसीना आगया।

सुनन्द अन्दर आया। बोला, "डाक्टरनी नाराज हो रही है। तुम लोग सब यहाँ से चली जाओ। रात के दो बज चुके है। सोओगी, जाओ। नन्दिका को भी थोड़ा सोने दो।"

'का'—, 'का'—, 'का'—

क्या 'सा' बुला रही है ? टूटी हुई आवाज से ?

ललिता ने आँखें खोली। खिड़की के बाहर सुबह की रोशनी फैली हुई थी। रात खत्म हो चुकी थी। खिड़की के ऊपर बैठकर एक शुभ कौवा उसी की ओर देखकर 'का—का' कर रहा है। खिड़की के ऊपर दीवार पर नन्दिका का बडा किया हुआ फोटो। जब बहू बनकर इस घर मे आई थी तब का। सिर पर घूँघट। नाक पर नथ और फुल्ली। माथे पर चन्द्र-झुम्पा। शर्मीली हँसी। भीति से भरी हुई दृष्टि। आज देखने को कितना सुन्दर लग रहा है। कब से टँगे हुए कागज के फूल की माला पर मानो आज किसी ने नया रग लगा दिया है। इस गाँव की लड़की आज माँ बनी है। संसार मे एक देव शिशु ले आई है।

नन्दिका के फोटो के पास ललिता का बड़ा किया हुआ फोटो। सिनेमा की तारिकाओं की एक नकल। सिर पर घूँघट नही है। अधनगी, मुँह पर अस्वाभाविक निर्लज्ज हँसी। बेशर्म, सीधी दृष्टि। बहुत बेहया और गन्दी मालूम पड़ रही है। फिर भी सुनन्द उसकी प्रशसा करता है, नन्दिका को पुराने ढंग की कहता है। छिः—

का—, का—

कौवा बोल रहा है। नीचे से कनी की आवाज। क्या वह इतनी देर तक सो गई थी ? रात के दो बजे से अब सुबह के पाँच बज गये है। अब 'सा' क्या करती रहेगी ? उसके बच्चे के नये मुँह को क्या वह आज बड़ी भोर पहले देखने नहीं जायगी ?

मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी। सुबह का समय।

नीचे से आवाज आ रही है। व्यस्त-सी होकर ललिता पलंग पर से उठी। कौवा उड़कर चला गया। झट से सीढ़ी पर होकर ललिता नीचे आई। माँ के पास कोई भी नही था। वे सो रही है। छन-छन साँस ले रही हैं। ललिता नन्दिका के कमरे की ओर दौड़ने लगी।

बाहर लोगों की भीड लगी थी। मन के भीतर से सवाल उमड आया—क्या हुआ ?

सबको धकेलकर वह भीतर गई। बच्चा खाट पर सोया हुआ था। नन्दिका की छाती पर यन्त्र लगाकर बडे डाक्टर साहब देख रहे थे। कान मे स्टेथस्कोप।

वे क्या देख रहे है। मुँह सुखाकर डाक्टरनी भोई सिर के पास खडी है।

आँखें मूँदकर 'सा' सो रही है। उसके होठो पर हँसी है—जो मन को लूट लेती है, दुखों को भुला देती है। स्वामी पैर के पास खड़े है। तमाम रात जगे हुए है। कितने काले पड़ गये हैं !

डाक्टर साहब उठ खड़े हुए।

उन्होंने मुँह सुखा दिया। कान से यन्त्र उतार लिया। मुँह खोल कर बोले, "देर हो गई, सुनन्द बाबू !"

"एँ— ?"

सुनन्द की आँखों से आँसू निकलने लगे।

अस्थिर होकर ललिता पूछने लगी, "क्या हुआ ?"

उसके प्रश्न का जवाब किसी ने नहीं दिया।

स्तम्भित होकर वह सबकी ओर देखने लगी। सबकी आँखों में आँसू भरे हुए थे।

लेकिन नन्दिका की आँखों मे बिलकुल आँसू नहीं हैं ! होठों पर वही हँसी अब तक लगी हुई है, वही मन लुभाने वाली हँसी।

घर से निकलकर सब लोग क्यों चले जा रहे है ? अरे, स्वामी भी क्यों पागल की तरह अपने बाल खींच रहे हैं ?

छाती पर लोट गई। समझ गई कि वह सब गौरव को छोड़कर चली गई है। सबको सब कुछ दे गई है। किसी का कुछ भी ले नहीं गई।

हँसते हुए मुँह को दोनों हाथों से उठाकर उसने मुंह पर मुंह लगाया और कहा, "क्या नहीं कहोगी, क्या हो गया है?"

आँखों के आँसू आँखों पर गिर रहे हैं। यह नींद टूटने वाली नहीं है। जिसे संसार मे लाकर वह उसके हाथ सौंप गई है, झूलती हुई खटिया के ऊपर से केवल वही जवाब दे रहा है!